Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAST-102

पाली, प्राकृत अपभ्रंश तथा भाषा-विज्ञान

खण्ड

1

पालि

इकाई - 1 5

पालि साहित्य का परिचय

इकाई - 2 50

पाली पाठ

परामर्श-समिति

प्रा0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

पाठ्य-सामग्री निर्धारण समिति

प्रो. पी0डी0 सिंह	आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रो. जी0 आर0 पाण्डे	आचार्य, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ
प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी	आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रो. सोमनाथ नेने	आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रो. यू0 पी0 सिंह	आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रो. आर0 सी0 पाण्डा	आचार्य, विद्याधर्म विज्ञान संकाय (बी0एच0यू0)
डॉ0 राममूर्ति चतुर्वेदी	रीडर, काशी विद्यापीठ
डॉ0 अच्छे लाल	प्रवक्ता, संस्कृत, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

सम्पादक

प्रो0 मुरली मनोहर पाठक	आचार्य, संस्कृत विभाग, पं0 दीनदयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर
डॉ0 राजेश्वर शास्त्री मुसलगांवकर	विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

लेखक

प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी	आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज - 2024

ISBN -

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नही है।

प्रकाशक- उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित वर्ष - 2024.

मुद्रक - के0 सी0 प्रिटिंग एण्ड एलाइड वर्क्स , पंचवटी , मथुरा - 281003.

खण्ड- परिचय

इस प्रथम खण्ड, में दो इकाइयाँ हैं, प्रथम इकाई में पालिभाषा की व्युत्पत्ति, उत्पत्ति तथा विकास और उसकी विशेषताओं का वर्णन है। पालि साहित्य का सामान्य परिचय तथा व्याकरण का सामान्य परिचय दिया गया है। इकाई दो में पालि-पाठ का सामान्य परिचय दिया गया है।

पालि

इकाई –01 पालि साहित्य का परिचय

1.1 पालिभाषा : व्युत्पत्ति, उत्पत्ति, विकास और विशेषताएँ

1.2 पालि–साहित्य : सामान्य परिचय

1.3 पालि–व्याकरण

  1.3.1 वर्णमाला

  1.3.2 सन्धि, समास, कारक, कृत् तथा तद्धित प्रत्यय

  1.3.3 शब्दरूप

  1.3.4 धातुरूप

इकाई–02 पालि–पाठ

2.1 बावेरूजातकम्

2.2 मायादेविया सुपिनं

2.3 महाभिनिक्खमनं

2.4 महापरिनिब्बानसुत्तं

2.5 धम्मपदसंगहो

इकाई– 1 पालि

1.1 प्रस्तावना –

इतिहास की दृष्टि से मध्यकालिक आर्य भाषाओं की जो तीन अवस्थायें हैं, उनमें 'पालि भाषा' प्रथम स्थानीय है। भाषा के विकास की दृष्टि से पालिभाषा का अध्ययन अतीव महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत की उच्च शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों को इस दृष्टि से पालि भाषा का सामान्य परिचयात्मक अध्ययन कराया जाता है। परास्नातक कक्षाओं के संस्कृत के प्रथम वर्षीय पाठ्यक्रम में भाषा विज्ञान के साथ पालि के अध्ययन की व्यवस्था प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में चल रही हैं क्योंकि पालिभाषा का संस्कृत भाषा के साथ निकट का सम्बन्ध है और कई अर्थों में पालि का व्याकरण और साहित्य संस्कृत–भाषा के व्याकरण और साहित्य से प्रभावित है। अतः स्वभाविक है कि पालिभाषा का ज्ञान संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त उपयोगी सिद्ध होता है।

इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए पालि का एक सन्तुलित पाठ्य क्रम निर्धारित किया गया है। और प्रथम खण्ड की दो इकाइयों में क्रमशः पालि भाषा साहित्य तथा व्याकरण और पालिसाहित्य के कुछ चुने हुए अंश संग्रहीत किये गये हैं।

1.2 उद्देश्य

प्रथम खण्ड अर्थात् इकाई 1 और 2 का अध्ययन करने के पश्चात् आप–

1. 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति और पालिभाषा की उत्पत्ति जान सकेंगे।
2. पालि भाषा के विकास से परिचित हो सकेंगे।
3. प्राकृत भाषा में निबद्ध बौद्ध धर्मदर्शन के ग्रन्थों तथा अन्य अनेक साहित्यिक ग्रन्थों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
4. पालि भाषा के व्याकरण का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
5. पालिभाषा के व्याकरण का अभ्यास कर लेने पर आप इस महत्त्व पूर्ण भाषा का प्रारम्भिक सरल प्रयोग स्वयं कर सकेंगे।
6. पालिभाषा के पाठों को पढ़ने तथा अंर्थ बोध करने में समर्थ हो सकेंगे। पालि के अंशों का संस्कृत रूपान्तरण करने एवं समझने में सुविधा होगी।
7. तत्कालीन भारत की संस्कृति का भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

1.3 पालिभाषा – व्युत्पत्ति,उत्पत्ति, विकास और विशेषताएं –

ऐतिहासिक दृष्टि से तथा भाषाविज्ञान का अनुशीलन करने से, भारतीय आर्य भाषाओं की तीन दशायें परिलक्षित होती हैं । भाषा के विकास के सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में विद्वानों ने इसे अधोलिखित क्रमानुसार स्वीकार किया है –

1.3.1 प्राचीन भारतीय आर्य भाषा –

वैदिक संस्कृत एवं लौकिक संस्कृत (प्रागैतिहासिक काल से 500 ई. पू. तक)।

1.3.2 मध्य भारतीय आर्य भाषा –

पालि, प्राकृत एवम् अपभ्रंश भाषा (500 ई. पूर्व से 1000 ई. तक)

1.3.3 आधुनिक भारतीय आर्यभाषा –

हिन्दी साहित्य भारत की सभी आधुनिक (प्रान्तीय) भाषाएँ (1000 ई. से वर्तमान काल) ।

पालिभाषा मध्यभारतीय आर्यभाषा के अन्तर्गत परिगणित है। यह वस्तुतः भगवान् बुद्ध के उपदेश की भाषा है। सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से श्रोता को उसी की भाषा में समझाना उचित होता है। तभी वस्तु बोध और ग्राह्य होती है। इसी दृष्टि से भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेश जनभाषा में दिये बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात् आचार्यों ने उनके वचनों का संग्रह इसी उददेश्य से प्रादेशिक जनभाषा 'मागधी' में किया। अधोलिखित गाथा बुद्धवचन की मूलभाषा 'मागधी' को प्रमाणित करती है –

सा मागधी मूलभाषा नरा यायादिकधिका ।

ब्राम्हणा चूस्सुतालापा संबुद्धा चापि भासरे ।।

बाद में चलकर इस लोकभाषा मागधी को जब बुद्धसंघ और राज्य शासन का आश्रय प्राप्त हुआ तब इसका साहित्यिक स्वरूप विकसित हुआ। यहाँ जान लेना आवश्यक है कि उस समय की मूलभाषा मागधी ही 'पालि' भाषा नहीं है। वह बहुत कुछ परिवर्तित और भिन्न है। इसका कारण है कि भिन्न–भिन्न स्थानों से आये भिक्षुगण संघों में साथ साथ रहते थे। और तथागत बुद्ध ने उन्हें भाषिक व्यवहार की छूट दे रखी थी – "अनुजानामि मिक्खवे, सकायनिरूत्तिया बुद्धचनं परियापुणितं" अर्थात्, "हे भिक्षुगण" !

अपनी अपनी भाषा में बुद्धिवचन की शिक्षा लेने के लिए अनुमति देता हूँ।'' परिणामतः मागधी की प्रमुखता होते हुए भी इस लोकभाषा का मिश्रित स्वरूप विकसित हुआ और कालान्तर में यह भाषा 'पालि' भाषा के नाम से प्रसिद्ध हुई।

मागधी भाषा का 'पालि' नाम पड़ने के कारण पर विचार करना तर्कसंगत होगा।जिस भाषा में बुद्धवचनों का संग्रह और संरक्षण किया गया, उसकी संज्ञा 'पालि' होने के पीछे यह कारण हो सकता है कि मूल त्रिपिटक के लिए 'पालि' शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से ही प्राप्त है – 'पिटकत्तयपालिं च तस्स अट्ठकथं पिच' (दीपवंस, 20.20)।

मागधी (अथवा अर्धमागधी) को 'पालि' नाम देने के पीछे चाहे जो भी कारण रहा हो किन्तु बुद्धवचन की भाषा के रूप में प्रयुक्त 'पालि' के नामकरण के सम्बन्ध में विद्वानों ने अपने मत कुछ इस प्रकार दिये हैं –

1. भिक्षु सिद्धार्थ के अनुसार 'पाठ' ही रूपान्तरित होकर 'पालि' हो गया पाठ > पाल > पालि ।

2. पण्डित विधुशेखर भट्टाचार्य ने 'पालि' का व्युत्पत्तिपरक स्वरूप प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार, 'पालि' का अर्थ है 'पंक्ति' । मोग्गालान ने 'पा रक्खणे' धातु से ण्वादि का 'लि' प्रत्यय लगाकर –पा+लि – पालि शब्द को व्युत्पन्न करते हुए इसका अर्थ 'पंक्ति' किया है। इस अर्थ में (पंक्ति, कतार, श्रेंणी, समूह आदि) 'पालि' शब्द का प्रयोग कई ग्रन्थों के साथ हुआ है। यथा–उदानपालि, पचित्तिय पालि इत्यादि।

3. संस्कृत भाषा के 'पल्लि' (अथवा 'पल्ली') का अर्थ है गॉव या ग्राम। दक्षिण भारत, बंगाल और उड़ीसा में आज भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त है और अनेक ग्रामों (अथ च नगरों–कस्बों) के नाम के अन्त में पाली या पल्ली शब्द जुड़ा हुआ है। गॉव की भाषा होने के कारण प्रारम्भ में इसे 'पल्लिभाषा' कहा जाता रहा होगा । आगे चलकर यह 'पल्लि' 'पालि' हो गया।

4. कुछ विद्वानों के अनुसार, 'प्राकृत' शब्द ही विकृत (विकसित) होते होते क्रमशः 'पालि' हो गया। वे इस निरूक्ति को इस प्रकार प्रदर्शित करते हैं – प्राकृत > पाकर > पाअड > पाअल > पाइल > पालि ।

5. डॉ. मैक्सवेलेसर का मत है कि पाटलिपुत्र की भाषा होने के कारण पहले इसका नाम 'पाटलि' रहा होगा और धीरे–धीरे परिवर्तित होकर यह 'पाटलि' से 'पालि' हो गयी -- पाटलि > पाडलि > पाअलि > पालि ।

6. भिक्षु जगदीश काश्यप आदि विद्वानों का इस सम्बन्ध में कथन है कि 'त्रिपिटक' में अनेक स्थलों पर बुद्धसना के अर्थ में प्रयुक्त 'परियाय' शब्द ही

आगे चलकर 'पालि' हो गया। अशोक के एक शिलालेख में 'परियाय' के स्थान पर 'पलियाय' शब्द का प्रयोग हुआ है। अतः इस रूप में निरूक्ति का क्रम इस प्रकार होगा– परियाय >पलियाय >पालियाय >पालिय >पालि।

7. कुछ विद्वानों ने 'प्रालेय' (= पड़ोसी) शब्द में 'पालि' का मूल खोजने का प्रयास किया है किन्तु यह उचित नहीं जान पड़ता ।

इस प्रकार, 'पालि' शब्द में विद्वान एकमत नहीं हैं और अपने–अपने मत के अनुसार इस शब्द की व्युत्पत्तियॉ दी हैं।

जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है, 'मागधी' मगध प्रान्त एवम् उसके समीपवर्ती स्थानों की लोकप्रयुक्त भाषा रही होगी। यही 'मागधी' कालान्तर में पालि के रूप में विकसित हुई । अतःकहा जा सकता है कि पालिभाषा का उद्‌भव स्थल मगध प्रान्त ही रहा ।

आर. डेविड्स ने, इस आधार पर कि तथागत ने स्वयम् अपने को 'कोसल खत्तिय' (कोशल क्षत्रिय) कहा है, पालि को कोसल प्रान्त की भाषा माना है। उनका तर्क है कि कोसल प्रान्त भगवान् बुद्ध की जन्मभूमि है, अतः उनकी मातृभाषा पालि ही रही होगी। इसके अतिरिक्त, इस मत के समर्थन में एक तथ्य यह भी है कि भगवान् बुद्ध के महानिर्वाण के सौ वर्ष पश्चात् कोसल में ही उनके वचनों (उपदेशों) का संग्रह किया गया । किन्तु भिक्षु जगदीश काश्यप, विण्टर नित्ज, चाइल्डर्स आदि इससे सहमत नहीं हैं और वे पूर्वमत के ही पोषक हैं। उनका तर्क है कि जन्म से क्या ? तथागत का कार्यक्षेत्र तो मुख्यतया मगध ही रहा। वैस्टरगार्ड पालि को उज्जैन की भाषा मानते हैं। ओल्डन वर्ग ने खारवेल के खण्डगिरि शिलालेख का आधार लेकर पालि को कलिङ्ग प्रान्त की भाषा सिद्ध करने का प्रयास किया है। स्टेनकोनों और आर. ओ. फ्रेंक पालि को विन्ध्यप्रदेश की भाषा मानते हैं ।

सामान्य तर्क और अनुल्लेख प्रमाणों के आधार पर कोई मत प्रतिपादित कर देना नितान्त हास्यास्पद है। अतःपालि को कलिङ्ग, उज्जैन अथवा विन्ध्य प्रदेश की भाषा सिद्ध करने का प्रयास उचित नहीं है। हॉ, कोसल और मगध प्रान्त परस्पर समीपवर्ती हैं और हर दृष्टि से एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। तथागत ने कोसल में केवल जन्म ही नहीं लिया था अपितु काशी–कोशल प्रान्त उनका कार्यक्षेत्र भी रहा है। इसलिए आर. डेविड्स के मत को कुछ हद तक स्वीकार कियाय जा सकता है। वस्तुतः मूल मागधी और पालि में संरचनागत अनेक मौलिक अन्तर भी हैं। अतः सम्भव है कि व्यावहारिक स्तर पर पालि भाषा, मागधी और कोसल प्रान्त की भाषा का मिला जुला रूप हो। यह सत्य है कि तथागत का अधिकांश कार्यक्षेत्र, उनके धर्म प्रचार की

गतिविधियों और प्रश्रयी अशोक आदि सम्राटों की भूमि तो मगध ही रही। इस आधार पर, यह सबलतया कहा जा सकता है कि पालिभाषा की उत्पत्ति मागधी से ही हुई, वहीं उसका पोषण और विकास हुआ तथा वर्तमान साहित्यिक स्वरूप भी उसे वहीं प्राप्त हुआ। निस्सन्देह पालि भाषा का उद्भव स्थल ही है। कालान्तर में तो यह भाषा राज्याश्रय और लोकाश्रय से, बौद्ध धर्म के साथ–साथ प्रचारित प्रसारित होती रही। यह भाषा मात्र मगध, कोसल अथवा भारत में ही नहीं फैली अपितु लंका, ब्रह्मदेश, श्याम, चीन, तिब्बत आदि में भी बुद्धवचन का माध्यम बन कर व्याप्त हुई। बौद्ध धर्म–दर्शन के ग्रन्थों के अतिरिक्त भी पालि भाषा में विपुल साहित्य की रचना हुई। परवर्ती भाषा साहित्य पर भी इसका व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है।

पाश्चात्य विद्वान् विंडिश और गायगर के अनुसार पालि एक साहित्यिक भाषा के रूप में स्थापित हुई और यह पूर्वोत्तर भारत के सभी जनपदों में, यहॉ तक कि मध्यभारत में भी बोली और समझी जाती थी। विकसित होकर साहित्यिक भाषा का रूप शीघ्र ही धारण कर लेना यह पालि की निजी विशेषता है। इसके अतिरिक्त यह पालिभाषा, अन्य मध्यकालीन आर्य भाषाओं की अपेक्षा सरलतर और अधिक बोधगम्य रही।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का मानना है कि त्रिपिटक मूल मागधी भाषा में ही लिखे गये। किन्तु सिंहल में बसे गुजराती प्रवासियो को ढाई सौ वर्षों तक इसे कण्ठस्थ करने का दायित्व सौंपा गया था। सम्भवतः इसी दौरान मागधी भाषा की समस्त विशेषताऍं गायब हो गयीं।

डा. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या का मत है कि भारतवर्ष में हमेशा मध्यदेश की ही भाषा रही। भगवान बुद्ध ने अपने उपदेश पूर्व देश की भाषा में ही दिये होंगे किन्तु जब उनका सङ्कलन हुआ तो माध्यम पालि भाषा हुई जो तब तक पर्याप्त साहित्यिक हो चुकी थी।

यह संयोग की बात है जिस समय पूर्वोत्तर भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार हो रहा था, लगभग उसी कालखण्ड़ में पश्चिमोत्तर भारत में जैन धर्म भी जनता के बीच लोकप्रिय हो रहा था। दोनों में इतनी समानता अवश्य थी कि दोनों ही अहिंसक धर्म हैं। जैन धर्म के प्रचार–प्रसार का माध्यम महाराष्ट्री प्राकृत थी और बौद्ध धर्म का माध्यम मागधी (प्राकृत) जो बाद में चल कर 'पालि भाषा' के रूप में प्रतिष्ठित हुई ।

1.4 पालि साहित्य : सामान्य परिचय

पालि भाषा मुख्यतः बौद्ध धर्म दर्शन को अभिव्यक्त करती है। इसमें स्थातिरवादी बौद्धधर्म का सम्पूर्ण साहित्य लिखा गया है। पालि साहित्य का

प्रणयन भगवान बुद्ध के महानिर्वाण के कई वर्ष पश्चात् सुविचारित रूप से क्रम बद्ध तथा सुनियोजित तरीके से प्रारम्भ हुआ। भगवान् बुद्ध के महानिर्वाण के पश्चात उनकी शिष्य परम्परा के आचार्यों ने, उनके वचनों (उपदेशों तथा शिक्षाओं) को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से बौद्ध विद्वानों का सम्मेलन बुलाकर उन उपदेशों का क्रमबद्ध संग्रह किया। इस प्रकार के तीन सम्मेलन बुलाये गये। प्रथम सम्मेलन राजगृह में, महानिर्वाण के कुछ ही वर्ष बाद बुलाया गया। द्वितीय सम्मेलन 377 ई0 पू0 में वैशाली में बुलाया गया और तृतीय अन्तिम सम्मेलन 255 ई0पू0 पाटलिपुत्र में बुलाया गया। इन तीनों सम्मेलनों में 'त्रिपिटकों' का रूप निर्धारित हुआ। इस प्रकार, पालि साहित्य को प्रमुख रूप से आरम्भिक तौर पर दो भागों में बॉटा जा सकता है – पहला भाग – शास्त्रीय साहित्य और दूसरा शास्त्रीय से इतर साहित्य। पहले भाग में त्रिपिटिक ग्रन्थ आते हैं और दूसरे भाग में उससे अतिरिक्त शेष ग्रन्थ। 'त्रि' का अर्थ है तीन और 'पिटक' का अर्थ है पेटी या मंजूषा। जैसे मंजूषा में बन्द करके कोई वस्तु सुरक्षित रखी जाती है वैसे ही इन तीनों पिटकों में बुद्धवचन सुरक्षित किये गये हैं। इन त्रिपिटकों के नाम क्रमशः विनय पिटक, सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक हैं ।

विनयपिटक – बौद्धधर्म –दर्शन में 'विनयपिटक' का महत्व सर्वोपरि है। विनय का अर्थ है – शिक्षा। बुद्ध शासन का मूल विनय पिटक में ही संरक्षित है। विनयपिटक वस्तुतः बौद्धसंघ का संविधान है क्योंकि इसमें बौद्धसंध की व्यवस्था, भिक्षु और भिक्षुजियों के नित्य तथा नैमित्तिक कर्म, उपसम्पदानियम, भोजन एवं वस्त्र संबंधी आचार–विचार, वर्षावास के नियम, संघभेद होने पर संघसामग्री सम्पादन के नियम आदि वर्णित हैं।

विनयपिटक के तीन विभाग हैं –सुत्तविभंग, खन्धक एवं परिवार। सुत्तविभंग के दो भाग हैं – पाराजिक और पाचित्तिय । सुत्तविभंग मे उन अपराधों का उल्लेख किया गया है जिनके कारण भिक्षु को उसका दण्ड भूगतना पड़ता है। इन दण्डों में नानाविध प्रायश्चित्त हैं और संघ से निष्कासन भी है। ये कुल 227 (दो सौ सत्ताइस) प्रकार के अपराध यहाँ कहे गये हैं। और अपराध नियमों का विभाजन आठ वर्गों में दिया गया है।

खन्धक के भी दो विभाग हैं –महावग्ग और चुल्लवग्ग। खन्धक में संघ की जीवन चर्या वर्णित है। महावग्ग के दस उपविभाग हैं, इसमें सम्बोधि प्राप्ति से लेकर प्रथम संघ की स्थापना का इतिहास भी वर्णित है। चुल्लवग्ग में अनिरूद्ध, उपालि और आनन्द के सन्यास का वर्णन है। प्रथम दो बौद्धसंगीतियों का विवरण भी चुल्लवग्गा के अन्त में दिया हुआ है।

सुत्तपिटक – भगवाद बुद्ध अपने शिष्यों, भिक्षुओं को धम्म और विनय की

शरण में छोड़कर गये थे। सुत्तपिटक उसी धम्म और विनय का सङ्ग्रह है जिसमें बुद्धवचन निहित है।

'सुत्त' (सूत्र) का सीधा अर्थ सूत या धागा है। जिस प्रकार सूत का गोला प्रयोजनवशात् खुलता चला जाता है उसी प्रकार सुत्तपिटक से भी बुद्धवचन खुलते चले जाते हैं। अतः लाक्षणिक रूप से सुत्तपिटक को सूत्र रूप बुद्धवचनों का सङ्ग्रह या परम्परा कहा जा सकता है। सुत्तविटक में भगवान् बुद्ध के अतिरिक्त उनके शिष्यों सारिपुत्त, मौद्गलायन और आनन्द के भी उपदेश सम्प्राप्त होते हैं।

सुत्तपिटक के पॉच उपविभाग हैं – दीघनिकाय, माज्झिम निकाय, संयुक्त निकाय, अंगुत्तर निकाय और खुद्दक निकाय। दीघनिकाय में लम्बे बड़े तथा मज्झिम निकाय में मझोले आकार के सुत्तों का संग्रह है। संयुक्त निकाय में छोटे बड़े सभी आकार के सुत्त संग्रहीत हैं। निकायों में संग्रहीत सुत्तों के आकार का कोई नियम नहीं है। सुत्तों की गद्यमयता या पद्यमयता का भी कोई नियम नहीं है। कुछ सुत्त गद्यमय कुछ पद्यमय और कुछ मिश्रित हैं।

अंगुत्तर निकाय में भी पूर्व निकायों की भॉति बुद्धवचन संग्रहीत हैं। खुद्दक निकाय के अन्तर्गत सुत्तों का संग्रह नहीं अपितु छोटे–छोटे ग्रन्थों का सङ्कलन है। इस दृष्टि से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। **खुद्दक निकाय** में पन्द्रह लघुकाय ग्रन्थ हैं – खुद्दक पाठ, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, सुत्तनिपात, विमानवत्यु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा, जातक, निद्देस, परिसम्भिदा, मग्ग, अपदान, बुद्धवंस और चरिआपिटक। सहत्र सङ्कलित होते हुए भी इन ग्रन्थों की विषय वस्तु और भाषा शैली मे समानता नहीं है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है –

धम्मपद :

बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों और सभ्यता मार्ग को, भगवान बुद्ध के सरल उपदेशों के माध्यम से प्रतिपादित करने वाला एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें कुल छब्बीस वर्गों में विभक्त 423 गाथाऍ (पद्य) हैं। धम्मपद को बौद्ध धर्म की 'गीता' कहना उचित होगा। जिस तरह श्रीमद्भगवद्गीता स्वतंत्र रचना न होकर महाभारत का ही एक अंश है, उसी तरह धम्म पद भी खुद्दक निकाय का एक अंश है। गीता में वक्ता और श्रोता मात्र एक एक हैं। किन्तु धम्म पद में वक्ता एक भगवान् बुद्ध हैं किन्तु श्रोता अनेक उनके शिष्य है। गीतोपदेश कुरूक्षेत्र के अशान्त रणक्षेत्र मे एक ही स्थल पर हुआ था किन्तु धम्मपदोपदेश शान्त विहार स्थलों में अलग अलग स्थानों पर हुआ है। गीता का उपदेश काल अविच्छिन्न रहा किन्तु धम्मपद के उपदेश भिन्न भिन्न कालों में हुए हैं।

गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति का प्रतिपादन किया गया है, धम्मपद में सत्कर्म की महत्ता प्रतिपादित है। गीता उच्चकोटि का प्रौढ़ ग्रन्थ है और उसका दर्शन अत्यन्त गहन है। किन्तु धम्मपद बौद्धधर्म का प्राम्भिक ग्रन्थ है। और उसमें सन्निहित दर्शन केवल नैतिक धरातल तक ही सीमित है।

'धम्मपद' दो शब्दों के मेल से बना है। 'धम्म' (धर्म) का अर्थ है सदाचार और 'पद' का अर्थ है स्थान या मार्ग। 'पद' का अन्य अर्थ वचन या वाणी भी है। अतः 'धम्मपद' का आशय भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सदाचार का मार्ग या वचन है।

मूलरूप में धम्मपद का कर्ता भगवान् बुद्ध को ही माना जाना चाहिए किन्तु धम्मपद में उनके उपदेशों का जो स्वरूप प्राप्त होता है, वह भगवान् बुद्ध का मूल वचन है – ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि धम्मपद की गाथाओं का निर्माण (अथवा संकलन) भगवान् बुद्ध के महानिर्वाण के सैकड़ों वर्ष बाद हुआ। इससे यह प्रतीत होता है कि संकलनकर्ताओं ने श्रुत एवं स्मृत उपदेशों को अपने तरीके से प्रस्तुत किया होगा। अतः प्रतिपाद्य वस्तु और शैली में सहज अन्तर आना स्वाभाविक ही है। धम्म पद का जो वर्तमान स्वरूप है उसमें पद्यात्मक गाथाएं हैं। मूल उपदेश वचन गद्य में थे या पद्य में यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। लङ्का नरेश वट्टगामणी (88–76 ई0 पू0) के आदेश से उनके शासन काल में धम्मपद को लिखित रूप प्राप्त हुआ था।

धम्मपद के प्रामाणिक प्राचीन टीकाकार आचार्य बुद्धघोष से पूर्व ही धम्म पद पर सिंहली भाषा में 'धम्मपदट्टकथा' उपलबध थी। आचार्य बुद्धघोष ने उसका रूपान्तर पालिभाषा में किया। धम्मपदट्ठ कथा में तथागत के उपदेशों से सम्बद्ध अवतरणाएं (प्रस्ताविक कथाएँ) हैं। प्रायःजिज्ञासु भिक्षु किसी असम्मान्य घटना के सम्बन्ध में भगवान् बुद्ध से प्रश्न करते थे और भगवान् बुद्ध उस घटना का समाधान करते हुए उपदेश देते थे। इस प्रकार, धम्मपदटट कथा में कौन सी गाथा, किस सम्बन्ध में किसे, कहाँ उपदिष्ट हैं – इसका पूरा विवरण प्राप्त होता है। इन गाथाओं की कुल संख्या 305 है। श्रावस्ती के जेतवन में सर्वाधिक 185 गाथाएँ और राजगृह में 42 गाथाएं उपदिष्ट हैं। शेष गाथाएं पूर्वारम्भ, वेणुवन, कपिलवस्तु, वैशाली और न्यग्रोधारम्भ में कही गयी है।

सुत्त निपात –

सुत्त निपात भी एक महत्त्वपूर्ण लधु ग्रन्थ है। अशोक के बभ्रु शिलालेख में जिन सात बुद्धोपदेशों का उल्लेख किया गया है, उनमें से तीन सुत्तनिपात में प्राप्त है।

सुत्तनिपात की भाषा और छन्द वैदिक भाषा और छन्दों से पर्याप्त समानता रखते हैं । विषयवस्तु की दृष्टि से सुत्तनिपात पांच वर्गों में विभक्त है – 1. उरगवग्ग (12 सुत्त), 2. चुल्लवग्ग (14 सुत्त), 3. महावग्ग (12 सुत्त), 4. अट्ठकवग्ग (16 सुत्त) और पारायणवग्ग (17 सुत्त)। इनमें से उरगवग्ग का दूसरा सुत्त है – 'धनियसुत्त' । इस प्रसिद्ध सुत्त में एक धन सम्पन्न गृहस्थ और एक ध्यान सम्पन्न विरक्त के बीच संवाद के माध्यम से दोनों सुखों की तुलना करते हुए यह प्रदर्शित करने की चेष्टा की गयी है कि सांसारिक सुख एक छलावा है।

थेरगाथा एवं थेरीगाथा –

इन दोनों गाथा ग्रन्थों में भिक्षु–भिक्षुणियों के जीवन संस्मरण हैं। थेरगाथा में बुद्ध के समकालिक 255 भिक्षुओं और थेरीगाथा में उसी काल की 63 भिक्षुणियों के जीवन संस्मरण संग्रहीत हैं। थेर गाथा में इक्कीस निपात और उनमें 1279 गाथाएँ हैं। थेरीगाथा में 16 नियात और 522 गाथाएँ हैं। थेरगाथा में भिक्षुओं ने अन्तर्जगत् के अनुभवों पर विशेष बल दिया है। जबकि थेरी गाथा में भिक्षुणियों ने वैयक्तिक जीवन पर अधिक बल दिया है। इसमें उन्होंने उस समय की अपनी यथार्थ स्थिति का वर्णन किया है।

जातक –

खुद्दक निकाय का दसवां प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जातक' है। इतिहास, साहित्य और धर्माचार की दृष्टि से इसका उल्लेखनीय महत्त्व है। इस ग्रन्थ में भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों से सम्बद्ध गाथाएं तथा उक्तियॉं हैं। 'जातक' शब्द का अर्थ है जन्म विषयक। यह 22 निपातों में विभक्त हैं जिनमें कुल मिलाकर 547 जातक हैं। सभी जातक गाथाओं में निबद्ध हैं। इनका विस्तार हमें 'जातकट्टकथा' में प्राप्त होता है। जातकों के पूर्ण अर्थबोध के लिए जातकट्टकथा का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। जातकट्टकथा के प्रारम्भ में एक सुदीर्घ भूमिका है जिसे 'निदानकथा' कहा जाता है। निदानकथा में सिद्धार्थ गौतम के जीवन चरित्र के साथ, उनके पूर्व–पूर्व 24 बुद्धों का जीवन चरित भी वर्णित है, जिनका संग्रह 'बुद्धवंस' से किया गया है। प्रत्येक जातक कथा के चार भाग होते हैं – पच्चुपन्न वत्थु, अतीत वत्थु, अत्थ वण्णना और समोधाम । 'पच्चुप्पन्न वत्थु' का अभिप्राय है वर्तमान कथा अर्थात् भगवान् बुद्ध की समकालीन कोई घटना । 'अतीत वत्थु' का तात्पर्य है भगवान् बुद्ध द्वारा कही गयी पूर्व जन्म की कथा। 'अत्थ वण्णना' का तात्पर्य है गाथाओं की व्याख्या, जिसमें गाथाओं का अर्थविश्लेषण और स्पष्टीकरण भली–भॉंति किया गया हो। 'समोधान' अन्तिम अंश है जिसमें भगवान् बुद्ध, उस जातक (कथा) के वर्तमान प्रधान पात्रों के पूर्व जन्म का नामादि परिचय देते हैं और

बताते हैं कि वे अर्थात् बोधिसत्त्व स्वयं उस समय किस योनि में उत्पन्न होकर किस रूप में थे?

जातकट्टकथा के अनुशीलन से जातकों महत्त्व अच्छी तरह ज्ञात होता है। आर्यशूर द्वारा विरचित 'जातकमाला' प्रकाशित है। इन जातकों की प्राचीनता के द्योतक चिह्न भरहुत, सांची और अन्यत्र भी बौद्धस्थलों में उत्कीर्ण जातक कथाओं के चित्र हैं।

यद्यपि जातको का मुख्य उद्देश्य धर्मोपदेश है तथापि इनसे तत्कालीन भारत की ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक और धार्मिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान होता है। उस समय के समाज का चित्रण, अत्यन्त उपादेय तथा मूल्यवान है। जातक साहित्य सही अर्थों में जन–साहित्य है। भारतीय जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं, जो जातक कथाओं में उपलब्ध न हो। इसमें हमारी सामान्य दिनचर्या से लेकर ललितकला, शिल्पकला, व्यापार विधि से लेकर अर्थ, धर्म, समाज विषयक नीतियॉ तथा राजनीति भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। उस काल का भूमण्डलीय पर्यावरण भी पर्याप्ततया उल्लिखित है।

अभिधम्म पिटक – त्रिपिटक वाङ्मय का तृतीय मुख्य भाग है – अभिधम्मपिटक ।

वर्ण्यविषय के अनुसार 'अभिधम्म' का अर्थ विभिन्न प्रकार से किया गया है। 'सुत्त पिटक' में 'अभिधम्म' का प्रयोग 'अभिविनय' के साथ किया गया है जहॉ उसका आशय धर्म सम्बन्धी गम्भीर उपदेश प्रतीत होता है। आचार्य बुद्धघोष ने 'अभिधम्म' का अर्थ 'उच्चतर धम्म' अथवा 'विसेस धम्म' किया है।

सुत्तपिटक में सन्निहित बुद्धदेवना को ही अभिधम्मपिटक में कुछ अधिक व्याख्यात्मक रीति से प्रस्तुत किया गयाय है किन्तु कहीं से ऐसा नहीं लगता कि एक ही वस्तु का पिण्ट पेषण हो रहा है। उदाहरण के लिए 'विभज्यवाद' को लिया जा सकता है। यह दर्शन सुत्त और अभिधम्म –दोनों ही का विषय है। 'विभज्यवाद' कहते हैं। मानसिंह और भौतिक जगत दोनों का ही विश्लेषण कर लेने पर भी 'अत्ता' (आत्मा) के न प्राप्त होने को। भिक्षु जगदीश काश्यप इसे 'रथ' के दृष्टान्त से समझाते हैं। जैसे रथ चक्र की धुरी, नाभि, द्वारों से अलग सत्ता नहीं है, वैसे ही रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार आदि स्कन्धों से भिन्न पुद्गल की कोई सत्ता नहीं है।

अभिधम्मपिटक में व्यक्ति के साथ बाहय संसार के सम्बन्ध की व्याख्या करने के लिए बारह आयतनों का निरूपण किया गया है। इसमें स्कन्धों का भी अङगसहित विवरण प्रस्तुत किया गया है।

अभिधम्मपिटक का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है – 'धम्म संगणि' । इस ग्रन्थ में भौतिक एवं मानसिक जगत् की विभिन्न दशाओं का गहन तात्त्विक विवेचन किया गया है। इसकी विशेषता है बाह्य और आभ्यन्तर जगत नैतिक व्याख्या। नैतिक व्याख्या का अभिप्राय है कर्म के शुभाशुभ से अतिरिक्त विभागों में रूप में व्याख्या। ऐसे सूक्ष्म विवेचनों के कारण ही धम्मसंगणि अभिधम्म वाङ्मय की प्रतिष्ठा के रूप में जाना जाता है।

'विभंग' अभिधम्मपिटक का द्वितीय ग्रन्थ है। धम्मसंगणि का व्यापक विश्लेषण इसमें वर्गबद्ध किया गया है। इस प्रकार, यह धम्मसंगणि का पूरक ग्रन्थ है। विभंग का अर्थ है विस्तृत विभाजन। विभंग में 18 विभाग हैं। विभंग के ये विभाग स्वयं में (प्रत्येक पृथक्–पृथक) पूर्ण हैं।

विभंग के पश्चात् 'धातुकथा' निबद्ध है। इस ग्रन्थ का वर्ण्य विषय है स्कन्ध, आयतन और धातु। इन तीनों का सम्बन्ध धर्मों के साथ प्रदर्शित करना ही धातुकथा की विशेषता है। वहां इन धर्मों की संख्या 125 है।

'पुग्गल पञ्ञति' भी अभिधम्मपिटक का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। 'पुग्गल' का अर्थ है जीव– व्यक्ति और 'पञ्ञति' का अर्थ है प्रज्ञप्ति – ज्ञान। इस प्रकार, नाना प्रकार के व्यक्तियों के विषय में ज्ञान कराना ही इस ग्रन्थ का वर्ण्यविषय है। इस ग्रन्थ में दस अध्याय हैं।

अभिधम्मपिटक में 'कथावत्थु' के अन्तर्गत कुछ दार्शनिक सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है। इस ग्रन्थ में 23 अध्याय हैं। इसी प्रकार, दस अध्यायों में विभक्त 'यमक' अभिधम्म में प्रयुक्त पदावली की निश्चित व्याख्या प्रस्तुत करता है। प्रश्नों के अनुकूल – प्रतिकूल युग्मकों में रखने के कारण इसका नाम अन्वर्थक है।

अभिधम्मपिटक में 'पट्ठान' का स्थान कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसमें 'प्रतीत्यसमुत्पाद' को समझाया गया है।

त्रिपिटक के रूप निर्धारण और अट्ठकथाओं के निर्माण के बीच के समय में कुछ अन्य भी पालिसाहित्य को समृद्ध करने वाले ग्रन्थों की रचना हुई। अट्ठकथाओं के साथ ही नेत्तिप्रकरण और मिलिन्दपञ्ह ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

अट्ठकथा –

पालि साहित्य में अट्ठकथाओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये अट्ठकथाएं प्रायः भगवान् बुद्ध के एक हजार वर्ष पश्चात् लिखी गयीं । जो तीन अट्ठकथाकार प्रसिद्ध हैं, वे हैं बुद्धघोष, बुद्धदत्त और धम्मपाला इनमें से बुद्धघोष ऐसा नाम है जो पालिसाहित्य का पर्याय ही है। इनके कर्तृत्व को

देखकर आश्चर्य होता है कि इन्होंने कैसे अकेले इतनी अधिक साहित्यिक रचनाएँ कर लीं। इनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं –

1. विसुद्धिमग्ग, 2. समन्तवासादिका, 3. कंखावितरिणी, 4. सुमंग्मा–विलासिनी, 5. पपञ्चसूदनी, 6. सारत्थप्रकासिनी, 7. मनोरथपूर्णा, 8. मरमत्थ जोतिका, 9. अट्ठसालिनी, 10. सम्मोहविनोदिनी, 11–15. पञ्चप्यकारणट्टकथा, 16. जातकट्टवण्णना, 17. धम्मपट्टकथा एवं 18. ज्ञानोदय आदि।

इनमें से प्रथम और अन्तिम के अतिरिक्त शेष सभी किसी न किसी ग्रन्थ की अट्ठकथायें हैं।

बुद्धदत्त भी बुद्धघोष के समकालिक हैं। इन्होंने भी उत्तरविनिच्छय, विनय विनिच्छय, अभिधम्मावतार, रूपारूपविभाग, और मधुरत्थविलासिनी नामक पाँच अट्ठकथायें लिखीं हैं –

तीसरे अट्ठकथाकर धम्मपाल की रचनाएं अधोलिखित हैं–

1. परमत्थदीपनी – खुद्दक निकाय के उन ग्रन्थों की अट्ठकथाएं हैं जिनपर बुद्ध घोष ने अट्ठकथा नहीं लिखी है।
2. तेत्तिपकरणट्ठकथा या तेत्तियपकरणस्स अत्थवण्णना
3. तेत्तित्थकथाय टीका या लीनत्थवण्णना
4. परमत्थमंजूसा या महाटीका
5. लीनत्थपकासिनी
6. जातकट्ठकथाटीका
7. बुद्धदत्त कृत मधुरत्थविलासिनी की टीका

उपयुर्क्त अट्ठकथाकारों के अतिरिक्त आनन्द, चुल्लधम्मपाल, उपसेन, महानाम आदि ने भी अट्ठकथायें लिखी हैं। आचार्य अनिरूद्ध ने 'अभिधम्मत्थ संग्रह' नामक ग्रन्थ लिखा है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

नेत्तिपकरण– नेत्तिपकरण का संक्षिप्त नाम 'नेत्ति' भी है, इसे नेत्तिगन्ध (ग्रन्थ) भी कहते हैं। 'नेत्ति' का अर्थ है – 'मार्गदर्शिका' । जो सम्बन्ध 'निरूक्त' का वेदों से है वही सम्बन्ध नेत्तिपकरण का त्रिपिटकों से है। नेत्तिपकरण की रचना का प्रयोजन है त्रिपिटकों के (बुद्धवचनों के) तात्पर्य निर्णयों या युक्तियों का शास्त्रीय विवेचन करना।

मिलिन्दपञ्हो – यह ग्रन्थ पालिवाङ्मय में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस ग्रन्थ के नाम की तीन वर्तनियां प्रचलित हैं – मिलिन्दपञ्ह, मिलिन्दपञ्हा और मिलिन्दपञ्हो। आचार्य बुद्धघोष ने इस ग्रन्थ का समादर करते हुए

अट्ठकथाओं में अनेक उद्धरण इससे दिये हैं । ग्रीक राजा मिनैण्डर को 'मिलिन्द' कहा गया है और उनके साथ मदन्त नागसेन के संवाद के रूप में यह ग्रन्थ लिखा गया है। यह संवाद ऐतिहासिक है और पूरा ग्रन्थ सात भागों में विभक्त है – ग्रन्थ की भूमिका है 'बहिरकथा', अनात्मवाद के साथ पुनर्जन्मवाद की संगति है 'लक्खणपञ्हो' , राजा मिलिन्द को संशयों का निवारण है – 'विमतिच्छेदनपञ्हो', त्रिपिटक के परस्पर विरोधी प्रश्नों का समाधान है – 'विमतिच्छेदनापञ्हो', त्रिपिटक के परस्पर विरोधी प्रश्नों का समाधान है – 'मेण्डकपञ्हो' । यह ग्रन्थ का सबसे बड़ा भाग है। भगवान् बुद्ध के कार्यों के आधार पर उनकी सत्ता सिद्ध करता है 'अनुमानपञ्हों' । इस भाग में 'धम्मनगर' का निरूपण अत्यन्त प्रभावशाली है। तेरह अवधूत नियमों का वर्णन है – 'धुतङ्गकथा' । इसमें भौतिक प्रपंचों में फँसे हुए गृहस्थ द्वारा भी शान्त निर्वाण पद प्राप्त करने का विश्वास दिलाया गया है। सातवें और अन्तिम भाग 'ओपम्मकथापञ्हो' में अर्हत्व का साक्षात्कार करने के इच्छुक व्यक्ति को किस प्रकार किन–किन गुणों का सम्पादन करना चाहिए। यह विविध उपमाओं के द्वारा बताया गया है।

वंश साहित्य – संस्कृत में पुराणों के समान पालि में 'वंश' ग्रन्थों की रचना हुई है। इन वंश ग्रन्थों में पुराणों की अपेक्षा ऐतिहासिक तथ्यों की स्पष्टता कुछ अधिक ही है। वंशग्रन्थों में तत्कालीन राजाओं के वंशों का ही मुख्यतया वर्णन है। कुछ प्रसिद्ध वंश ग्रन्थ इस प्रकार हैं– 1. दीपवंस, 2. महावंश, 3. चूलवंस, 4. महाबोधिवंस, 5. बुद्धघोसुप्पत्ति वंस, 6. सद्धमसंगह, 7. थूपवंस, 8. अत्तनगलुविहारवंस, 9. दारावंस, 10. गन्ध वंस, 11. छकेसधातुवंस और 12. समानवंस आदि ।

काव्य साहित्य – संस्कृत और प्राकृत भाषा की तुलना में पालिभाषा में काव्यग्रन्थ नगण्य है। त्याग का उपदेश देने वाले बौद्धधर्म में अधिकांशतः धर्म–दर्शन का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थों की ही रचना हुई । त्रिपिटकों में काव्यतत्त्व दृष्टिगत होते हैं किन्तु आचार्यों में साहित्यिक अभिरूचि का अभाव था। फिर भी पालिभाषा में कुछ अवश्य उपलब्ध है। यथा– अनागतवंस, तेलकराहकथा, निजचरित, जिनालङ्कार, पजमधु, सद्धम्मोपायन, पञ्चगतिदीपन, लोकघदीपसार के अतिरिक्त कुछ आख्यान कथा ग्रन्थ हैं – रसवाहिनी, बुंद्धालंकार, सहस्सवत्थुप्पकरण और राजाधिराजविलासिनी।

सिंहली भिक्षु संघरक्षित ने 'वुत्तोदय' नामक छन्दःशास्त्र का एक ग्रन्थ लिखा है और एक काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ 'सुबोधालंकार' भी लिखा है।

1.5 पालि–व्याकरण

प्रथमतः भाषा और फिर व्याकरण । पालिभाषा का व्याकरण अपेक्षाकृत बहुत बाद में निर्मित हुआ। वर्तमान काल में पालि के प्रमुख तीन व्याकरण

उपलब्ध हैं – कच्चायन या कच्चान व्याकरण,मोग्गलान व्याकरण और सदूनीति। इन व्याकरणों का जो पूरक अथवा उपकारी साहित्य लिखा गया, उस पर भी पाणिनि व्याकरण और कातन्त्र व्याकरण का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

कच्चायन व्याकरण – पालिभाषा के उपलब्ध व्याकरणों में कच्चायन या कच्चान व्याकरण सर्वप्राचीन और महत्त्वपूर्ण है। इसे 'सुसन्धिकप्प' भी कहते हैं। ऐसी मान्यता है कि भगवान् बुद्ध के प्रमुख अस्सी शिष्यों में से एक, महाकच्चायन ने इस व्याकरण का निर्माण किया था। इस व्याकरण ग्रन्थ में चार कप्प और तेईस परिच्छेद हैं। सन्धिकप्प, नामकप्प, आख्यातकप्प और किब्बिधानकप्प – ये चार कप्प हैं । संधि कप्प में ही संज्ञा विधान अन्तर्भूत है। नामकप्प कण्डों में विभक्त है। इसमें कारक, समास और तद्धित विशेष रूप से हैं। उभादिकप्प, किब्बिधानकप्प में ही रखा गया है।

कच्चायन व्याकरण सम्प्रदाय में अनेक ग्रन्थ, टीकाएं आदि लिखी गयी। इन सब पर पाणिनि व्याकरण का प्रभाव है।

मोग्गलान व्याकरण – इस व्याकरण की रचना आचार्य मोग्गलान ने की है। इसमें कुल 817 सूत्र हैं। इन सूत्रों पर वृत्ति भी भोग्गलान ने लिखी है। इसके परिशिष्ट भाग में धातुपाठ, गणपाठ तथा उपादिवृत्ति का भी संकलन है। इस व्याकरण सम्प्रदाय में भी कुछ अन्य ग्रन्थ निर्मित है।

सद्दनीति – यह पालि व्याकरण मूलतः ब्रह्मदेश (बर्मा) में 1154 ई. में निर्मित हुआ। इसके निर्माता बर्मी भिक्षु भग्गवंस थे जिनकी प्रसिद्धि 'अंग्गपंडित ततिय' के रूप में अधिक थी। श्रीलंका के पालिविदों ने इस व्याकरण को प्राप्त किया। यह 'सद्दनीति' मूलतः कच्चायन व्याकरण का उपजीवी है। सद्दनीति के तीन विभाग हैं – पदमाला, धातुमाला और सुत्तमाला। कुल मिलाकर सत्ताइस अध्याय हैं जिनमें से प्रथम अट्ठारह अध्याय 'चूलसद्दनीति' कहे जाते हैं।

इन तीनों व्याकरणों के अतिरिक्त कुछ अन्य भी सामान्य कोटि के व्याकरण ग्रन्थ हैं।

अभिधानप्पदीपिका (मोग्गलानकृत) और 'एकक्खरकोस' (सद्घम्मकित्ति कृत) नामक दो पालिकोश भी मिलते हैं।

1.5.1 वर्णमाला

1. पालि भाषा में 'अ' आदि 43 (तैंसालीस) वर्ण हैं –'अ आदया तितालिस वण्णा' (मो. 1.1)

2. वर्णमाला के प्रारम्भिक दस वर्ण 'स्वर' हैं –'दसादो सरा' (मो. 1.2) । ये दस स्वर वर्ण हैं – अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ । इनमें से समीपवर्ती

दो –दो स्वर 'सवर्ण' कहे जाते हैं– 'द्वे द्वे सवण्णा' (मो. 1.3)। अर्थात् अ और आ, इ और ई, उ और ऊ, ए और ऐ तथा ओ और औ – परस्पर सवर्ण हैं। ये वर्ण क्रमशः ह्रस्व और दीर्घ होते हैं।

3. 'क' आदि तैंतीस वर्ण 'व्यञ्जन' कहे जाते हैं – 'कादयो व्यञ्जना' (मो. 1.6) कादि तैंतीस वर्ण अधोलिखित हैं –

क	ख	ग	घ	ङ			
च	छ	ज	झ	ञ			
ट	ठ	ड	ढ	ण			
त	थ	द	ध	न			
प	फ	ब	भ	म			
य	र	ल	व	स	ह	ळ	अं।

'ळ' एक वैदिक व्यञ्जन पालिभाषा में प्राप्त है किन्तु संस्कृत (लौकिक) भाषा में यह अनुपलब्ध है।

4. 'अं' (अनुस्वार) की गणना व्यञ्जनवर्ण में है और इसे पालिभाषा में 'निग्गहीत' कहते हैं – 'बिन्दु निग्गहीतं' (मो. 1.8) ।

5. पालि भाषा में ' : ' (विसर्ग) का अभाव है। विसर्ग के स्थान पर 'ओ' रहता है।

6. संस्कृत के स्वरों का पालि के स्वरों में परिवर्तन अनियमित होता है। इन परिवर्तनों का स्वरूप निश्चित करना असम्भव प्राय है। उदाहरण के लिए संस्कृत के 'अ' स्वर का पालि के विभिन्न स्वरों में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है –

अ	> आ	प्रत्यमित्रं	=	पच्चामित्तो
	> इ	राजस्त्री	=	राजित्थि
	> उ	निमज्जति	=	निमुज्जति
	> ए	फल्गु	=	फेल्गु

इसी प्रकार अन्य स्वरों के परिवर्तन में भी विचलन दृष्टिगोचर होता है।

7. व्यञ्जनों के परिवर्तन भी इसी प्रकार अनियमित होते हैं। यथा –

क	> ग	मूकः	=	मूगो
	> ट	कक्कोलं	=	टक्कोलं
	> क्क	भिषक्	=	भिसक्को
	> य	स्वकं	=	स्वयं

> व लकुचं = लवुजं इत्यादि ।

कभी–कभी रेक 'ॅ' को अनुस्वार (निग्गहीत) हो जाता है –

अकार्षुः = अकंसु

संयुक्त व्यञ्जनों के परिवर्तन भी नितान्त अनियमित होते हैं । कहीं–कहीं स्वरभक्ति (सरभत्ति) का नियम लागू होता है। यथा –

धर्मः = धम्मो , कर्म = कम्म

क्षुद्रः = छुद्दो , पक्षः = पच्छो

अस्तः = अत्तो षष्ठः = सट्ठो इत्यादि

कहीं प्रारम्भिक वर्ण का लोप भी हो जाता है। यथा –

स्थानं = ठानं , प्रस्थाय = पट्ठाय

स्पन्दः = फन्दो , स्फटिकः = फटिको इत्यादि ।

1.5.2 सन्धि

पालि भाषा में सन्धि की व्यवस्था वैकल्पिक है। सन्धि तीन प्रकार की होती है – 1. स्वर सन्धि 2. व्यञ्जन सन्धि और 3. निग्गहीत सन्धि

स्वर सन्धि

1. सरोलोपो सरे (मो.1.26) । यदि स्वर से परे स्वर हो तो कभी–कभी पूर्व स्वर का लोप हो जाता है। यथा –

तत्र + इमे = तत्रिमे, तत्रेमे ।

यस्य + इन्द्रियानि = यस्सिन्द्रियानि, यस्सेन्द्रियानि ।

2. **परो क्वचि** (मो. 1.27) । स्वर से परे स्वर रहने पर कभी कभी परवर्ती स्वर का लोप हो जाता है। यथा –

सो + अपि = सोपि, सोऽपि ।

सा + एव = साव, सैव ।

ते + अहं = तेहं, ते अहं ।

3. **न द्वे वा** (मो. 1.28) । स्वर से परे स्वर रहने पर, कभी–कभी दोनों स्वरों में से किसी का भी लोप नहीं होता । यथा –

लता + इव = लता इव (विकल्प से 'लताव', 'लतेव')

4. युवण्णानमेओ लुत्ता (मो. 1.29) । लुप्त हुए स्वर से परे, कभी–कभी 'इ' का 'ए' और 'उ' का 'ओ' हो जाता है। यथा –

तस्स + इदं = तस्स् + इदं = तस्स् एदं = तस्सेदं

वात + ईरितं = वातेरितं ।

वाम + उरू = वामोरू ।

5. यवासरे (मो. 1.30) । 'इ' तथा 'उ' से परे असमान स्वर होने पर उनका क्रमशः 'य' और 'व' हो जाता है। यथा –

वि + अञ्जनं = व्यञ्जनं ।

सु + आगतं = स्वागतं ।

6. ए ओ नं (मो. 1.31) । इसी प्रकार 'ए' और 'ओ' के परे स्वर आने पर क्रमशः 'य' और 'व' हो जाता है। यथा –

ते + अज्ज = त्यज्ज ।

स्पे + अहं = स्वाहं ('व्यञ्जने दीधरस्सा' से दीर्घ)।

7. गोस्सावङ (मो. 1.32) । 'गो' शब्द के पश्चात् स्वर आने पर 'गो' का 'गव' आदेश हो जाता है। यथा –

गो + अस्सं = गव + अस्सं = गवास्सं ।

व्यञ्जन सन्धि

8. व्यञ्जने दीघरस्सा (मो. 1.33)। परे व्यञ्जन होने पर, प्रायः पूर्व स्थित ह्रस्व या दीर्घ स्वर का क्रमशः दीर्घ या ह्रस्व हो जाता है।

यथा – तत्र + अयं=तत्र + यं ('परो क्वचि' सूत्र से पर स्वर का लोप)

= तत्रायं

मुनि + चरे = मुनी चरे

सम्मा + एव =सम्मदेव (वनतरगाचागमा – मो. 1.45 से स्वर से पूर्व 'द' का आगम)

सम्म + धम्मो = सम्मा धम्मो ।

9. सरम्हा द्वे (मो. 1.34) । यदि स्वर से परे व्यञ्जन हो तो कभी–कभी उस व्यञ्जन काद्वित्व हो जाता है। यथा –

प + गहो = पग्गहो ।

इध + पमादो = इधप्पमादो ।

यत्र + ठितं = यत्रट्ठितं ।

10. चतुत्थदुतिये स्वे संततिय पठमा (मो. 1.35)। यदि किसी वर्ग के चतुर्थ या द्वितीय वर्ण संयुक्त हों तो उसी वर्ग का क्रमशः तृतीय या प्रथम वर्ण हो जाता है। यथा –

नि + घोसो = निग्घोसो ('सरम्हा द्वे' – मो. 1.34 से)।

= निग्घोसो ।

अ + खन्ति = अख्खन्ति = अक्खन्ति।

अ + फुटं = अफ्फुटं = अप्फुटं ।

11. वितिस्से वेवा (मो. 1.36) । 'इति' शब्द के पश्चात् यदि 'एव' शब्द हो तो 'इति' का विकल्प से 'इत्व' आदेश हो जाता है। यथा –

इति + एव = इत्वेव ।

12. ए ओ नम वण्णे (मो. 1.37) । 'ए' तथा 'ओ' के बाद यदि कोई भी वर्ण हो तो उन दोनों का कहीं–कहीं 'अ' हो जाता है । यथा –

सो + सीलवा = स सीलवा ।

एसो + धम्मो = एस धम्मो ।

निग्गहीत (अनुस्वार) सन्धि

13. निग्गहीतं (मो. 1.38) । कहीं–कहीं निग्गहीत (ं) का आगम हो जाता है । यथा –

चक्खु + उदपादि = चक्खुं उदपादि ।

त + रवणे = तं रवणे ।

त + सभावो = तं सभावो।

14. लोपो (मो. 1.39) । कहीं–कहीं निग्गहीत का लोप हो जाता है। यथा–

बुद्धानं + सासनं = बुद्धान सासनं

गन्तुं + कामो = गन्तु कामो ।

15. परसरस्स (मो. 1.40) । निग्गहीत से परे आने वाले स्वर का कभी–कभी लोप हो जाता है। यथा –

त्वं + असि = त्वंसि ।

इदं + अपि = इदंपि ।

16. वग्गे वग्गन्तो (मो. 1.41) । निग्गहीत से परे किसी वर्ग का वर्ण रहने पर निग्गहीत विकल्प से उस वर्ग के अन्तिम वर्ण में परिणत हो जाता है। यथा–

तं + करोति = तङ्करोति ।

तं + चरति = तञ्चरति ।

तं + ठानं = तण्ठानं ।

तं + धनं = तन्धनं ।

तं + पाति = तम्पाति ।

17. येवहिसु ञ्ञो (मों. 1.42) । निग्गहीत के बाद आये हुए 'य', 'एव' और 'ह' शब्दों के योग में निग्गहीत का कभी कभी 'ञ्ञ' हो जाता है। यथा–

यं + एव = यञ्ञदेव ।

तं + एव = तञ्ञव ।

तं + हि = तञ्ञहि ।

18. ये संस्स (मो. 1.43) ।. यदि 'य' परे हो तो पूर्वस्थित 'सं' शब्द के निग्गहीत का 'ञ' हो जाता है । यथा –

सं + यमो = सञ्ञमो।

19. मयदा सरे (मो. 1.44) । स्वर परे रहने पर, पूर्व स्थित निग्गहीत का 'म', 'य' और 'द' आदेश हो जाता है। यथा –

तं + अहं = तमहं ।

तं + इदं = तयिदं ।

तं + अलं = तदलं ।

20. संयोगादिलोपो (मो. 1.53) । कभी–कभी संयोग के आदिभूत अवयव का लोप हो जाता है। यथा –

पुप्फं + अस्सा = पुप्फंसा (आदिभूत अवयव 'अस्' का लोप)

जायते + अग्गिनि = जायते गिनि (आदिभूत अवयव 'अग्' का लोप)

1.5.3 समास

समास की व्यवस्था संस्कृत की ही तरह प्रायः पालिभाषा में भी है।

(क) अव्ययीभाव समास

1. असंख्यं विभत्तिसम्पत्ति समीप साकल्याभावयथापच्छायुगपदत्थे (मो. 3.2)।

विभत्ति, सम्पत्ति, समीप, साकल्प, अभाव, यथा, पश्चात्, और युगपद् – इन अर्थों में अव्यय के साथ समास होता है। यथा –

नगरस्य समीपं = उपनगरं । (समीप)

मक्खिकानं अभावो = निम्नाक्खिकं । (अभाव)

रथस्स पच्छा = अनुरथं (पश्चात्) । इत्यादि ।

2. यावावधारणे (मो. 3.4) । अवधारणा (इतना) अर्थ में 'याव' (यावत्) शब्द के साथ समास होता है। यथा –

जीवस्स यत्तको परिच्छेदो = यावजीवं (अवधारणा)।

3. ओरेपरिपटिपारेमज्झेट्ठुद्धाधोन्तो वा छट्ठिया (मो. 3.8)। ओरे, उपरि, परि,पारे, मज्झे, हेट्ठा, उद्ध, अधो और अन्तो – इन शब्दो का षष्ठ्यन्त के साथ समास होता है। यथा –

गङ्गाय ओरे = ओरेगङ्ग ।

सिखरस्स उपरि = उपरिसिखरं ।

यमुनाय पारे = पारेयमुनं ।

पासादस्स अन्तो = अन्तो पासादं । इत्यादि ।

(ख) तप्पुरिस समास

4. अमादि (मो. 3.10) । 'अं' आदि स्याद्यन्त शब्दों का स्याधन्त के साथ तप्पुरिस (तत्पुरूष) समास होता है। यथा –

गामं गतो = गामगतो।

कम्मधारय

5. विसेसनमेकत्थेन (मो. 3.11) । स्याधन्त विशेषण का अपने स्याधन्त विशेष्य के साथ समास होता है। यथा –

नीलञ्च तं उप्पलं = नीलुप्पलं

नञ्

6. नञ् (मो. 3.12) । 'न' के साथ स्याधन्त का समास होता है। यथा –

न मोघो = अमोघो ।

दिगु

7. संख्यादि (मो. 3.21) । यदि आदि में संख्यावाचक शब्द हो तो नपुंसक लिङ्गान्त समाहार समास होता है। यथा –

पञ्चन्नं गुन्नं समाहारो = पञ्चगतं ।

(ग) बहुब्बीहि समास

8. वानेकञ्ञत्थे (मो. 3.17) । अनेक स्याधन्त शब्दों का समास होकर उनसे भिन्न एक अन्य पद का बोध होता है। यथा –

जितानि इन्द्रियानि येन सो = जितिन्द्रियो ।

न अत्थि भयं रास्स सो = अभयं

चन्दो तिय मुखं यस्सा सा = चन्दमुखी ।

लम्बा कण्णा यस्य सो = लम्बकण्णो ।

(घ) द्वन्द समास

9. चत्थे (मो. 3.19) । दो या दो से अधिक स्याधन्त शब्दों का 'और' के

अर्थ में समास होता है। यथा –

चक्खु च सोतं च = चक्खुसोतं

समणो च ब्राह्मणे च = समणब्राह्मणा । इत्यादि ।

1.5.4 कारक (विभक्त्पर्थ)

कारक की भी व्यवस्था पालि में संस्कृत के प्रायः समान ही है।

(क) पठमा विभत्ति

1. पठमात्थमत्ते (मो. 2.39) । केवल अर्थ प्रकट करने अथवा कर्तृवाच्य के कर्ता में प्रथमा विभक्ति होती है। यथा –

समणो झापति (श्रमण ध्यान लगाता है)।

(ख) दुतिया विभत्ति

2. कम्मे दुतिया (मो. 2.21) । कर्तृवाच्य के कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा –

पुरिसो ओदनं पचति (पुरूष चावल पकाता हैं)।

3. कालद्धानमच्चन्तसंयोगे (मो. 2.3) । क्रिया, गुण और द्रव्य के लगातार होने पर, समय तथा दूरी वाचक शब्द में द्वितीय विभक्ति होती है। यथा –

1. समणो मासं विनयं पठति (श्रमण महीना भर लगातार) विनय (पिटक) पढ़ता है।
2. दिवसं गेहो सुञ्ञो तिट्ठति (घर दिनभर सूना रहता है)
3. मासं गुलधाना (महीने भर गुड़ लाई चलती है)
4. कोसं कुटिला नदी (नदी कोस भर टेढ़ी है)।
5. कोसं पब्बते (कोस भर पहाड़ (लगातार) पड़ता है)।

4. ध्यादीहि युत्ता (मो. 2.9)। धिक्, हा, अन्तरा, अन्तरेन, अभितो, उभयतो, परितो, सब्बतो – शब्दो के योग में दुतिया विभत्ति होती है। यथा–

धि अलसं सिस्सं (आलसी शिष्य को धिक्कार हैं)।

हा पुत्तं (हाय, बेटा)।

अन्तरा च राजगहं नालन्दं च (राजगृह और नालन्दा के बीच) राजानं अन्तरेन पासादं न सोभति (राजा के बिना महल अच्छा नहीं लगता)।

तलाकं अमितो उभयतो वा दीघा रूक्खा तिट्ठन्ति (तालाब के दोनो ओर लम्बे लम्बे वृक्ष हैं)।

गामं परितो सब्बतो वा पब्बतो (गांव के चारों कोर पर्वत हैं)।

5. रिते दुतिया च विनाऽञ्ञत्र ततिया च (मो. 2.31–32)। रिते (ऋते), बिना और अञ्ञत्र (अन्यत्र) के योग में द्वितीय तथा तृतीया विभक्ति होती है। यथा–

सद्धर्मं रिते अञ्ञो को जने रक्खति? (सद्धर्म के अतिरिक्त और कौन मनुष्यों की रक्षा कर सकता है?)

ज़लं जलेन का बिना रूक्खो सुक्खति (जल के बिना पेड़ सूखता है)

तथागतं अञ्ञत्र को अञ्ञों लोकनायको? (तथागत = बुद्ध को छोड़ कर अन्य कौन लोक को सही मार्ग पर ले चलने वाला है?)

(ग) ततिया विभत्ति

6. कत्तुकरणेसु ततिया (मो. 2.18)। भाववाच्य और कर्मवाच्य के कर्ता में, करण कारण में तथा क्रिया विशेषण में तृतीया विभक्ति होती है। यथा–

पुरिसन गम्मति = मनुष्य के द्वारा चला जाता है।

बालकेन चन्दो दिस्सति = बालक के द्वारा चन्द्रमा देखा जाता है।
(करण कारक) दण्डेन सघं पहरति = डण्डे से सर्प मारता है।

(क्रिया विशेषण) गोत्तेन गोतमो = गोत्र से गौतम है।

7. सहत्थेन (मो. 2.19)। साथ होने के अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है।

यथा – आचरियो सिस्सेन सह = समं = सद्धिं आगच्छति (आचार्य शिष्यों के साथ आते हैं)।

8. तुल्यत्थेन वा ततिया (मों. 2.42)। 'तुल्य' अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है। कभी–कभी षष्ठी भी होती है। यथा –

आचरियेन आचरियस्स वा सदिसो सिस्सो (आचार्य जैसा ही शिष्य है)। जनकेन जनकस्स तुल्यो पुत्तो (पिता के समान पुत्र है)।

9. हेतुम्हि (मों. 2.21)। हेतु–अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है। यथा – सो इध अन्नेन वसति (वह यहाँ खाने के उद्देश्य से रहता है)। धम्मेन यसो वड्ढति (धर्म से यश बढ़ता है)।

(घ) चतुत्थी विभत्ति

10. चतुत्थी सम्पदाने (मो. 2.26)। सम्प्रदान में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा– याचकस्स भिक्खं ददाति (याचकों को भिक्षा देता है) ।

ब्राह्मणानं वत्थं ददाति (ब्राह्मणों को वस्त्र देता है)।

11. तादत्थे (मो. 2.27)। 'उसके लिए' के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा – लोकहिताय बुद्धो धम्मं देसेति (लोकहित के लिए बुद्ध धर्म का उपदेश करते हैं)।

बालकानं मोदकं रूच्चति (बच्चों को लड्डू प्रिय लगता है)।

(ङ) पञ्चमी विभत्ति

12. पञ्चम्यवधिस्मा (मो. 2.28)। अवधि वाचक शब्द में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा – गामस्मा गच्छति (गॉव से जाता है)।

चोरस्मा भायति (चोर से डरता है)।

(च) छट्ठी विभत्ति

13. छट्ठी संबन्धे (मो. 2.41)। सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा –

आचरियस्स पुत्तो (उराचार्य का पुत्र)। राजस्स पुरिसो (राजा का आदमी)।

14. यतो निद्धारणं (मो. 2.38)। जाति, गुण और क्रिया के आधार पर जहॉ अनेक में से एक का निर्धारण किया जाय, वहॉ षष्ठी अथवा सप्तमी विभक्ति होती है। यथा – मनुस्सानं मनुस्सेसु वा खत्तियो वीरो (मनुष्यों में क्षत्रिय वीर होते है)। कण्हा गावीनं गावीसु वा सम्पन्नखीरतमा (गायों में काली गाय अधि क दूध देने वाली होती है) दानानं दानेसु वा धम्मदानं सेट्ठं (दानों में धर्म दान श्रेष्ठ होता है)।

(छ) सत्तमी विभत्ति

15. सत्तम्याधारे (मो. 2.34)। आधार में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा –

पब्बते तिट्ठति (पहाड़ पर रहता है)।

कुम्भे ओदनं पचति (हॉडी में चावल पकाता है)।

16. यब्भावो भावलक्खजं (मों. 2.36)। एक कार्य हो चुकने पर जहॉ दूसरे कार्य का होना जाना जाता है, वहॉ सप्तमी विभक्ति होती है। यथा – आचरिये आगते सिस्सा उट्ठहन्ति (आचार्य के आने पर शिष्य उठ खड़े होते हैं)।

1.5.5 कित् पच्चय (कृत् प्रत्यय)

(क) कृत्य

1. **भावकम्मेसु तब्बानीया** (मो. 5.27) । भाव वाच्य और कर्मवाच्य में, धातु से परे 'तब्ब' और 'अनीय' प्रत्यय होते हैं। यथा –

भाव में – मया हसितब्बं हसनीयं वा (मुझे हॅसना चाहिए)।

मया निसीदितब्बं निसीदिनीयं वा (मुझे बैठना चाहिए)।

कर्म में – करो मया कत्तब्बो करणीयो वा (मुझे चटाई बनानी चाहिए)।

तानि वचनानि मया सोतब्बानि सवनीयानि वा (वे वचन मुझे

सुनने चाहिए)।

2. ध्यण् (मों. 5.28) । भाव और कर्म में धातु से पर 'ध्यण्' प्रत्यय लगता है। 'ध्यण्' का केवल 'य' शेष रह जाता है।

यथा – मया इदं न वाच्यं (मुझे यह नहीं कहना चाहिए)।

सिस्सेन पुफ्फानि (शिष्य को फूल चुनने चाहिए) ।

3. गुहादीहि यक् (मो. 5.32) । भाव और कर्म में 'गुह्' आदि धातुओं से 'यक्' प्रत्यय लगता है। 'यक्' का 'य' ही शेष रहता है।

यथा – गुह् + यक् = गुह्यो, गुह्या, गुह्यं ।

दुद् + यक् = दुह्यों, दुह्या, दुह्यं ।

(ख) कृत् 1. वर्तमान कालिक कृत्

4. न्तो कत्तारे वत्तमाने (मो. 5.64)। वर्तमान काल में 'करता हुआ' के अर्थ में धातु से परे 'न्त' प्रत्यय लगता है। यथा – तिट्ठन्तो (खड़ा होता हुआ), गच्छन्तो (जाता हुआ) ।

5. मानो (मों. 5.65) । वर्तमान काल में 'नत' के स्थान पर 'मानो' प्रत्यय भी आता है। यथा – तिट्ठमानो, गच्छमानो ।

2. भूतकालिक कृत्

6. कत्तारि भूते क्तवन्तक्तावी (मो. 5.55) भूतकाल के अर्थ में, धातु से परे 'क्तवन्तु' और 'क्तावी' प्रत्यय होते हैं। यथा –

क्तवन्तु (तवन्तु) – विजितवान् = विजितवा (वि+जि+क्तवन्तु)

क्तावी (तावी) – विजितावी (वि + जि + क्तावी)

7. क्तो भावकम्मेसु (मो. 5.56) । भूतकाल के अर्थ में कर्म और भाववाच्य में धातु से परे 'क्तो' (क्त) प्रत्यय होता है।

यथा – वि + जि + क्तो = विजितो, विजितं, विजिता ।

कर्मवाच्य में ये रूप तीनों लिंगों में होते हैं किन्तु भाववाच्य में केवल नपुंसक लिंग में होते हैं। यथा – विजिते पुरिसो, विजिता इत्थी, विजितं रज्जं। (कर्म वाच्य) मया हसितं, मया सुत्तं (भाववा.)।

3. भविष्यत्कालित कृत्

8. तेस्सपुब्बानागते (मो. 5.67)। वर्तमान काल के 'न्तो' और 'मानो' प्रत्ययों पचिस्सं, पचिस्सन्तो। पचिस्सन्तो, पचिस्समाणो।

4. पूर्वकालिक कृत्

9. पुब्बेक कत्तुकानं (मो. 5.63) । एक ही कर्ता के साथ दो क्रियाओं का

योग होने पर, पहली क्रिया के धातु से परे, विकल्प से 'तून', 'क्त्वान' और 'क्त्वा' प्रत्यय होते हैं। यथा –

सोतून, सुत्वान, सुत्वा (सुनकर) । सो सोतून, सुत्वान,सुखा वा याति (वह सुनकर जाता है) ।

10. प्यो वा त्वास्स समासे (मो. 5.64) । समास होने की दशा में, धातु से परे 'त्वा' का विकल्प से 'प्य' आदेश हो जाता है। 'प्य' का 'य' ही शेष रहता है। यथा –

अभिभावित्वा – अभिभूय ।

( ) हेत्वर्थ कृत्

11. तुं ताये तवे भावे भविस्सति क्रियायं तदत्थायं (मो. 5.61) । 'इस कार्य के निमित्त' – अर्थ में धातु से परे विकल्प से 'तुं' 'ताये' और 'तवे' प्रत्यय होते हैं। यथा – सो कातुं, कत्ताये कातवे वा गच्छति ।

तद्धितप्पच्चय (तद्धित प्रत्यय)

1. तमेत्थस्सत्थीति मन्तु (मो. 4.78) । 'वाला' के अर्थ में पद (शब्द) से परे 'मन्तु' प्रत्यय होता है। यथा –

गोमन्तु (गायों वाला), गतिमन्तु (गतिवाला), सतिमन्तु (स्मृतिवाला)।

2. वन्त्ववण्णा (मो. 4.79) । अकार से परे 'मन्तु' के स्थान में 'वन्तु' होता है। यथा – सीलवन्तु (शीलवाला), पञ्ञवन्तु (प्रज्ञावाला)।

3. इमिया (मो. 4.94)। 'वाला' अर्थ में 'इम' और 'इय' प्रत्यय भी होते हैं।

यथा – पुत्तिमो, पुत्तियो (पुत्रवाला), कित्तिमो, कित्तियो (कीर्तिवाला),

4. किम्हानिद्धारणेरतर–रतमा (मो. 4.57)। अनेक में से एक का निर्धारण करने के प्रसंग में 'किं' शब्द से 'रतर' और 'रतम' प्रत्यय होते हैं। यथा– कतरो कतमो वा देवदत्तो भवतं (आप लोगों में से देवदत्त कौन है?)।

5. तरतमिस्सिकियिट्ठातिसये (मो. 4.64) । 'अतिशय' अर्थ को व्यक्त करने के लिए शब्द से परे 'तर' 'तम' 'इस्सिक' 'इय' और 'इट्ठ' प्रत्यय होता है। यथा – अतिसयेन पापो – पापतरो, पापतमो, पापिस्सको, पापियो पापिट्ठो (वा) अर्थात् अत्यन्त पापी।

6. तमधीते तं जानाति कणिका च (मो. 4.14) । 'उसे पढ़ता है' या उसे जानता है' – के अर्थ में शब्द से परे 'ण', 'क' तथा 'णिक' प्रत्यय होते हैं। यथा – व्याकरणं अधीते जानाति वा = वेय्याकरणो।

7. णो वा पच्चे (मो. 4.1) । 'अपत्य' अर्थ में नाम से परे 'ण' प्रत्यये होता

है। यथा – वसिट्ठस्स अपच्चं = वासिट्ठो । रघुनो = अपच्चं राघवो।

8. ण्य दिच्चादीहि (मो. 4.4) । अपत्थ अर्थ में 'दिति' आदि शब्दों से परे 'ण्य' प्रत्यय होता है। यथा – देच्चो = दिति का पुत्र (दैत्य)। अदिच्चो अदिति का पुत्र (आदित्य)।

9. णो (मो. 4.34)। 'यह इसका है' – इस अर्थ में शब्द से परे 'ण' प्रत्यय होता है। यथा – कच्चायनस्स इदं = कच्चायनं (व्याकरणं)

10. जनादीहि ता (मो. 4.69)। 'उसका समूह' – इस अर्थ में 'जन' आदि शब्दों से परे 'ता' प्रत्यय होता है। यथा – जनानं समूहो = जनता, गजानं समूहो = गजता।

11. मज्झादित्विमो (मो. 4.24)। 'उसमें हुआ' – अर्थ में 'मज्झ' आदि शब्दों से परे 'इम' प्रत्यय होता है। यथा – मज्झिमो, अन्तिमो।

12. कण्णेय्यकयिया (मो. 4.25) । 'उसमें हुआ' – अर्थ में शब्द से परे 'कण', 'पुय्य' 'णेय्यक', 'य' तथा 'इय' प्रत्यय होते हैं। यथा – कोसिनारको (कुसीनारा में हुआ), आरञ्ञको (अरण्य में हुआ), गंगेय्यो (गंगा में हुआ), गम्मो (गॉव में हुआ), गामियो (गॉव में हुआ)।

1.6 शब्द रूप

पालिभाषा में शब्दों के रूप संस्कृत भाषा के ही समान सुप् आदि प्रत्ययों के लगने से बनते हैं किन्तु कई दृष्टियों से रूपों में भिन्नता होती है। इस सन्दर्भ में पालिभाषा शब्दरूपों की कुछ अपनी विशेषताएं अधोलिखित हैं–

1. पालिभाषा में द्विवचन का अभाव है। अतः शब्दों के रूप एक वचन और बहुवचन में ही मिलते हैं।

2. ततिया और पंचमी विभत्ति के बहुवचन के रूपों में समानता होती है।

3. चतुत्थी और छट्ठी विभत्ति के बहुवचन के रूपों में समानता होती है।

4. संज्ञा के शब्द रूपों पर प्रायः सर्वनाम शब्द रूपों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

5. व्यञ्जनान्त शब्दों के अन्तिम व्यञ्जन का लोप हो जाता है। यथा–
भगवान् – भगवा, इत्यादि ।

संज्ञा शब्द

अजन्त पुंल्लिङ्ग

1. अकारान्त शब्द 'बुद्ध'

विभत्ति	एकवचन	बहुवचन
पठमा	बुद्धो	बुद्धा
दुतिया	बुद्धं	बुद्धे
ततिया	बुद्धेन	बुद्धेहि, बुद्धेभि
चतुत्थी	बुद्धस्स, बुद्धाय	बुद्धानं
पंचमी	बुद्धा, बुद्धस्मा, बुद्धम्हा	बुद्धेहि, बुद्धेभि
छट्ठी	बुद्धस्स	बुद्धानं
सत्तमी	बुद्धे, बुद्धस्मिं, बुद्धम्हि	बुद्धेसु
आलपन	बुद्ध, बुद्धा	बुद्धा

2. इकारान्त शब्द 'कवि'

विभत्ति	एकवचन	बहुवचन
प.	कवि	कवी, कवयो
दु.	कविं	कवी, कवयो
त.	कविना	कवीमि, कवीहि
च.	कविनो, कविस्स	कवीनं
पं.	कविना, कविस्मा, कविम्हा	कवीभि, कवीहि
छ.	कविनो, कवस्सि	कवीनं
स.	कविस्मिं, कविम्हि	कवीसु
आल.	कवि	कवी, कवयो

3. उकारान्त शब्द 'भिक्खु'

प.	भिक्खु	भिक्खू, भिक्खवो
दु.	भिक्खुं	" "
त.	भिक्खुना	भिक्खूहि, भिक्खूभि
च.	भिक्खुनो, भिक्खुस्स	भिक्खूनं
पं.	भिक्खुना, भिक्खुस्मा, भिक्खुम्हा	भिक्खुहि, भिक्खुभि
छ.	भिक्खुनो, भिक्खुस्स	भिक्खुनं
स.	भिक्खुस्मिं, भिक्खुम्हि	भिक्खुसु
आल.	भिक्खु	भिक्खू, भिक्खवो

4. ऊकारान्त शब्द 'सब्बञ्ञू' (सर्वज्ञ)

प.	सब्बञ्ञू	सब्बञ्ञू, सब्ब्ञ्ञूनो
दु.	सब्बञ्ञुं	" "

शेष विभक्तियों के रूप 'कवि' शब्द के समान बनते हैं।

5. ऋकारान्त शब्द 'पितु' (पितृ)

विभत्ति	**एकवचन**	**बहुवचन**
प.	पिता	पितरो
दु.	पितरं, पितुं	पितरो, पितरे, पितू
त.	पितरा, पितुना	पितरेभि, पितरेहि, पितूभि, वितूहि
च.	पितु, पितुनो, पितुस्स	पितरानं, पितूनं, पितुन्नं
प.	पितरा, पितुना	पितरेभि, पितरेहि, पितूभि, पितूहि
छ.	पितु, पितुनो, पितुस्स	पितरानं, पितूनं, पितुन्नं
स.	पितरि	पितरेसु, पितूसु
आल.	पित, पिता	पितरो

6. ओकारान्त शब्द 'गो'

प.	गो	गवो, गावो
दु.	गवं, गावं	गवो, गावो
त.	गवेन, गावेन	गाभि, गोहि
च.	गवस्स, गावस्स	गवं, गोनं, गुन्नं
पं.	गवा, गवस्मा, गवम्ह्य,	गोभि, गोहि
	गावा, गावस्मा, गावम्हा	
छ.	गवस्स, गावस्स	गवं, गोनं, गुन्नं
स.	गवे, गवास्मिं, गवम्हि,	गवेसु, गावेसु, गोसु,
	गावे, गाविस्मिं, गावम्हि	
आल.	गो	गवो, गावो

अजन्त स्त्रीलिंग

1. आकारान्त शब्द 'लता'

प.	लता	लता, लतायो
दु.	लतं	लता, लतायो
त.	लताय	लताभि, लताहि
च.	लताय	लतानं

पं.	लताय	लताभि, लताहि
छ.	लताय	लतानं
स.	लताय, कलायं	लतासु
आल.	लते	लता, लतायो

2. इकरान्त शब्द 'रत्ति' (रात्रि)

प.	रत्ति	रत्ती, रत्तियो
दु.	रत्तिं	" "
त.	रत्तिया, रत्त्या	रत्तीभि, रत्तीहि
च.	" "	रत्तीनं
पं.	" "	रत्तीभि, रत्तीहि
छ.	" "	रत्तीनं
स.	रत्तिया, रत्तियं	रत्तीसु
आल.	रत्ति	रत्ती, रत्तियो

3. ईकारान्त शब्द 'इत्थी' (स्त्री)

प.	इत्थी	इत्थी, इत्थियो
दु.	इत्थियं, इत्थिं	" "
त.	इत्थिया	इत्थीहि, इत्थिभि
विभत्ति	**एकवचन**	**बहुवचन**
च.	"	इत्थीनं
प.	इत्थिया	इत्थीहि, इत्थीभि
छ.	"	इत्थीनं
स.	"	इत्थीसु
आल.	इत्थि	इत्थी, इत्थियो

4. उकारान्त शब्द 'धेतु'

प.	धेनु	धेनू, धेनुयो
दु.	धेनुं	" "
त.	धेनुया	धेनूभि, धेनूहि
च.	"	धेनूनं
पं.	"	धेनूभि,धेनूहि

छ.	"	धेनूनं
स.	धेनुया, धेनुयं	धेनुसु
आल.	धेनु	धेनू, धेनुयो

5. ऊकारान्त शब्द 'वधू'

प.	वधू	वधू, वधुयो
दु.	वधुं	" "
त.	बधुया	वधूभि, वधूहि
च.	वधुया	वधूनं
पं.	वधुया	वधूभि, वधूहि
छ.	वधुया	वधूनं
स.	वधुया, वधुयं	वधुसु
विभत्ति	**एकवचन**	**बहुवचन**
आल.	वधू	वधू, वधुयो

अजन्त नपुंसकलिंग

1. अकारान्त शब्द 'चित्त'

प.	चित्तं	चित्ता, चित्तानि
दु.	चित्तं	चित्ते, चित्तानि
आल.	चित्तं	चित्ता, चित्तानि

शेष रूप 'बुद्ध' के समान होते हैं।

2. इकारान्त शब्द 'अक्खि' (अक्षि)

प.	अक्खि	अक्खी, अक्खीनि
दु.	अक्खिं	" "
आल.	अक्खि	" "

शेष रूप 'कवि' शब्द के समान होते हैं।

3. उकारान्त शब्द 'चक्खु' (चक्षु)

प.	चक्खु	चक्खू, चक्खूनि
दु.	चक्खुं	" "
आल.	चक्खु	" "

शेष रूप 'भिक्खु' शब्द के समान होते हैं।

हलन्त पुंल्लिंग

1. नकारान्त शब्द 'दण्डी' (दण्डिन् = संन्यासी)

पं.	दण्डी	दण्डी, दण्डिनो
दु.	दण्डिं, दण्डिनं	" "
त.	दण्डिना	दण्डीभि, दण्डीहि
विभत्ति	**एकवचन**	**बहुवचन**
च.	दण्डिनो, दण्डिस्स	दण्डीनं
पं.	दण्डिना, दण्डिम्हा, दण्डिस्मा,	दण्डीभि, दण्डीहि
छ.	दण्डिनो, दण्डिस्स	दण्डीनं
स.	दण्डिनि, दण्डिस्मि, दण्डिम्हि	दण्डीसु
आल.	दण्डी	दण्डी, दण्डिनो

2. तकारान्त शब्द 'गुणवन्तु' (गुणवत)

प.	गुणवा	गुणवन्तो, गुणवन्ता
दु.	गुणवन्तं	गुणवन्तो, गुणवन्ते
त.	गुणवता, गुणवन्तेन	गुणवन्तेभि, गुणवन्तेहि
च.	गुणवतो, गुणवन्तस्स	गुणवतं, गुणवन्तानं
पं.	गुणवता, गुणवन्तस्मा, गुणवन्तम्हा	गुणवन्तेभि, गुणवन्तेहि
छ.	गुणवतो, गुणवन्तस्स	गुणवतं, गुणवन्तानं
स.	गुणवति, गुणवन्ते, गुणवन्तस्मिं, गुणवन्तम्हि	गुणवन्तेसु
आलपन	गुणवा	गुणवन्तो, गुणवन्ता

3. नकारान्त शब्द 'राजा' (राजन्)

विभत्ति	एकवचन	बहुवचन
प.	राजा	राजा, राजानो
दु.	राजानं, राजं	राजानो
त.	रञ्ञा, राजेन, राजिना	राजेभि, राजेहि, राजूभि, राजूहि
च.	रञ्ञो, राजिनों	रञ्ञं, राजानं, राजूनं
प.	रञ्ञा, राजस्मा, राजम्हा	राजेभि, राजोहि, राजूभि, राजूहि

छ.	रञ्ञो, राजिनों	रञ्ञं, राजानं, राजूनं
स.	रञ्ञे, राजनि, राजस्मिं, राजम्हि	राजेसु, राजूसु
आल.	राज, राजा	राजा, राजानों

4. नकारान्त शब्द 'अत्त' (आत्मन्)

प.	अत्ता	अत्ता, अत्तानो
दु.	अत्तं, अत्तानं	अत्ते, अत्तानो
त.	अत्तेन,अत्तना	अत्तेमि, अत्तेहि, अत्तनेभि, अत्तनेहि
च.	अत्तनो	अत्तानं
पं.	अत्तना, अत्तस्मा, अत्तम्हा	अत्तेभि, अत्तेहि, अत्तनेभि, अत्त्नेहि
छ.	अत्तनो	अत्तानं
स.	अत्तनि	अत्तनेसु
आल.	अत्त, अत्ता	अत्तानो

हलन्त नपुंसकलिंग

सकारान्त शब्द 'मन' (मनस्)

प.	मनो, मनं	मना, मनानि
दु.	" "	मने, मनानि
त.	मनेन, मनसा	मनेभि, मनेहि
च.	मनस्स, मनसो	मनानं
पं.	मना, मनसा, मनस्मा, मनम्हा	मनेभि, मनेहि
छ.	मनस्स, मनसो	मनानं
स.	मने, मनसि, मनस्मिं, मनम्हि	मनेसु
आल.	मन, मना, मनं	मना, मनानि

सब्बनाम (सर्वनाम) शब्द

1. सब्ब (सर्व) पुंल्लिंग

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प.	सब्बो	सब्बे
दु.	सब्बं	सब्बे
तं.	सब्बेन	सब्बेभि, सब्बेहि

च.	सब्बस्स	सब्बेसं, सब्बसानं
पं.	सब्बस्मा, सब्बम्हा	सब्बेभि, सब्बेहि
छ.	सब्बस्स	सब्बेसं, सब्बसानं
सं.	सब्बस्मिं, सब्बम्हि	सब्बेसु
अल.	सब्ब	सब्बे

नपुंसक लिंग

प.	सब्बं	सब्बानि
दु.	सब्बं	सब्बानि

शेष रूप पुल्लिंगवत्

स्त्रीलिंग

प.	सब्बा	सब्बा, सब्बाओं
दु.	सब्बं	" "
त.	सब्बाय	सब्बाभि, सब्बाहि
च.	सब्बाय, सब्बस्सा	सब्बासं, सब्बासानं
स.	सब्बायं, सब्बस्सं	सब्बासु
आल.	सब्बे	सब्बा, सब्बायो

2. 'त' (तद्) पुल्लिंग

प.	सो	ते, ने
दु.	तं, नं	ते, ने
त.	तेन, नेन	तेभि, तेहि, नेभि, नेहि
च.	तस्स, अस्स, नस्स	तेसं, नेसं, तेसानं, नेसानं
पं.	तस्मा, नस्मा, तम्हा, नम्हा	तेभि, तेहि, नेभि, नेहि
छ.	तस्स, अस्स, नस्स	तेसं, नेसं, तेसानं, नेसानं
स.	तस्मिं, नास्मिं, अस्मिं	तेसु, नेसु

नपुंसक लिंग

विभत्ति	**एकवचन**	**बहुवचन**
प.	तं, नं.	ते, तानि, ने, नानि
दु.	तं, नं.	ते, तानि, ने, नानि

शेष रूप पुल्लिंगवत्

स्त्रीलिंग

प.	सा	ता, तायो, ना, नयो
दु.	तं, नं.	" " " "
त.	ताय, नाय	ताभि, ताहि, नाभि, नाहि
च.	ताय, तस्साय, तिस्सा, तिस्साय	तासं, तासानं, नासं, नासानं
प.	ताय, नाय	ताभि, ताहि, नाभि, नाहि
छ.	ताय, नाय, तिस्सा, तिस्साय	तासं, तासानं, नासं, नासानं
स.	ताय, तायं, तिस्सं	तासु, नासु

'एत' (एतत्) पुल्लिंग

विभत्ति	एकवचन	बहुवचन
प.	एसो	एते
दु.	एतं, एनं	एते, एसे
त.	एतेन	एतेभि, एतेहि
च.	एतस्स	एतेसं, एतेसानं
पं.	एतस्मा, एतम्हा	एतेभि, एतेहि
छ.	एतस्स	एतेसं, एतेसानं
स.	एतस्मिं, एतम्हि	एतेसु

नपुसकलिग

प.	एतं	एते, एतानि
दु.	एतं	एते, एतानि

शेष रूप पुल्लिंगवत्

स्त्रीलिंग

प.	एसा	एता, एतायो
दु.	एतं	" "
त.	एताय	एताभि, एताहि
च.	एताय, एतिस्सा, एतिस्साय	एतासं, एतासानं
पं.	एताय	एताभि, एताहि
छ.	एताय, एतिस्सा, एतिस्साय	एतासे, एतासानं
स.	एतस्सं, एतिस्सं, एतासं	एतासु

'इम' (इद्म) शब्द

पुल्लिंग

विभत्ति	एकवचन	बहुवचन
प.	अयं	इमे
दु.	इमं	इमे
त.	अनेन, इमिना	एभि, एहि, इमेभि, इमेहि
च.	अस्स, इमस्स	एसं, एसानं, इमेसं, इमेसानं
पं.	अस्मा, इमस्मा, इमम्हा	एभि, एहि, इमेभि, इमेहि
छ.	अस्स, इमस्स	एसं, एसानं, इमेसं, इमेसानं
स.	अस्मिं, इमस्मिं, इमम्हि	एसु, इमेसु

नपुंसक लिग

प.	इदं, इमं	इमे, इमानि
दु.	इदं, इमं	इमे, इमानि

शेष रूप पुल्लिंगवत्

स्त्रीलिंग

प.	अयं	इमा, इमायो
दु.	इमं	इमा, इमायो
त.	इमाय	इमाभि, इमाहि
च.	अस्सा, अस्साय, इमाय, इमिस्सा, इमिस्साय	इमासं, इमासानं
पं.	इमाय	इमाभि, इमाहि
छ.	अस्सा, अस्साय, इमाय, इमिस्सा, इमिस्साय	इमासं, इमासानं
स.	अस्सं, इमिस्सं, इमायं	इमासु

'अम्ह' (अस्मद्) शब्द

प.	अहं	मयं, अम्हे, नो
दु.	मं, ममं	अम्हे, अम्हाकं
त.	मे, मया	अम्हेभि, अम्हेहि
च.	मम, ममं, मे, मय्हं	अम्हे, अमकं, अस्माकं
पं.	मया	अम्हेभि, अम्हेहि

छ.	मम, ममं, में, मय्हं	अम्हे, अम्हाकं, अस्माकं
स.	मयि	अम्हेसु

'तुम्ह' (युष्मद्) शब्द

प.	त्वं, तुवं	तुम्हे, वो
दु.	वं, त्वं, तुवं, तवं	तुम्हे, तुम्हाकं
त.	तया, त्वया, ते	तुम्हेभि, तुम्हेहि
च.	तव, तुय्हं, तुम्हं	तुम्हाकं
पं.	तया, त्वया	तुम्हेभि, तुम्हेहि
छ.	तव, तुय्हं, तुम्हं	तुम्हाकं
स.	तयि, त्वयि	तुम्हेसु

संख्यावाचक शब्द

(क) 'एक' शब्द के रूप सभी लिंगों, विभक्तियों और वचनों में 'सब्ब' शब्द की ही तरह होते हैं किन्तु नपुंसकलिंग में पष्मा और दुतिया विभत्ति के बहुवचन में 'एकानि' के साथ 'एके' रूप भी होता है।

(ख) द्वि, ति (त्रि) चतु (चतुर) शब्द के रूप केवल बहुवचन में ही चलते हैं। वे इस प्रकार हैं –

	'द्वि' शब्द	'ति' (त्रि) शब्द		
	(तीनों लिंग)	(पुल्लिंग)	(स्त्रीलिंग)	(नपुंसक लिंग)
प.,दु,	द्वे, दुवे	तयो	तिस्सो	तीणि
त.,पं.	द्वीभि, द्वीहि	तीभि, तीहि	तीभि,तीहि	शेष पुल्लिंगवत्
च.,छ.	द्विन्नं, दुविन्नं	तिण्णं,तिण्णन्नं	तिस्सन्नं	
स.	द्वीसु	तीसु	तीसु	

(ग) 'पञ्च' से लेकर 'अट्ठादस' तक के शब्दों के रूप सभी लिंगों में समान होते हैं और सदैव बहुवचन में ही होते हैं।

	'पञ्च' शब्द	अट्ठादस शब्द
प., दु.	पञ्च	अट्ठादस
त.,पं.	पञ्चभि, पञ्चहि	अट्ठादसभि, अट्ठादसहि
च.छ.	पञ्चन्नं	अट्ठादसन्नं
स.	पञ्चसु	अट्ठादससु

1.7 धातु रूप

क्रिया के मूलरूप को 'धातु' कहते हैं। पालि भाषा में भी संस्कृत के ही समान धातुओं के गण हैं। धातु रूपों की कुछ मुख्य विशेषताएं अधोलिखित हैं –

1. यहाँ भी द्विवचन का अभाव है।
2. आत्मनेपद और परस्मैपद के बन्धन में शिथिलता दिखायी पड़ती है। यथा – अवति = भवते, लभते = लभति ।
3. लुट और आशीलिंग लकारों का अभाव है। अतः आठ लकार ही हैं।
4. लिट् लकार का भी विरल प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। लुङ् लकार का प्रयोग बहुततया दिखायी पड़ता है।
5. अन्य भागों की धातुओं के रूप भी भ्वमदे गण की धातुओं की ओर झुकाव रखते हैं।
6. अदादि, जुहोत्यादि और तुदाहि गणों का भ्वमदेगण में अन्तर्भाव हो गया है।
7. लङ् , लुङ् और लृङ् लकारों के धातु रूपों के प्रारम्भ में 'अ' का आगम विकल्प से होता है।

'भू' –धातु (होना)

परस्मैपद

लट् लकार (वत्तमाना)

	एकवचन	बहुवचन
पठम पुरिस (प्रथम पुरूष)	भवति, होति	भवन्ति, होन्ति
मज्झिम पुरिस (मध्यम पुरूष)	भवसि, होसि	भवथ, होथ
उत्तम पुरिस (उत्तम पुरूष)	भवामि,होमि	भवाम, होम

लिट् लकार (परोक्खा)

प.पु.	बभूव	बभूवु
म.पु.	बभूवे	बभूवित्थ
उ.पू.	बभूव	बभूविम्ह

लृट् लकार (भविस्सन्ति)

प.पु.	भविस्सति	भविस्सन्ति
म.पु.	भविस्ससि	भविस्सथ

उ.पु.	भविस्सामि	भविस्साम

लोट् लकार (पञ्चजी)

प.पु.	भवतु, होतु	भवन्तु, होन्तु
म.पु.	भव, भवाहि, होहि	भवथ, होथ
उ.पु.	भवामि, होमि	भवाम, होम

लङ् लकार (हियत्तनी)

विभत्ति	**एकवचन**	**बहुवचन**
प.पु.	अभवा, अभूवा	अभूवु,अहुवु, अहुवू
म.पु.	अभवो, अहुवो	अभवत्थ, अहुवत्थ
उ.पु.	अभव, अभवं, अहुवं	अभवम्ता, अहुवम्हा

विधिलिङ् लकार (सत्तमी)

प.पु.	भवेयय्य, भवे, हेय	भवेय्यु, हेयुं
म.पु.	भवेय्यासि, भवे, हेय्यासि	भवेय्याथ, हेय्याथ
उ.पु.	भवेय्यामि, भवे, हेय्यामि	भवेय्याम, हेय्याम

लुङ् लकार (अज्जतनी)

प.पु.	अभवि, अभवी, अहोसि, अहू	अभवु, अभविंसु, अहेसु, अहवुं
म.पु.	अभवो, अभवि, अहोसि	अभवित्थ, अहोसित्थ
उ.पु.	अभविं, अहोसिं, अहुं	अभविम्हा, अभविम्ह, अहोसिम्ह, अहेम्ह

लृङ् लकार (कालातिपत्ति)

प.पु.	अभविस्स, अभविस्सा	अभविस्संसु
म.पु.	अभविस्स, अभविस्से	अभविस्सथ
उ.पु.	अभविस्सं	अभविसम्हा, अभविस्सम्ह

पचं–धातु (पकाना)

परस्मैपद

लट् लकार

प.पु.	पचति	पचन्ति
म.पु.	पचसि	पचथ

विभत्ति	**एकवचन**	**बहुवचन**

उ.पु.	पचामि	पचाम

लिट् लकार

प.पु.	पचिस्सति	पचिस्सन्ति
म.पु.	पचिस्ससि	पचिस्सथ
उ.पु.	पचिस्सामि	पचिस्साम

लोट् लकार

प.पु.	पचतु	पचन्तु
म.पु.	पच, पचाहि	पचथ
उ.पु.	पचामि	पचाम

लङ् लकार

प.पु.	पचा, अपच, अपचा	अपचु, अपचू
म.पु.	अपचो	अपचित्थ, अपचुत्थ
उ.पु.	अपच	अपचिम्ह, अपचिम्हा, अपचुम्हा

विधिलिङ् लकार

प.पु.	पचे, पचेय्य	पचुं, पचेय्युं
म.पु.	पचे, पचेय्यासि	पचेय्याथ
उ.पु.	पचे, पचेय्यासि	पचेय्याम, पचेय्यामु

लुङ् लकार

प.पु.	पचि, पची, अपचि, अपची	पचुं,अपचुं, पचंसु, पचिंसु, अपचंसु, अपचिंस
म.पु.	पचि, पचो,अपचि, अपचो	पचित्थ,पचुत्थ, अपचित्थ, अपचुत्थ
उ.पु.	अपचि	पचिम्ह, पचिम्हा, पचुम्हा, अपचिम्ह, अपचिम्हा, अपचुम्हा

लृङ् लकार (कालाति पत्ति)

प.पु.	अपचिस्सा	अपचिस्संसु
म.पु.	अपचिस्से	अपचिस्सथ
उ.पु.	अपचिस्सं	अपचिस्सम्हा

पचन्धातु आत्मनेपद

लट् लकार

प.पु.	पचते	पचन्ते
म.पु.	पचसे	पचम्हे
उ.पु.	पचे	पचाम्हे

लिट् लकार

प.पु.	पपचित्थ	पपचिरे
म.पु.	पपचित्थो	पपचिन्हो
उ.पु.	पपचि	पपचिम्हे

लृट् लकार

प.पु.	पचिस्सते	पचिस्सन्ते
म.पु.	पचिस्ससे	पचिसव्हे
उ.पु.	पचिस्सं	पचिस्साम्हे

लोट् लकार

प.पु.	पचतं	पचन्तं
म.पु.	पचस्सु	पचव्हो
उ.पु.	पचे	पचामसे

लङ् लकार

विभत्ति	**एकवचन**	**बहुवचन**
प.पु.	अपचत्थ	अपचत्थुं
म.पु.	अपचंसे	अपचव्हं
उ.पु.	अपच	अपचाम्हसे

विधिलिङ् लकार

प.पु.	पचेथ	पचेरं
म.पु.	पचेथो	पचेय्यव्हो
उ.पु.	पचेय्यं	पचेय्याम्हे

लुङ् लकार

प.पु.	पचा, अपचा, अपचित्थ	पचू, अपचू
म.पु.	पचसे, अपचसे	पचव्हं, अपचव्हं
उ.पु.	पच, पचं, अपच, अपचं	पचम्हे, अपचम्हे

लृङ् लकार (कालातिपत्ति)

प.पु.	अपचिस्सथ	अपयिस्सिंसु
म.पु.	अपचिस्ससे	अपचिस्सव्हे
उ.पु.	अपचिस्सं	अपचिस्साम्हसे

अस्–धातु (होना)

परस्मैपद

लट् लकार

प.पु.	अत्थि	सन्ति
म.पु.	असि	अत्थ
उ.पु.	अस्मि, अम्हि	अस्म, अम्ह

लोट् लकार

विभत्ति	एकवचन	बहुवचन
प.पु.	अत्थु	सन्तु
म.पु.	अहि	अत्थ
उ.पु.	अस्मिं, अम्हि	अंस्म, अम्ह

विधिलिङ् लकार

प.पु.	अस्स, सिया	अस्सु, सियुँ
म.पु.	अस्स	अस्सथ
उ.पु.	अस्सं	अस्साम

लृट् लकार

प.पु.	असिस्सति	आसिस्सन्ति
म.पु.	आसिस्ससि	आसिस्सथ
उ.पु.	आसिस्सामि	आसिस्साम

लुङ् लकार

प.पु.	आसि	आसुं, आसिंसु
म.पु.	आसि	आसित्थ
उ.पु.	आसिं	आसिम्हा

सभी धातुओं के रूप प्रायः उपर्युक्त प्रकार से बनते हैं। ये धातुयें संस्कृत की मूलधातुयें जैसी ही हैं। कुछ का परिगणन इस प्रकार है –

1. **भ्वादिगण** – अच्च (पूजा करना) – अच्चति । अज्ज (कमाना –

अज्ज। [illegible] ना)– अटति । अद् (खाना) – अदति।

अव (रक्षा करना) – अवति । इक्ख (देखना)– इक्खति। एस (खोजना) – एसति। कंख (चाहना) – कंखति । कड्ढ (काढ़ना) – कड्ढति। कन्द (रोना) – कन्दति। कम्प (कॉपना) – कम्पति । कीड (खेलना) –कीडति। गम (जाना)– गच्छति । चज (छोड़ना) – चजति । जल (जलना)–जलति। जि (जीतना)– जयति । जीव (जीना) – जीवति। ठा (रूकना)– तिट्ठति। तर (पार करना)– तरति। दह (जलाना) – दहति, डहति। दंस (डंसना) –दंसति। दा (देना) – दाति। दिस्स (देखना) –पस्सति। पा (पीना) – पिबति। ब्रू (बोलना)– ब्रवीति, ब्रूति, आह। इत्यादि।

2. **रूधादि गण** – कत् (काटना) – कन्तति। गह् (पकड़ना) – गव्हति। छिद् (छेदना) – छिन्दति। बध (बॉधना) – बन्धति। इसी प्रकार, भेद्, भुज्, मुच, युज्, रूध्, लिप्, सिच्, हिंस्, आदि।

3. **दिवादि गण** – कुध (क्रोध करना)– कुज्झति। कुप (कोप करना)– कुप्पति। गा (गाना)–गायति। घा (सूॅघना) –घायति। इसी प्रकार, छिद, झा, दिव, नहा, बुध, युध, रूच, लुभ, सम, सिव, सुस, हन आदि ।

4. **तुदादिगण** – किर (छींटना)– किरति। खिप (फेंकना) – खिपति। नि+गिर (निगलना)– निगरति, तुद (पीड़ा पहुॅचना) – तुदति। इसी प्रकार नुद, फुर, फुस, मुस, लिख, विद, विस, सुप आदि।

5. **ज्यादिगण** – अस (भोजन करना)– अस्नति । चि (चुनना) – चिनाति। ला (जानना)–जानाति। थु (प्रशंसा करना) – थुनाति। इसी प्रकार, धू, पु, लु, सि आदि ।

6. **क्यादि गण** – की (खरीदना) – किणाति। वु (ढकना)– वुणाति। सक (सकना)– सक्णाति। सु (सुनना)– सुणातिं इत्यादि।

7. **स्वादिगण** – सु (सुनना) – सुणोति। खी (क्षीण होना) – खिणोति। वु (ढकना)– वुणोति। गि (शब्द करना)– गिणोति । सक (सकना)–सक्णोति। पि+आप (प्राप्त करना)–पापुणोति ।

8. **तनादिगण** – तन (फैलाना)– तनोति। सक (सकना)– सक्कोति। वन (मॉगना)– वनोति। मन (जानना) – मनोति । आप (पाना)–अप्पोति। कर (करना)–करोति।

9. **चुरादिगण** – चुर (चुराना)– चोरोति, चोरयति। अज्ज (कमाना)–अज्जेति, अज्जयति। ईर (हिलाना)–ईरेति, ईरयति। कण्ण (सुनना) – कण्णोति, कण्ण्यति। कथ (कहना) – कथेति, कथयति। वण्ण (प्रशंसा करना) – वण्णेति, वण्णयति।

इसी प्रकार कित्त, गण, गन्थ, चिन्त, चुण्ण, छड्ड, झप, पाल, पुस, पूज, तक्क, तोर, मन्त, तीर, दिस, वन्द आदि।

सारांश –

'पालि' शब्द की विभिन्न प्रकार से अनेक व्युत्पत्तियाँ की गयी हैं। 'पा रक्षणे' अथवा 'पाल रक्षणे' धातु से इस शब्द की व्युत्पत्ति करने से इस शब्द का अर्थ है – 'रक्षा करने वाला'। 'परियाय' शब्द से 'पालि' को आविष्कृत करने पर बुद्धवचन या बुद्धोपदेश के अर्थ में लेने पर, दोनों के समन्वय से, 'जिस भाषा में बुद्धवचन सुरक्षित हों, वह पालि है' – यह परिभाषित होता है।

संस्कृत के समान पालिभाषा में विभिन्न विषयों के सर्वाङ्गीण ग्रन्थों का निर्माण नहीं हुआ । पालिभाषा का अधिकांश वाङ्मय बौद्ध धर्म–दर्शन के ग्रन्थों से भरा है फिर भी मिलिन्दपञ्हो,दीपवंश आदि साहित्यग्रन्थ,'वुत्तोदय' जैसे छन्दःशास्त्र के ग्रन्थ और भोग्यलान तथा कच्चायन ब्याकरण के ग्रन्थ भी पालिभाषा में निर्मित हुए।

सम्पूर्ण बुद्धवचनों को पाँच निकायों में विभक्त किया गया है –

1. दीघनिकाय, 2. मज्झिमनिकाय, 3. संयुक्त निकाय, 4. अंगुत्तर निकाय और खुद्दक निकाय। इन्हीं पांचों निकायों के अन्तर्गत बौद्धसाहित्य सुरक्षित है। पिटक और अनुपिटक के रूप में दो स्थूल विभाग भी हैं।

प्रश्न – **खण्ड क – निबन्धात्मक प्रश्न**

1. 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति प्रदर्शित करते हुए पालिभाषा के आविर्भाव पर प्रकाश डालिए।
2. पिटक साहित्य का विवरण प्रस्तुत कीजिए।
3. निकायों का उल्लेख करते हुए किसी एक निकाय के ग्रन्थों का विवरण दीजिए।
4. पालिभाषा में निर्मित सम्प्रदायेत्तर साहित्य पर एक निबन्ध लिखिए।
5. पालि व्याकरण का सामान्य परिचय प्रस्तुत कीजिए।

खण्ड ख – टिप्पण्यात्मक प्रश्न

1. जातक साहित्य ।
2. थेरगाथा तथा थेरीगाथा।
3. सुत्तनिपात।
4. धम्मपद ।
5. अट्ठकथा।
6. मिलिन्दपञ्हो।

7. बुद्धघोष का पालि साहित्य को अवदान।

खण्ड ग – वस्तुनिष्ठात्मक प्रश्न

1. पालि वाङ्मय में निकायों की संख्या है –

क. सात ख. पॉच

ग. चार घ. तीन।

2. धम्मपद ----- के अन्तर्गत है –

क. जातक ख. खुद्दक निकाय

ग. मज्झिमनिकाय घ. दीपवंस।

3. धम्मपद में वर्गों की संख्या है –

क. 26 ख. 23

ग. 27 घ. 21

4. भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों की कथायें हैं –

क. थेरगाथा में ख. अट्ठकथा में

ग. जातक में घ. चुल्लवग्ग में

5. 'लता' शब्द का दुतिया विभत्ति, एकवचन, में रूप बनता है –

क. लतां ख. लतायं

ग. लतायो, घ. लतं

'खण्ड ग' के प्रश्नों के सही उत्तर –

1. ख – पॉच, 2. ख – खुद्दकनिकाय, 3. क– 26

4. ग – जातक में 5. घ – लतं ।

इकाई– 2 पालिपाठ

2.1 बावेरुजातकं

अतीते वाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारेन्ते बोधिसत्तो मोरयोनियं निब्बत्तित्वा बुद्धिं अन्वाय सोभाग्गप्पत्तो अरञ्ञे विचरि । तदा एकच्चे वाणिजा दिसाकाकं गहेत्वा नावाय बावेरुरट्ठं आगमंसु । तस्मिं किर काले बावेरुट्ठे सकुणा नाम नत्थि। आगतागता रट्ठवासिनो तं कूपग्गे निसिन्नं दिस्वा – ''पस्सथिमस्स छविवण्णं गलपरियोसानं मुखतुण्डकं मण्गिुककसदिसानि अक्खीनिंति। काकं एवं पसंसित्वाते ते वाणिज के आहंसु – ''इमें अय्यो सकुणं अम्हाकं देथ, अम्हाकं हि इमिना अत्थो तुम्हे अत्तनो रट्ठे अञ्ञे लभिस्सथा'' ति। ''तेन हि मूलेन गण्हथा'' ति । ''कहापणेन नो देथा'' ति। ''न देमा'' ति। अनुपूब्बेन वड्ढेत्वा ''सतेन देथा'' ति वुत्ते ''अम्हाकं एस।

संस्कृत रूपान्तर बावेरुजातकम्

अतीते वाराणस्यां ब्रह्मदत्ते राज्यं कुर्वति बोधिसत्त्वो मयूरयोन्पां निर्वृत्य बुद्धिमन्धित्य सौभाग्यप्राप्तोऽरण्ये व्यचरत् । तदैकत्याः वाणिजः दिक्काकं गृहीत्वा नावा बावेरुराष्ट्रमगमन् । तस्मिन् किल काले बावेरुराष्ट्रे शकुनाः नाम न सन्ति। आगतागता राष्ट्रवासिनस्तं कूपाग्रे निषण्णं दृष्ट्वा, 'पश्यतास्य छबिवर्णं गलपर्यवसानं मुखतुण्डकं मणिगोलक सदृशेऽक्षिणीति' काकमेवं प्रशस्य ते वणिजोऽवोचन् – ''इममार्य' शकुनमस्मभ्यंददातु। अस्माकं ह्यनेनार्थो यूयमात्मनोराष्ट्रेऽन्यं लप्स्यध्वे।'' तेनहि मूल्येन गृह्णीत' इति। 'कार्षापणेन नो दत्ते' ति। 'न दद्म' इति। आनुपूर्व्येण वर्धयित्वा, ''शतेन दत्ते''त्युक्ते ''अस्माकमेष बहूपकारः ।

हिन्दी भावानुवाद

बावेरु जातक

अतीतकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते हुए, बोधिसत्त्व मयूरयोनि में अवतरित होकर बुद्धि से युक्त (अच्छी समझवाला) होकर तथा सौभाग्य प्राप्त करके विचरण करते थे। तब (उसी समय) कुछ बनिये एक दिशा कौवे को लेकर नाव से बावेरुराष्ट्र (देश) गये। उन दिनों बावेरुदेश में कोई भी पक्षी न था। आते–जाते हुए (बावेरु) देशवासी उस कौवे को नाव की मस्तूल पर बैठा हुआ देखकर, ''देखो तो भला इसका सुन्दर रंग, गले तक फैली हुई चोंच और गोलमणि की तरह ऑखें!'' इस तरह कौवे की प्रशंसा करके उन्होंने बनियों से कहा – ''हे आर्य! इस पक्षी को हमें दे दीजिए। इससे हमारा प्रयोजन है। (अर्थात् यह हमें चाहिए)। आप अपने देश में दूसरा पा

लेंगे। तो इसकी कीमत ले लीजिए। एक कार्षापण में हमें दे दीजिए। ''नहीं देंगे'' – इस प्रकार क्रमशः मूल्य बढ़ाकर ''सौ मे दे दीजिए'' – ऐसा कहा। 'यह हम लोगों का बहुत उपकार होगा। बहूपकारो, तुम्हेहि पन सद्धिं मेत्ती होतू'' ति। कहापणसतं गहेत्वा अदंसु । तेतं गहेत्वा सुवण्णपञ्जरे पक्खिपित्वा नानप्पकारेन मच्छमंसेन चे' व फलाफलेन च पटिजग्गिंस। अञ्ञेसं सकुणानं अविज्जमानट्ठाने दसहि असद्धम्मेहिसमन्नागतो काको लाभग्गयसग्गप्पत्तो अहोसि। पुनवारे ते वाणिजा एकं मयूरराजानं गहेत्वा यथा अच्छरासद्देन वस्सति पाणिप्पहारसद्देन नच्चति एवं सिक्खा पेत्वा बावेरुरट्ठं अगमंसु। सो महाजने सन्निपतिते नावाय धुरे तत्वा पक्खे विधूनित्वा मधुरस्सरं निच्छारेत्वा नच्चि। मनुस्सा तं दिस्वा सोमनस्सजाता – ''एतं अय्यो सोभग्गप्पत्तं सुसिक्खितसकुणराजानं अम्हाकं देथा''· ति आहंसु।

संस्कृत रूपान्तर

युष्माभिः पुनः सार्धं मैत्री भवत्वि'' ति कार्षापणशतं गृहीत्वाऽदुः । तेतं गृहीत्वा सुवर्णपञ्जरे प्रक्षिप्य नानाप्रकारेण मत्स्यमांसेन चैव फलाफलेन च प्रत्यग्रहीषुः । अन्येषां शकुनानामविद्यमानस्थाने दशभिरसद्धर्मैः समन्वागतः काको लाभाग्रयशेऽग्रप्राप्तोऽभूत् । पुनर्वारं ते वणिजः एकं मयूरराजं गृहीत्वा यथाक्षरशब्देनवाश्यते, पाणिप्रहारशब्देन नृत्यत्येवं शिक्षयित्वा बावेरुराष्ट्रमगमन्। स महाजने सन्निपतिते नावा धुरि स्थित्वा पक्षौ विधूय मधुरस्वरं निःसार्य अनर्तीत्। मनुष्यास्तं दृष्ट्वा सौमनस्यजाताः – ''एनमार्याः, प्राप्तसौभाग्यं सुशिक्षितं शकुनराजमस्मभ्यं दत्ते'' व्यवोचन्।

हिन्दी भावानुवाद

और, ''फिर आप लोगों से मित्रता (भी) हो जायगी।'' सौ कार्षापण लेकर (उसे) दे दिया। वे उसे लेकर सोने के पिंजड़े में रखकर तरह–तरह के मछली,मांस और कन्दमूल–फल से उसका सत्कार करने लगे। (उस देश में) अन्य पक्षियों के न होने के कारण दस दोषों से युक्त (भी) वह कौवा लाभ (उत्तम भोज्य–पान) और खूब यश (प्रशंसा) प्राप्त करने लगा। अगली बार वे बनिये, एक मयूरराज को, जो अक्षर कहने पर बोले और ताली बजाने से नाचे– ऐसा सिखाकर बावेरुदेश लेकर गये। वह भारी भीड़ कइट्ठी होने पर, नाव की पतवार पर स्थित होकर पंख फैलाकर, मीठी आवाज करता हुआ नाचने लगा। वे लोग उसे (इस प्रकार का) देखकर प्रसन्न मन वाले हो गये और बोले – ''आर्यो ! इस सौभाग्यशाली (अतीव सुन्दर) सुशिक्षित पक्षिराज को हमें दे दीजिये।'' ''अम्हेहि पठमं काको आनीतो, तं गण्हित्थ, इदानि एवं मोरराजानं आनायिम्ह, एतम्पि याचथ। तुम्हाकं रट्ठे सकुणं नाम गहेत्वा आगन्तुंनसक्का'' ति। ''होतु अय्यो,अत्तनो रट्ठे अञ्ञं लभिस्सथ, इमं नोदेथा''

ति मूलं वड्ढेत्वा सहस्सेन गण्हिंसु । अथ नं सत्तरतनविचित्ते पञ्जरे रुपेत्वा मच्छ मंसफलाफलेहि चे' व मधुलाजा सक्खरापानकादीहि च पटिजग्गिंसु। मयूर राजा लाभग्गयसग्गपत्तोजातो। तस्सागतकालतो पट्ठाय काकस्स लाभसक्कारो परिहायि कोचिनं आलोकितुं पि न इच्छि। काको खादनीयभोजनीयं अलभमानो 'काका' ति वस्सन्तों गन्त्वा उक्कारभूमिंयं ओतरि।

संस्कृत रूपान्तर

''अस्माभिः प्रथमं काक आनीतः, तमग्रहीष्टेदानीमेतं मयूरराजमानैषिष्म, एनमपि याचथ। युष्माकं राष्ट्रे शकुनं नाम गृहीत्वाऽऽगन्तुं न शक्यम्।'' ''भवत्वार्य, आत्मनोराष्ट्रेऽन्यं लप्स्यसे, इमं नो ददातु।'' मूल्यं वर्धयित्वा सहस्रेणाग्रहीषुः। अथैनं सप्तरत्नविचित्रे पञ्जरे स्थापयित्वा मत्स्यमांसफलाफलैश्चैव मधुलाजाशर्करापानकादिभिश्च प्रत्यग्रहीषुः । मयूरराजो लाभाग्रयशोऽग्रप्राप्तो जातः। तस्पागतकालतो प्रस्थाय काकस्य लाभसत्कारः पर्यहायि। कश्चिदप्येनमवलोकयितुमपि नैच्छत् । काकः खादनीयभोजनीयमलभमानः ''काके'' ति वाश्यमानो गत्वोत्करभूमौ अवातरीत् ।

हिन्दी भावानुवाद

''हमारे द्वारा पहली बार कौआ लाया गया, उसे (आपने) ले लिया, इस बार मयूरराज को लाये (तो आप) उसे भी माँगते हो। आप लोगों के देश में, लगता है, पक्षी लेकर नहीं आया जा सकता।'' ''हे आर्य, अच्छा, अपने देश में दूसरा (मोर) प्राप्त कर लीजिएगा, इसे हमें दे दीजिए।'' इस प्रकार, मूल्य बढ़ाकर हजार (कार्षापण) से ले लिया। तब इसे सात प्रकार के रत्नों से निर्मित रंगबिरंगे पिंजड़े में रखकर मछली, मांस, कन्द–मूल फल, शहद, शक्कर, खील (लाई) और पानक (रस विशेष) आदि से सत्कार करने लगे। मयूरराज (इस प्रकार) उत्तम लाभ और श्रेष्ठ यश पाने लगे। उनके आने के समय से लेकर कौए का लाभ–सत्कार बन्द हो गया। अब काई इसे देखना भी नहीं चाहता था। कौआ भोजन आदि न पाकर ''कॉव–कॉव'' का शब्द करता हुआ जाकर मल भूमि में उतर गया (अर्थात् स्वभावानुरूप गन्दे स्थान में आहार के लिए चला गया)।

अदस्सनेन मोरस्स सिखिनो मञ्जुमाणिनो।
काकं तत्थ अपूजेसुं मंसेन च फलेन च ।। 1 ।।
यदा च सरसम्पन्नो मोरो बावेरुमागमा ।
अथ लाभो च सक्कारो वायसस्स अहायथ ।।2।।
याव नु' प्पज्जति बुद्धो धम्मराजा पभंकरो।
ताव अञ्ञे अपूजेसुं पुथू समणब्राह्मणे ।।3।।

यदा च सरसम्पन्नो बुद्धो धम्मं अदेसयि ।

अथ लाभो च सक्कारो तित्थियानं अहायथा' ति ।।4।।

संस्कृत रूपान्तर

अदर्शनेन मयूरस्य शिखिनो मञ्जुभाषिणः ।

काकं तत्रापूपुजन् मांसेन च फलेन च ।।1।।

यदा च स्वरसम्पन्नो मयूरो बावेरुमागमत् ।

अथ लाभश्च सत्कारो वायसस्य तदाहायि ।।2।।

यावन्नोत्पद्यते बुद्धो धर्मराजः प्रभाकरः ।

तावदन्येऽपूज्यन्त पृथक् श्रमणब्राह्मणाः ।।3।।

यदा च स्वरसम्पन्नो बुद्धो धर्ममदिक्षत् ।

अथ लाभश्च सत्कारः तैर्थिकानां तदाहायि ।।4।।

हिन्दी भावानुवाद

जब तक (बावेरुदेश में) कलंगीधारी मीठा बोलने वाला मोर पक्षी नहीं दिखायी पड़ा तब तक वहाँ मांस और फल (खिलाने) से कौआ पूजा जाता रहा ।।1।। जब मीठी बोली का मालिक मोरपक्षी बावेरुदेश में आ गया तब कौवे का मांसफलादि लाभ और सत्कार बन्द हो गया।।2।। (इसी प्रकार) जब तक धर्मराज तेजस्वी (अथवा ज्ञान का प्रकाश करने वाले) बुद्ध उत्पन्न नहीं हुए थे तब तक अन्य श्रमण–ब्राह्मण पूजे जाते थे ।।3।। (किन्तु) जब मधुर वाणी वाले बुद्ध ने धर्म का उपदेश दिया तब अन्य तैर्थिकों (धर्मोपदेशकों) का वास्त्वाहार लाभ और सत्कार बन्द हो गया।।4।।

टिप्पणी –

यह जातक कथा भी अन्य जातक कथाओं की ही तरह तब की है जब काशी (वाराणसी) में ब्रह्मदत्त नामक राजा शासन कर रहे थे। इस जातक में बोधिसत्त्व का जन्म मयूर पक्षी की योनि में हुआ है।

दिसाकाकं – दिक्काकम् । दिशां दिक्षु वा काकः दिक्काकः तम् । द्वितीया विभक्ति एकवचन। 'दिशा काक' का सही अर्थ स्पष्ट नहीं है। यहाँ काक (कौवे) के साथ 'दिशा' विशेषण पद लगाने का अभिप्राय कुछ विशेष अवश्य होगा किन्तु वह स्पष्ट नहीं है। कौवा, लोक में 'श्मशारा पक्षी' या 'चाण्डाल पक्षी' कहा जाता है।

बावेरुरट्ठं – बावेरुराष्ट्रम् । बावेरुनामक राष्ट्र को। द्वितीया विभक्ति एक वचन। जातक के वर्णन से ज्ञात होता है कि हमारे देश से बावेरुदेश जाने के लिए जलमार्ग था। व्यापारी नाव से जाते थे। बावेरुदेश की वर्तमान भौगोलिक

स्थिति का पता नहीं है। संसार में शायद् ही ऐसा कोई देश हो जहाँ पक्षी न पाये जाते हों।

कूपग्ग – कूपाग्रे । कूपस्स अग्गे कूपग्गे । तत्पुरूष समास। सप्तमी विभक्ति एक वचन। यहाँ 'कूप' का अर्थ है नाव की मस्तूल। मस्तूल नाव के बीचो बीच एक मजबूत ऊँचा खम्भा होता है जिसमें पाल बाँधी जाती है।

कहापणेन– कार्षापणेन । तृतीया विभक्ति एक वचन। कार्षापण प्राचीन काल की एक मुद्रा (सिक्का) है।

फलाफलेन – पालि और संस्कृत में समान रूप । फलेन च अफलेन चेति फलाफलेन। तृ. वि., ए. व. । पालिसाहित्य में इस शब्द का प्रयोग अनेकत्र दिखाई देता है। इन शब्द का प्रयोग सामान्यतः व्यवहार में 'फल–मूल' या 'फल–फूल' के अर्थ में किया जाता है। दशभिः असद्धर्मैः – दस असद्धर्मों से । तृतीया विभक्ति, बहुवचन। असद्धर्म का अर्थ यहाँ दोष है। कौवे में दस दोष कहे गये हैं – श्यामवर्णता, अशुचिता, अशुचिमक्षणता, अपशकुनता, ध्वनिकर्कशता, धूर्तता, एकाक्षता, क्रूरता धृष्टता, अधीरता (लोलुपता)। इन दोषों के कारण कौवा एक गर्हित पक्षी है।

बावेरुजातक की शिक्षा – 1. श्रेष्ठगुण सम्पन्न व्यक्ति के प्राप्त हो जाने पर हीन गुण वाले व्यक्ति का सम्मान बन्द हो जाता है। 2. स्वभाव दुरतिक्रम है जैसा कि सत्कार बन्द हो जाने पर कौवा आहार की खोज में मलिन स्थान पर चला गया । 3. वणिग्जन ग्राहक की चाह देखकर अपनी वस्तु की मनमानी कीमत वसूलते हैं। अतः व्यवहार में उनसे सावधान रहना चाहिए। 4. भगवान् बुद्ध के उपदेश ही कल्याणकारी हैं।

2.2 मायादेविया सुपिनं

तदा किर कपिलवत्थुनगरे आसोळ्हीनक्खत्तं घुट्ठं अहोसि। महाजनों नक्खत्तं कीकेति। महामायादेवी पुरे पुण्णमाय सत्तमदिवसतो पट्ठाय विगतसुरापानं मालागन्धविधूतिसम्पन्नं नक्खत्तकीकं अनुभवमाना सत्तमदिवसे पातो व उठाय गन्धोदकेन नहायित्वा चत्तारि सतसहस्सानि विस्सेज्जेत्वा महादानं दत्वा सब्बालङ्कारविभूसिता वरभोजनं भुञ्जित्वा उपोसथङ्गानि अधिट्ठाय अलङ्कतपटियत्तं सिरिगब्भं पविसित्वा सिरिसयने निपन्ना निद्दं ओक्कममाना इदं सुपिनं अदस्स –

चत्तारो किर नं महाराजानो सद्धिं उक्खिपित्वा हिमवन्तं नेत्वा सट्ठियोजनिके मनोसिलातले सत्तयोजनिकस्स महासालरुक्खस्स हेट्ठा ठपेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु । अथ नेसं देवियो आगन्त्वा देविं अनोतत्तदहं नेत्वा ।

संस्कृतरूपान्तर

मायादेव्याः स्वप्नः

तदा किल कपिलवस्तुनगरे आषाढीनक्षत्रं घुष्टमासीत्। महाजनों नक्षत्रं क्रीडति। महामायादेवी पुरः पूर्णिमायाः सप्तमदिवसतः प्रस्थाय विगतसुरापानां मालागन्धविधूतिसम्पन्नां नक्षत्रक्रीडा मनुभवन्ती सप्तमदिवसे प्रातरेवोत्थाय गन्धोदकेन स्नात्वा चत्वारि शतसहस्राणि विसृज्य महादानं दत्वा सर्वालङ्कारविभूषितावरभोजनं भुक्खोपवसथाङ्गान्यधिष्ठायालङ्कृतपर्याप्तं श्रीगर्भं प्रतिश्य श्रीशयने निपन्ना निद्रामवक्रममाणेनं स्वप्नमद्राक्षीत् –

चत्वारः किल नूनं महाराजाः शयनेनैव सधीङ्ङुक्षिप्य हिमवन्तं नीत्वा षष्टियोजनि के मनःशिलातले सप्तयोजनिकस्य महाशालवृक्षस्याधस्तात् स्थापयित्वैकस्मिन्नन्तेऽस्थुः । अथ निशि देव्यः आगत्य देवीमनवतप्तह्रदं नीत्वा–

मायादेवी का स्वप्न

हिन्दी भावानुवाद

उस समय कपिलवस्तु नगर में आषाढीनक्षत्र घोषित था (आषाढ़ि पूर्णिमा का यह पर्व मनाया जा रहा था)। महाजन (रईस लोग) नक्षत्र क्रीड़ा कर रहे थे । पूर्णिमा के सात दिन पहले से ही मदिरापान का त्यागकर, सुगन्धितमाता पहनकर, गन्धद्रव्यों का शरीर में लेपन करके, नक्षत्र क्रीड़ा (आषाढ़ीपूर्णिमोत्सव) का आनन्द लेती हुई, सातवें दिन प्रातःकाल उठकर, सुगन्धित जल से स्नान करके, चार सौ हजार मुद्रायें बॅाटकर महादान देकर समस्त आभूषणों को धारण कर सज कर, उत्तम भोजन ग्रहण कर, ताम्बूलादि ग्रहण करके, खूब सजे हुए श्रीगर्भ (शयन कक्ष) में प्रवेश कर शोभासम्पन्न बिस्तर पर लेटकर निद्रा के वश में हुई देवी महामाया ने यह स्वप्न देखा– 'चार महाराजा उसे पलंग सहित उठाकर हिमालय पर्वत पर ले जाकर साठ योजन विस्तृत मनसिल के चबूतरे पर सात योजन वाले महाशाल वृक्ष के नीचे रखकर (स्वयं) एक ओर हो गये (स्थित हुये)। तदन्तर रात में देवियों (देववधुओं या अप्सराओं) ने आकर देवी (महामाया) को अनवतप्त (सुखोदक) ह्रद (सरोवर) में ले जाकर – मानुसमलहरणत्थं नहापेत्वा दिब्बवत्थं निवासापेत्वा गन्धेहिं विलिम्पापेत्वा दिब्बपुप्फानि पिलन्धापेत्वा – ततो अविदूरे रजतपब्बतो, तस्स अन्तो कनकविमानं अत्थि – तत्थ पाचीनसीसकं दिब्बसयनं पञ्जापेत्वा निपज्जापेसुं । अथ बोधिसत्तो से तवरवारणो हुत्वा – ततो अविदूरे एको सुवण्णपब्बतो – तत्थ चरित्वा ततो ओरुय्ह रजतपब्बतं अभिरुहित्वा उत्तरदिसतो आगम्भ रजतदामवण्णाव सोण्डाय सेतपदुमं गहेत्वा कोञ्चनादं नदित्वा कलकविमानं पविसित्वा मातुसयनं तिक्खत्तुं पदक्खिणंकत्वा दक्खिणपस्सं ताब्बेत्वा

कुच्छिं पविट्ठसदिसो अहोसि। एवं उत्तरासाक्हनक्खत्तेन पटिसन्धिं गण्हि । पुनदिवसे पबुद्धा देवी तं सुपिनं रञ्ञो आरोचेसि। राजा चतुसट्ठिमत्ते ब्राह्मणपामोक्खे पक्कोसापेत्वा हरितयवुपत्थाय लाजादीहि कतमङ्गलसक्काराय भूमिया महारहानि आसनानि पञ्ञापेत्वा ।

संस्कृत रूपान्तर

मानुषमलहरणार्थं स्नापयित्वा दिव्यवस्त्रं निवास्य गन्धैः विलिप्य दिव्यपुष्पाणि निनाहृय ततोऽविदूरे रजतपर्वतः, तस्यान्ते कनकविमानमस्ति, तत्र प्राचीनशीर्षकं दिव्यशयनं प्रज्ञाप्य न्यपादिषत् । अथ बोधिसत्त्वः श्वेतवरवारणो भूत्वा – ततोऽविदूरे एकः सुवर्णपर्वतः तत्र चरित्वा ततोऽवरुहृय रजतपर्वतमभिरुहृयोत्तरदिक्तः आगत्य रजतदामवर्णाभशुण्डया श्वेतपद्मं गृहीत्वा क्रौञ्चनादं नदित्वा कनकविमानं प्रविश्य मातुःशयनं त्रिःकृत्वः प्रदक्षिणांकृत्वा दक्षिणपार्श्वं ताडयित्वा कुक्षिं प्रतिष्ट सदृशोऽभूत् । एवमुत्तराषाढ़नक्षत्रेण प्रतिसन्धिमग्रहीत्। पुनःदिवसे प्रबुद्धा देवी तत्स्वप्नं राजानमारूरुचत् । राजा चतुःषष्टिमात्रान् ब्राह्मणप्रमुखान् प्राक्रृश्य हरितयवानुपस्थायत्वाजादिभिः कृतमङ्गलसत्कारायां भूमौ महार्हाण्यासनानि ।

हिन्दी भावानुवाद

मनुष्यगत मल को दूर करने के लिए स्नान कराकर, दिव्यवस्त्र धारण कराकर, गन्ध द्रव्यों का लेपकर, दिव्य पुष्पों से श्रृंगार कर, वहॉं से समीप ही रजत पर्वत के नीचे एक स्वर्ण विमान है, उसमें पूर्व के कोण में दिव्यशयन लगाकर लिटा दिया। तत्पश्चात् बोधिसत्त्व श्रेष्ठ श्वेत हाथी (के रूप में) होकर, वहीं से समीपवर्ती स्वर्ण पर्वत पर विचरण करके, वहॉं से उतर कर रजतपर्वत पर चढ़ कर उत्तरदिशा से होते हुए आकर, चॉंदी की रस्सी के समान अपनी सूँड़ से श्वेतकमल लेकर क्रौञ्चपक्षी की तरह शब्द करते हुए स्वर्णविमान में प्रवेश करके माता के शयन (पलंग) की तीन बार प्रदक्षिणा करके दाहिने पार्श्व भाग पर आघात करके कुक्षि में प्रवेश किये हुए जैसे हो गये। इस प्रकार, उन्होंने उत्तराषाढ़ नक्षत्र के साथ प्रति सन्धि ग्रहण की। अगले दिन जागने पर महामाया देवी ने उस स्वप्न को राजा से रूचिपूर्वक बताया। राजा ने चौंसठ प्रमुख ब्राह्मणों को बुलाकर, हरे जौ बिछा कर और लाजाओं से भूमि का मंगल सत्कार करके, उस भूमि पर आसन लगाकर

तत्थ निसिन्नानं ब्राह्मणनं सप्पिम धु सक्कराभिसङ्खतस्स वरपायसस्स सुवण्णरजतपातियो पूरेत्वा सुवण्णरजतपातीहि येव पटिकुज्जेत्वा अदासि, अञ्ञहि च अहतवत्थकपिलगाविदानादीहि ते सन्तप्पेसि। अथ तेसं सब्बकामेहि सन्तप्पितानं सुपिनं आरोचेत्वा – ''किं भविस्सती'' ति पुच्छि। ब्राह्मणा आहंसु – ''मा चिन्तयि महाराज, देविया ते कुच्छिम्हि गब्भो पति ट्ठितो, सो च खो

पुरिसगब्भो न इत्थिगब्भो। पुत्तो ते भविस्सति । सो सचे अगारं अज्झावसिस्सति राजा भविस्सति चक्कवत्ती, सचे अगारा निक्खम्भ पब्बजिस्सति, बुद्धो भविस्सति लोके विवट्ठच्छदो'' ति ।।

संस्कृत रूपान्तर

प्रज्ञाप्य तत्र निषण्णेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः सर्विमधुशर्कराभिः संस्कृतस्य वरपायसस्य सुवर्णरजतपात्री। पूरयित्वा सुवर्णरजतपात्रीमिरेव प्रतिकुज्यादाद् अन्यैश्चाहतवस्त्रकपिलगोदानादिभिस्तान् समतीतृपत् । अथ तेषां सर्वकामैः सन्तर्पितानां स्वप्नमारोच्य किं भविष्यतीत्यप्राक्षीत् । ब्राह्मणा अवोचन् – ''मा चिन्तय महाराज, देव्यास्ते कुक्ष्यां गर्भः प्रतिष्ठितः, सच खलु पुरूषगर्भः न स्त्रीगर्भः । पुत्रस्ते भविष्यति चेदागारमध्यावत्स्यति राजा भविष्यति चक्रवर्ती, चेदागारात् निष्क्रम्यप्रव्रजिष्यति बुद्धो भविष्यति लोके विवर्तच्छद्'' इति।।

हिन्दी भावानुवाद

उन पर आसीन ब्राह्मणों को घी, मधु और शर्करा से अच्छी तरह बनायी गयी खीर से सोने–चॉदी की थालियों को भरकर सोने–चॉदी की थालियों से ही ढँककर दिया और नये धुले हुए वस्त्रों तथा कपिला गायों आदि के दान से उन्हें सन्तुष्ट किया। तत्पश्चात् हर प्रकार से सन्तुष्ट और पूर्ण इच्छाओं वाल उन ब्राह्मणों को (देवी का) स्वप्न बताकर पूछा कि इसका फल क्या होगा? ब्राह्मणों ने कहा – ''महाराज! आप चिन्ता न करें। आपकी देवी की कोख में गर्भ प्रतिष्ठित हो गया है । और, वह पुरुषगर्भ है न कि स्त्रीगर्भ । आपका पुत्र जन्म लेगा। यदि वह अन्त तक महत्व में रहेगा तो चक्रवर्ती राजा होगा और यदि महल से निकाल कर संन्यास ग्रहण करेगा तो वह संसार में अज्ञान रूपी आवरण का विनाश करने वाला बुद्ध होगा।।

टिप्पणी –

'मायादेविया सुपिनं' शीर्षक गद्यांश जातकान्तर्गत निदान कथा से गृहीत है। इस पाठ में गर्भ में बोधिसत्व (बुद्ध) को धारण करने से पूर्व महाराज शुद्धोदन की महारानी मायादेवी द्वारा देखे गये स्वप्न का वर्णन है।

इस पाठ के आरम्भ में 'आषाढ़ी नक्षत्र' का उल्लेख हुआ है। कुल सत्ताईस नक्षत्रों में से दो नक्षत्र 'आषाढ़' नाम से है। बीसवॉ नक्षत्र है पूर्वाषाढ़ा और इक्कीसवॉ नक्षत्र है 'उत्तराषाढ़ा' । चूँकि इस मास की पूर्णिमा 'आषाढ़ी' नक्षत्र में घटित होती है अतएव महीने का नाम 'आषाढ़' पड़ गया। यह महीना वर्षा ऋतु का प्रथम मास गिना जाता है। आषाढ़ी पूर्णिमा को 'गुरूपूर्णिमा' के रूप में मनाते हैं। यह वर्तमान काल में गुरूपूजा का पर्व है।

यहॉ 'आषाढ़ी नक्षत्र' की घोषणा किया जाना लिखा है। इससे ज्ञात

होता है कि इस पर्व के आयोजन हेतु राजाज्ञा घोषित होती थी। बड़े लोग (अभिजातवर्गीय) इस नक्षत्र के उपलक्ष्य में आमोद प्रमोद करते थे। महारानी मायादेवी ने भी सात दिन पहले से ही मदिरा का त्याग कर और उस दिन सज धज कर पूरी तैयारी के साथ इस उत्सव का आनन्द लिया था।

सुपिनं – स्वप्नः । यद्यपि पालि में यह शब्द नपुंसक लिंग में प्रयुक्त है किन्तु संस्कृत में यह शब्द पुंल्लिंग है। सिरिगब्भं – श्रीगर्भम् । द्वि. वि, ए, वक्र, 'श्रीगर्भ' का अभिप्राय अन्तःपुरस्थ महारानी के विशिष्ट शयनकक्ष से है। 'गर्भ' और 'शयन' शब्दों से पूर्व लगा हुआ 'श्री' विशेषण शयन कक्ष और पलंग की विशिष्ट शोभा और राजकीय ऐश्वर्य को सूचित करता है।

ओक्कममाना – अवक्रममाणा । (जागरण दशा से) उतर कर (नींद की ओर) बढ़ती हुई।

अव+क्रम+शानच् । पालि में शानच् के स्थान पर वर्तमान कालिक कृदन्त 'मानो' का प्रयोग होता है। स्त्रीलिंग में इसका रूप 'माना' होता है। प्रथम विभक्ति, एक वचन। कनकविमानं – कनकतिमानम् । प्र. वि., ए. व.। कनकस्य कनकनिर्मितं वा विमानम् । यहॉ 'विमान' का अर्थ है। शानदार भवन या कक्ष। सात मंजिले महल को भी 'विमान' कहते हैं। उत्तरासाकहनक्खत्तेन पटिसन्धिंगण्हि + उत्तराषाढ़ानक्षत्रेण प्रतिसन्धिमग्रहीत्। इस पदसमूह के शाब्दिक अर्थ से कोई विशेष अभिप्राय स्पष्ट नहीं होता। इससे पूर्व वर्णन है कि बोधिसत्त्व उत्तम श्वेतवर्ण के हाथी के रूप में अपनी सूँड़ में श्वेत कमल लेकर आये और महारानी के गर्भ में प्रवेश किये हुए जैसे हो गये। इस प्रकार उन्होंने उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के साथ प्रतिसन्धि ग्रहण की। 'प्रतिसन्धि' का अर्थ है – 'गर्भाशय में प्रवेश।' चन्द्रमा सुन्दरता का प्रतीक है। अतः यहॉ आशय है कि बोधिसत्त्व ने चन्द्रमा से संयुक्त होकर (अत्यन्त सुन्दर रूप में) गर्भ में प्रवेश किया।

2.3 महाभिनिक्खमनं

तस्मिं समये 'राहुलमाता पुत्तं विजाता' ति सुत्वा सुद्धोदनमहाराजा 'पुत्तस्स में तुटिठ् निवेदेथा' ति सासनं पहिणि। बोधिसत्तोतं सुत्वा 'राहुलो जातो बन्धनं जातं' ति आह। राजा 'किं में पुत्तो अवचा' ति पुच्छित्वा तं वचनं सुत्वा 'इतो पट्ठाय में नत्तु राहुलकुमारो त्वेव नामं होतू' ति। बोधिसत्तो पि खो रथवरं आरुय्ह महन्तेन यसेन अतिमनोरमेन सिरिसोभग्गेन नगरं पाविसि। तस्मिं समये किसागोतमी नाम खत्तियकञ्ञा उपरिपासादवरतलगता नगरं पदक्खिणं कुरुमानस्स बोधिसत्तस्स रूपसिरिंग दिस्वा पीतिसोमनस्सजाता इमं

उदानं उदानेसि –

निब्बुता नून सा माता, निब्बुतो नून सो पिता ।
निब्बुता नून सा नारी यस्सायं ईदिसो पती' ति ।।

महाभिनिष्क्रमणं

संस्कृत रूपान्तर

तस्मिन् समये 'राहुलमाता पुत्रं व्यजायते' ति श्रुत्वा शुद्धोदनमहाराजः– 'पुत्रं मे तुष्टिं निवेदयते' ति शासनं प्रैषीत् । बोधिसत्त्वः तच्छ्रुत्वा, ''राहुलो जातो बन्धनंजातमि'' त्याह। राजा, ''किं में पुत्रोऽवोचदि'' ति पृष्ट्वा, तद्वचनं श्रुत्वा, ''इतः प्रस्थाय में नप्तूराहुलकुमारस्त्वेव नाम भवत्वि'' ति। बोधिसत्त्वोऽपि खलु रथवरमारुह्य महता यशसाऽतिमनेरमेण श्रीसौभाग्येन नगरं प्रविशत् । तस्मिन् समये कृशागौतमी नाम क्षत्रियकन्योपरिप्रासादावरतलगता नगरं प्रदक्षिणां कुर्वतो बोधिसत्त्वस्य रूपश्रियं दृष्ट्वा प्रीतिसौमनस्यजातेद्मवदानमवादीत्–

निर्वृता नूनं सामाता निर्वृतो नूनं स पिता ।
निर्वृता नूनं सा नारी यस्याअयमीदृशः पतिः ।। इति।

महाभिनिष्क्रमण (गृह त्याग)

हिन्दीभावानुवाद

उस समय 'राहुलमाता ने पुत्र पैदा किया' – ऐसा सुनकर महाराज शुद्धोदन ने आदेश दिया कि यह सन्तोषप्रद वार्ता मेरे पुत्र को सुनाओं। बोधिसत्त्व ने यह सुनकर, ''राहुल पैदा हुआ, बन्धन पैदा हुआ'' – ऐसा कहा। ''मेरे पुत्र ने क्या कहा?''– ऐसा पूछकर, उसके कथन को सुनकर (राजा ने) कहा कि आज से मेरे नाती का नाम राहुल कुमार ही हो। बोधिसत्त्व भी एक श्रेष्ठ रथ पर चढ़कर, महान् यश और अतिमनोहर श्री सौभाग्य से युक्त होकर नगर में प्रविष्ट हुए । उस समय महल से उतर कर छज्जे पर स्थित कृशागौतमी नामक क्षत्रियकन्या ने नगर की प्रदक्षिणा करते हुए बोधिसत्त्व की रूपशोभा को निहारकर प्रीतिप्रफुल्लमन से इस गाथा को कहा –

''वह माता धन्य हो गयी और वह पिता धन्य हो गया (जिसका ऐसा पुत्र है) और वह स्त्री (पत्नी) भी निश्चय ही धन्य है जिसका ऐसा पति है।''
बोधिसत्तो तं सुत्वा चिन्तेसि – अयं एवं आह – एवरूपं अत्तभावं पस्सन्तिया मातुहदयं निब्बायति, पितुहदयं निब्बायति, पजापतिहदयं निब्बायति। कस्मिंनु खो निब्बुते हृदयं निब्बुतं नाम होती' ति ? अथस्स किलेसेसु विरत्तमानसस्स एतदहोसि – 'रागग्गिहि निब्बुते निब्बुतं नाम होति, दोसग्गिम्हि, मोहग्गिम्हि निब्बुते निब्बुतं नाम होति, मानदिट्ठि–आदिसु सब्बकिलेसदरथेसु निब्बुतेसु

निब्बुतंनाम होति, अयं में सुस्सवनं सावेसि, अहं हि निब्बानं गवेसन्तो चरामि। अज्जेवमया घरावासं घड़डेत्वा निक्खम्म पब्बजित्वा निब्बानं गवेसितुं वट्टति। अयं इमिस्सा आचरियभागो होतू' ति कण्ठतो ओमुञ्चित्वा किसागोतमिया सतसहस्सग्घनकं मुत्ताहारं पेसेसि। सा 'सिद्धत्थकुमारो मयि।

संस्कृत रूपान्तर

बोधिसत्त्वः तच्छ्रुत्वाऽचिन्तयत् – इयमेवमाह – एवं रूपमात्मभावं पश्चन्त्या मातुर्हृदयं निर्वायते, पितुर्हृदयं निर्वायते, प्रजापतिहृदयं निर्वायते। कस्मिन्नु खलु निर्वृते हृदयं निर्वृतं नाम भवतीति । अथास्य क्लेशेषु विरक्तमानसस्यैतदभूत् – 'रागाग्नौ निर्वृते निर्वृतं नाम भवति, दोषाग्नौ मोहाग्नौ निर्वृते निर्वृतं नाम भवति, मानदृष्ट्यादिषुसर्वक्लेशाद्यर्थेषु निर्वृतेषु निर्वृतंनामभवति, इयं में सुश्रवणमशूश्रवद्, अहं हि निर्वाणं गवेषयन् न्वरामि। अद्यैव भया गृहावासं छर्दयित्वा निष्क्रम्य प्रव्रज्य निर्वाणं गवेषितुं वर्तते। अयमस्या आचार्यभागो भवत्वि' ति कण्ठतोऽवमुच्य कृशागौतम्यै शतसहस्रार्घणकं भुक्ताहारं प्रैषिषत् । सा 'सिद्धार्थकुमारो मयि–

हिन्दी भावानुवाद

बोधिसत्त्व यह सुनकर सोचने लगे –'इसने ऐसा कहा – ''ऐसे रूप और अपनत्व को देखते हुए माता का हृदय निर्वृत हो जाता है, पिता का हृदय निर्वृत हो जाता है, नारी (पत्नी) का हृदय निर्वृत हो जाता है। (तो) किसके निर्वृत होने पर हृदय निर्वृत होता है?'' फिर, क्लेशों से विरक्त होने वाले इनके (मनमें) ऐसा हुआ – 'रागाग्नि के निर्वृत होने पर (हृदय) निर्वृत होता है, दोषाग्नि, मोहाग्नि के निर्वृत होने पर (हृदय) निर्वृत होता है।, मानदृष्टि आदि सभी क्लेश के कारणों के निर्वृत हो जाने पर (हृदय) निर्वृत होता है। इसने मुझे सुन्दर सुनने योग्य सुनाया । अब मैं निर्वाणकी खोज करते हुए विचरण करूँगा। मुझे आज ही घरबार छोड़कर । (संसार से) निकल कर संयस्त होगर निर्वाण की खोज करनी है। 'यह इसकी गुरूदक्षिणा हो' – ऐसा सोचकर सैकड़ों हजार मुद्राओं से खरीदने योग्य मोतियों के हार को गले से उतार कर कृशागौतमी के पास भेज दिया। 'सिद्धार्थ कुमार ने मुझमें अनुरक्त हो पटिबद्धचित्तो हुत्वा पण्णाकारं पेसेती' सोमनस्सजाता अहोसि। बोधिसत्तो पि महन्तेन सिरिसोभग्गेन अत्तनो पासादं अभिरूहित्वा सिरिसयेन निपज्जि। तावदेव नं सब्बालङ्कारपटिमण्डिता नच्चगीतादिसु सुसिक्खिता देवकञ्ञा वियरूपप्पत्ता इत्थियो नानातुरियानि गहेत्वा सम्परिवारयित्वा अभिरमापेन्तियोनच्चगीतवादितानि पयोजयिंसु । बोधिसत्तो किलेसेसु विरतचित्तताय नच्चादिसु अनभिरतो मुहुत्तं निद्दं ओक्कमि। तापि इत्थियो 'यस्सत्थाय मयं नच्चादीनिपयोजयाम सो निद्दं उपगतो, इदानिं कि मत्थं

किलमामा' ति गहितगहितानि तुनियानि अज्झोत्थरित्वा निपज्जिंसु। गन्ध तेलप्पदीपा झायन्ति। बोधिसत्तो पबुज्झित्वा सयनपिट्ठे पल्लङ्केन निसिन्नो अदस्सता इत्थियो तुरियभण्डानि अवत्थरित्वा

संस्कृत रूपान्तर

प्रतिबद्धचित्तो भूत्वा पण्याकारं प्रैषिषदि' तिसौमनस्यजाताऽभूत्। बोधिसत्त्वोऽपि महता श्री सौभाग्येनात्मनः प्रासादमभिरूह्य श्रीशयने न्ययादि। तावदेव नूनं सर्वालङ्कारप्रतिमण्डिताः नृत्यगीतादिषु सुशिक्षिताःदेवकन्या इव रूपप्राप्ताः स्त्रियोनानातूर्याणि गृहीत्वा सम्प्रवार्याभिरभिरमन्त्यो नृत्यगीतवादित्राणि प्रायूसुजन् । बोधिसत्त्वः क्लेशेषु विरक्तचित्ततया नृत्यादिष्वनभिरतो मुहूर्तं निद्रामवाक्रमीत् । ता अथिस्त्रियः, 'यस्यार्थं वयं नृत्यादीन् प्रयोयजयामः स निद्रामुपगतः, इदानीं किमर्थं क्लाम्यामः' इति गृहीतगृहीतानि तूर्याण्यध्यवस्तीर्य न्यपादिषत। गन्धतैलप्रदीपाः ध्यायन्ति। बोधिसत्त्वः प्रबुद्धय शयनपृष्ठे पर्यङ्केण निषण्णेऽद्राक्षीत् – ताः स्त्रियः तूर्यभाण्डानि अवस्तीर्य निद्रायमाणा एकत्याः प्रक्षरितक्ष्वेडाःलालाक्लिन्नगात्राः ।

हिन्दी भावानुवाद

यह मूल्य का अग्रिम भेजा है।' – ऐसा (सोचकर) वह प्रसन्न हो गयी। बोधिसत्त्व भी महान् श्री सौभाग्य से सम्पन्न होकर अपने प्रासाद पर चढ़कर श्रीशयन पर लेट गये। तब वहॉ समस्त आभूषणों से सुसज्जित,नृत्यगीतादि में सुशिक्षित अप्सराओं की तरह सुन्दर स्त्रियॉ नाना प्रकार के तूर्यों को लेकर, उन्हें खोलकर अभिरमण करती हुई नृत्य, गीत और वाद्यों का प्रयोग करने लगीं। क्लेशों से विरक्तवित्त होने के कारण नृत्यादि में रूचि न लेते हुए बोधिसत्तव क्षण भर में सो गये। वे स्त्रियॉ भी, जिसके लिए हम नाच गाने का प्रयोग कर रहे हैं। वह सो गया, तो अब क्यों अपने को थकायें' –ऐसा सोचकर लिये गये तूर्यों को एक तरफ रखकर सो गयी। गन्धतैल प्रदीप बुझ गये। बोधि सत्त्व ने, जागकर पलंग के ऊपर बैठे हुए देखा – वे स्त्रियॉ तूर्य पात्रों को समेट कर सो रहीं हैं । कोई तो पसीना निद्दायन्तियो एकच्चा पग्घरितखेका लालाकिलिन्नगता, एकच्चा दन्ते खादन्तियो, एकच्चा काकच्छन्तियो, एकच्चा विघलपन्तियो, एकच्चाविवटमुखा, एकच्चा अपगतवत्था पकटबीभच्छसम्बाघट्ठाना। सो तासंतं विप्पकारं दिस्वा मिय्योसोमत्ताय कामेसु विरतो अहोसि। तस्स अलंकतपरियत्तं सक्कभवनसदिसं पितं महातलं विप्पविद्धनानाकुणपभरिवं आमकसुसानं वियउपट्ठासि। तयो भवा आदित्तगेहसदिसा विय खायिंसु। 'उपद्दुतत्तं वत भो, उपस्सट्ठं वत भो' उदानं पवत्ति। अतिविय पब्बज्जाय चित्तं नामि। सो 'अज्जे व मया महाभिनिक्खमनं निक्खमितुं वट्टति' ति सयना

उट्ठाय द्वारसमीपं गन्त्वा–''को एत्था' ति आह। उम्मारे सीसं कत्वा निपन्नो छन्नो, 'अहं अय्यपुत्त छन्नो' ति आह। 'अहं अज्ज महाभिनिक्खमनं निक्खमितुकामो, एकं में अस्सं कप्पेही'

संस्कृत रूपान्तर

एकत्याः दन्तान् खादन्त्यः, एकत्याः काकथ्यमानाः, एकत्याः विप्रलपन्त्यः, एकत्याः विवृतमुखाः, एकत्या अपगतवस्त्राःप्रकटबीभत्ससंबाधस्थानाः। स तासां तं विप्रकारं दृष्ट्वा भूयः सुमात्रतया कामेक्षु विरक्तोऽभूत् । तस्यालंगकृतपर्याप्तं शुक्रभवनसदृशमपि तन्महातलं विप्रवृद्धनानाकुणपभरितमामकश्मशानमिवोपस्थात्। त्रयोभवा आदीप्तगेहसदृशाइव ज्वलिताः। 'उपद्रुतं बतभो, उपसृष्टं बत भो' इत्यवदानं प्रावर्ति। अतीव प्रव्रज्यायै चित्तमनंसीत्। सः 'अद्यैवभ्या महाभिनिष्क्रमणं निष्क्रमितुं वर्तते' इति शयनादुत्थाय द्वारसमीपं गत्वा 'कोऽत्रे' त्याह। उम्मारे शीर्षं कृत्वा निपन्नश्छन्दः – 'अहमार्यपुत्र ! छन्द' इत्याह । 'अहमद्य महाभिनिष्क्रमणं निष्क्रभितु –

हिन्दी भावानुवाद

पसीना बहने से, कोई लार बहने से लथपथ शरीर वाली हैं, कोई दॉत किटाकिटा रही हैं, कोई बड़बड़ा रही हैं, कोई (स्वप्न में) रो रही हैं, कोई मुॅह खोले हैं, तो किसी के वस्त्र हट जाने से अश्लील अंग प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहे हैं। उन स्त्रियों की ऐसी विकृत दशा देखकर वे और भी काम से विरक्त हो गये। उनका वह सुसज्जित इन्द्रभवन के समान अपना महल सड़े हुए शवों और मांस के लोथड़ों से भरे शमशान की तरह लगने लगा। तीनों लोक जलते हुए घर के समान प्रतीत होने लगे। 'अरे भागो, अरे निकल चलो' – ऐसा उनके मुॅह से निकल पड़ा। मन संन्यास की ओर और अधिक झुक गया। 'आज ही मुझे महानिमिष्क्रमण के लिए निकल जाना है' ऐसा सोच कर वे पलंग से उठकर द्वार के पास जाकर बोले – ''यहॉ कौन है?'' ड्योढ़ी पर सिर रख कर लेटे हुए छन्द (क) ने कहा– ''आर्यपुत्र! मैं छन्द (क) यहॉ हूँ।'' ''मैं अभी महाभिनिष्क्रमण के लिए निकल जानाचाहता हूँ।

ति । सो 'साधु देवा' ति अस्सभण्डकं गहेत्वा अस्ससालं गन्त्वा गन्धतेलप्पदीपेसु जलन्तेसु सुमनपट्टवितानस्स हेट्ठा रमणीये भूमिभागे ठितं कन्थकं अस्सराजानं दिस्वा 'अज्ज मया इमं एवकप्पेतुं वट्टती' ति कन्थकं कप्पेसि। सो कप्पियमानो व अञ्ञासि– 'अयं कप्पना अति गाकहा, अञ्ञेसुदिवसेसु उञ्ञानकीकादिगमने कप्पना विय न होति, मय्हं अय्यपुत्तो महाभिनिक्खमनं निक्खमितुकामों भविस्सती' ति । ततो तुट्ठमानसो महाहसितंहसि । सो सद्दो सकलनगरं पत्थरित्वा गच्छेय्य ,देवता पन तं सद्दं निरुम्भित्वा नकस्सचि सोतुं अदंसु। बोधि

ासत्तोपिखो छन्नं पसेत्वा व 'पुत्तं ताव पस्सिस्सामी' ति चिन्तेत्वा निसिन्नपल्लंकोत वुट्ठाय राहुलमाताय

संस्कृत रूपान्तर

कामः, एकं मेऽश्वं कल्पय' इति। सः 'साधु देव!' इत्यश्वमाण्डकं गृहीत्वाऽश्वशणां गत्वा गन्धतैलप्रदीपेषु ज्वलत्सु सुमनःपट्टवितानस्याधस्तात् रमणीये भूमिभागे स्थितं कन्थकमश्वराजं दृष्टवा –'अद्यायमेव मया कल्पनीयो वर्तते' इति कन्थकमक्लृप्त । स कल्पयन्नेवाज्ञासीत् – इयं कल्पनातिगाढा, अन्येषु दिवसेषूद्यानक्रीडादिगमने कल्पनेव न भवति। अस्माकमार्यपुत्रो महाभिनिष्क्रमणं निष्क्रमितुकामो भविष्यतीप्ति। ततस्तुष्टमानसो महाहसितमहासीत्। सः शब्दः सकलनगरं प्रस्तीर्य गच्छेत्, देवताः पुनस्तंशब्दं निरुद्ध्य न कञ्चित् श्रोतुमदुः । बोधिसत्त्वोऽपि खलु छन्दं प्रष्यैव, पुत्रं तावद् द्रक्ष्यामीति चिन्तयित्वा निषण्णपर्यंकतः उत्थाय राहुलभातुः वसनस्थानं गत्वा ।

हिन्दी भावानुवाद

मेरे लिए एक घोड़ा तैयार करो।'' ''अच्छा,महाराज!'' ऐसा कहकर, वह अश्वाभूषण लेकर अश्वशाला में जाकर गन्ध तैलप्रदीप के प्रकाश में सुमनपट्ट वितान के नीचे रमणीय भूभाग में स्थित अवश्राज कन्थक को देखकर, 'आज मुझे इसी को सजाना है' – ऐसा निश्चय करके कन्थक को सजाया। अलंकृत होते हुए कन्थक ने समझ लिया कि यह सजावट अतिशय प्रगाढ़ है, उपवनक्रीड़ादि के लिए जाने हेतु ऐसी साज सज्जा नहीं की जाती थी। हमारे आर्य पुत्र महाभिनिष्क्रमण के लिए आज ही निकलेंगे। अतः सन्तुष्ट मन वाले उसने सजते हुए ही जोर से अट्टहास किया। यह शब्द पूरे नगर में न फैल जाय अतःदेवताओं ने उस शब्द को रोक कर किसी को सुनने न दिया। इधर, बोधिसत्त्व ने भी, 'छन्द को तो भेज ही दिया है, 'तब तक पुत्र को देख लूँ' – ऐसा विचार करके पलंग से उठकर वसनट्ठानं गन्त्वा गब्भद्वारं विवरि। तस्मिं रवणे अन्तागब्भूगन्ध तेलप्पदीपो झायति। राहुलमाता सुमनमल्लिकादीनं पप्फानं अम्मणमत्तेन अभिप्पकिण्णसयने पुत्तस्समत्थके हत्थं रूपेत्वा निद्दायति। बोधि ासत्तो उम्मारे पादं ठपेत्वा ठितको व ओलोकेत्वा – 'स चाहं देविया हत्थं अपने त्वामम पुत्तं गण्हिस्सामि, देवी पबुज्झिस्सति, एवं मे गमनन्तरायो भविस्सति। बुद्धो हुत्वा व आगन्त्वा पस्सिसामि' ति पासादतलतो ओतरि।

संस्कृत रूपान्तर

गर्भद्वारं व्यवीवरत् । तस्मिन् क्षणेऽन्तर्गर्मे गन्धतैलप्रदीपोध्यायति। राहुलमाता सुमनोमल्लिकादीनां पुष्पाणामर्मणमात्रेणाभिप्रकीर्णशयने पुत्रस्यमस्तके हस्तं स्थापयित्वा निद्रायते स्म। बोधिसत्त्व उम्मारे पादं स्थायित्वा स्थित एवावलोक्य–

'चेदहं देव्याः हस्तमपनीय मम पुत्रं ग्रहीष्यामि देवी प्रबोधत्स्यते, एवं मे गमनान्तरायो भविष्यति । बुद्धो भूत्वैवागम्यद्रक्ष्यामी' ति प्रासादतलतोऽवातरीत् ।।

हिन्दी भावानुवाद

राहुलमाता के निवास स्थान में जाकर अन्तःपुर का द्वार खोल दिया। उस समय अन्दर अन्तःपुर में गन्धतैलप्रदीप बुझ गये थे। राहुलमाता, सुमनमल्लिका आदि फूलों की पंखुड़ियों मात्र से अवकीर्ण बिस्तर पर, पुत्र के मस्तक पर हाथ रखकर सो रही थी। बोधिसत्त्व ने ड्योढ़ी पर ही पैर रखकर खड़े होकर (विचारपूर्वक) देखकर – 'यदि मैं देवी का हाथ हटाकर अपने पुत्र को उठाऊँगा (गोद में लूँगा) तो देवी जाग जायेगी, इस प्रकार मेरे गमन में बाधा उपस्थित होगी। (अतः) बुद्ध होकर ही आकर देखूँगा' – ऐसा सोचकर महल से नीचे उतर गये।।

टिप्पणी –

इस पाठ के गद्यांश को भी जातक की 'निदानकथा' से उद्धृत किया गया है। इसमें सिद्धार्थ को पुत्र प्राप्ति के पश्चात् उनके गृहत्याग का वर्णन किया गया है।

राहुलमाता – राहुल की मॉं। राहुलस्य माता राहुलमाता। प्र. वि., एक वचन। महाराज शुद्धोदन और महारानी मायादेवी की पुत्र वधू और सिद्धार्थ की पत्नी के लिए यह शब्द (संज्ञा) प्रंयुक्त है। वस्तुतःपुत्र हो जाने पर उसका नामकरण 'राहुल' किया गया। पुत्र पैदा होने के अवसर पर जननी को राहुलमाता कहना तर्कसंगत नहीं है। अतः यह प्रयोग चिन्त्य है।

विजाता – व्यजायत = वि + अजायत। पैदा किया । पुच्छित्वा – पृष्ट्वा।

प्रच्छ + क्त्वा । पूछकर । उदानं – अवदानम् । अव+दा+ल्युट् । यहॉं अवदान का अर्थ है – प्रशस्तिगाथा।

पजापतिहदयं – प्रजापतिहृदयम् । पजापत्या हदयं, छट्टीतत्पुरिस । पालिसाहित्य में पत्नी के अर्थ में 'पजापति' शब्द का बहुशः प्रयोग हुआ है। 'प्रजा' का अर्थ है सन्तान। जो अपनी सन्तान पैदा करने के पश्चात् उसका अच्छी तरह लालन पालन करे वह स्त्री (मॉं) 'प्रजापति' कहलाती है। रागग्गिम्हि – राग+अग्गिम्हि।

रागाग्नौ । सप्तमी विभक्ति, एक वचन। रागरूपी अग्नि। संसार के प्रति लगाव या आसक्ति को राग कहते हैं। जैसे अग्नि किसी वस्तु के सम्पर्क में आने पर जलाती है, वैसे ही राग भी अन्तः करण को सन्तप्त करता है। राग के निर्वृत (प्रशमित) हो जाने पर हृदय को परम शान्ति प्राप्त हो जाती है।

पण्णाकारं – पण्याकारम् । पण्य + आकारम् । द्वितीय + आकारम् । द्वितीया

विभक्ति, एक वचन । सौदे का अग्रिम (A token value)। कृशागौतमी को यहाँ क्षत्रियकन्या कहा गया है। उल्लेख से उसका पण्यस्त्री होना प्रमाणित नहीं है। सिद्धार्थ कुमार ने उसकी उदानगाथा से प्रेरित होकर प्रव्रज्या लेने का निश्चय किया और इस रूप में उसे गुरू (उपदेशक आचार्य) की कोटि में रखकर अपना हार उसे आचार्य भाग (गुरू दक्षिणा) के रूप में प्रेषित किया। उसने समझा कि कुमार ने मुझ पर अनुरक्त होकर मुझे 'पण्णाकार' (मेरा उपभोग करने हेतु अग्रिम) भेजा है। उम्मारे – उम्मारे । सप्तमी विभक्ति, एक वचन। ड्यौढ़ी या द्वार की चौखट ।

इस पाठ के अन्तिम अंश में स्त्री आदि का वीभत्स वर्णन कर के संसार से विरक्ति की दृढ़ता प्रदर्शित की गयी है।

2.4 महापरिनिब्बानसुत्तं

अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि – ''सिया खो पनानन्द, तुम्हाकं एवं अस्स – ''अतीतसत्थुकं पावचनं । नत्थि नो सत्था' ति । न खो पने तं, आनन्द, एवं दट्ठब्बं। यो वो आनन्द, मया धम्मो च विनयो च देसितो पञ्ञत्तो, सो वो ममच्चयेन सत्था। यथा खो पनानन्द, एतरहिभिक्खू अञ्ञमञ्ञं आवुसोवादेन समुदाचरन्ति, न वो ममच्चयेन एवं समुदाचरितब्बं। थेरतरेन, आनन्द, भिक्खुना नवकतरो भिक्खु नामेन वा गात्तेन वा आवुसोवादेन वा समुदाचरितब्बो। नवकतरेन भिक्खु नामेन वा गात्तेन वा आवुसोवादेन वा समुदाचरितब्बो। नवकतरेन भिक्खुना थेरतरो भिक्खु 'भन्ते' ति वा 'आयस्मा' ति वा समुदाचरिताब्बो। आकंखमानो, आनन्द, संघो ममच्चयेन खुद्दानुखुद्दकानि सिक्खापदानि समूहन्तु। छन्नस्स, आनन्द, ममच्चयेन ब्रह्मदण्डो दातब्बो'' ति।

महापरिनिर्वाणसूत्रम्

संस्कृत रूपान्तर

अथ खलु भगवान् आयुष्मन्तमानन्दममन्त्रयत् – ''स्यात्खलु पुनः आनन्द, युष्माकमेवं भवेत् – 'अतीतशास्तृकं प्रावचनं, नास्ति नः शास्ते' ति। न खलु पुनरेतदानन्द, एवं द्रष्टव्यं । यो वःआनन्द, मया धर्मश्च विनयश्च देशितः, प्रज्ञप्तः, स वो ममात्ययेन शास्ता। यथा खलु पुनः आनन्द, एतर्हि भिक्षुमन्योऽन्यमावुसोवादेन समुदाचरन्ति, न खलुममात्ययेनैवं समुदाचरितव्यम्। स्थविरतरेणानन्द, भिक्षुणा नवकतरो भिक्षुर्नाम्नावा गोत्रेण वावुसोवादेन वा समुदचरितव्यः। नवकतरेण भिक्षुणा स्थविरवरोभिक्षुः 'मदन्त' इति वा 'आयुष्मन्' इति वा समुदाचरितव्यः । आकांक्षमाणः आनन्द, संघों ममात्ययेन क्षुद्रानुक्षुद्रकाणि शिक्षापदानिसमूहन्तु। छन्दस आनन्द, मिक्षोः ममात्ययेन ब्रह्मदण्डं दातव्यम्।''

महापरिनिर्वाण सूत्र

हिन्दी भावानुवाद

तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द को आमन्त्रित किया –''आनन्द! हो सकता है कि तुम लोगों को ऐसा लगे कि यह प्रवचन अतीत शास्ता का है, अब हमारा शास्त्रा नहीं है। आनन्द ! ऐसा मत समझना। आनन्द! मैने जो धर्म और विनय आप लोगों को उपदिष्ट किया है, समझाया है, मेरे जाने के बाद वही तुम्हारा शास्ता है। आनन्द! जैसे इस समय भिक्षु एक दूसरे को 'आवुस' कह कर सम्बोधित करते हैं, मेरे जाने के बाद उन्हें ऐसा नहीं करना है। आनन्द! स्थतिर भिक्षु, नवीन भिक्षु को, नाम या गोत्र से अथवा 'आवुस' सम्बोधन से पुकारें। नवीन भिक्षु स्थविरतरभिक्षुको 'भन्ते' या 'आयुष्मन्' सम्बोधन से पुकारें। आनन्द! मेरे बाद, आकांक्षा रखने वाला संघ छोटे से छोटे शिक्षापदों को भी एकत्र कर उस पर मनन करे। आनन्द ! मेरे बाद स्वेच्छाचारी भिक्षु को ब्रह्म दण्ड दिया जाय।

''कतमो पन भन्ते ब्रह्मदण्डों'' ति? 'छन्नो, आनन्द, भिक्खु यं इच्छेय्य तं वदेय्य, सो भिक्खूहि नेव वत्तब्बो, न ओवदितब्बो, न अनुसासितब्बो' ति। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि – ''सिया खो पन भिक्खवे, एक भिक्खुस्सापि कंखा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा संघे वा भग्गे वा परिपदाय वा, पुच्छथ, भिक्खवे, मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ – ''सम्मुखीभूतो नोसत्था अहोसि, न भयं सक्खिम्हा भगवन्त सम्मुखा परिपुच्छितुं''ति। एवं बुत्तेते भिक्खू तुण्हीअहेसुं। दुतियम्पि, ततियम्पि खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि –––––– । ततियम्पि खोते भिक्खू तुण्ही अहेसुं । अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि – 'सियाय खो पन, भिक्खवे सत्थु गारवेनापि न पुच्छेय्याथ। सहायकोपि, भिक्खवे, सहायकस्स आरोचेतू' ति।

संस्कृत रूपान्तर

कतमः पुनः भदन्त! ब्रह्मदण्ड?'' इति। ''छन्द, आनन्द! मिथ्तुर्यदिच्छेत् तद् वदेत् स भिक्षुमिर्नैव वक्तव्यो नो पदेष्टव्यो नानुशासितव्यः'' इति। अथ खलु भगवान् भिक्षूनमन्त्रयत् – ''स्यात्खलु पुनः भिक्षवः ! एकस्य मिथ्तोरपिकांक्षा वा विमतिर्वा बुद्धे वा धर्मे वा संघे वा मार्गेवा प्रतिपदिवा, पृच्छथ, मिक्षवः ! मा पश्चाद्विप्रतिसारिणो भवतसम्मुखीभूतो नोशास्ताऽभूत्, न वयं शक्नुमो भगवन्तं सम्मुखं प्रतिप्रष्टुम्'' इति। एवमुक्ते ते मिक्षवस्तूष्णीमभूवन् । द्वितीयमपि तृतीयमपि खलु भगवान् भिक्षूनमन्त्रयत्। तृतीयमपि खलुते भिक्षवस्तूष्णमिभूवन्। अथखलु भगवान् भिक्षून मन्त्रयत् – ''स्पात्खलु पुनः भिक्षवः शास्तुः गौरवेणापि न पृच्छेयुः। सहायकोऽपि भिक्षवः ! सहायकमारोचयतु'' इति।

हिन्दी भावानुवाद

''भन्ते! यह ब्रह्मदण्ड क्या है?'' आनन्द! स्वच्छन्द भिक्षु जो चाहे, वह

कहे किन्तु भिक्षुओं को उससे न बोलना चाहिए, न उसे सीख देनी चाहिए या अनुशासन भी नहीं करना चाहिए। तब भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया –''भिक्षुओं ! यदि बुद्ध,धर्म, संघ, मार्ग या प्रतिपत् में कोई शंका या विभति (असहमति) हो, तो पूछ लो। भिक्षुओ!बाद में कोई पश्चात्ताप न हो कि शास्ता हमारे सम्मुख थे किन्तु हम भगवान से आमने सामने कुछ न पूछ सके।'' (बुद्ध के) ऐसा कहने पर वे भिक्षु चुप रहे। फिर भगवान् ने दूसरी बार और पुनः तीसरी बार भी भगवान् ने भिक्षुओं से ऐसा ही कहा। तीसरी बार भी भिक्षु चुप ही रहे। तब पुनः भगवान् ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया – ''भिक्षुओं! हो सकता है कि शास्ता के गौरव के कारण (संकोच या भयवश) न पूछ रहे हों, तो सहायक सहायक से कहे।'' (अर्थात् अपने सहयोगी के माध्यम से पूछें)। एवं वुत्ते, ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं । अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतद्वोच – ''अच्छरियं भन्ते, अब्भुतं भन्ते! एवं प्रसन्नो अहं, भन्ते, इमस्मिंभिक्खु– संघे नत्थि एकभिक्खुस्सापि कंखा वा विमति वा बुद्धेवा धम्मे वा संघे वा मग्गे वा अटिपदाय वा'' ति। 'पसादा, खो त्वं, आनन्द वदेसि। ञाणं एव होत्थ आनन्द तथागतस्स। नत्थि इमस्मिं भिक्खुसंघे एक भिक्खुससापि कंखा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा संघे वा भग्गे वा पटिपदाय वा । इमेसं हि, आनन्द, पञ्चन्नं भिक्खुसतानं यो पच्छिम को भिक्खु सो सोता पन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणों' ति। अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेस्रि – 'हन्ददानि, भिक्खवे, आमन्तयामिवो – वयधम्मा संगखारा अप्प –

संस्कृत रूपान्तर

एवमुक्ते ते भिक्षवस्तूष्णीमभूवन् । अथ खलु आयुष्मान् आनन्दों भगवन्तमेतदवोचत् –''आश्चर्यं भदन्त्! अद्भुतं मदन्त! एवं प्रसन्नोऽहं, भदन्त! एतस्मिन् भिक्षुसंघे नास्त्येकस्यापि भिक्षोः कांक्षा वा विमतिर्वा बुद्धे वा धर्मे वा संघे वा प्रतिपदिवा'' इति। ''प्रसादात्खलु त्वम् आनन्द! वदसि। ज्ञानमेव ह्यत्र आनन्द! तथागतस्य, नास्त्यस्मिन् भिक्षुसंघे एकस्यापि भिक्षोः कांक्षा वा विमतिर्वा बुद्धे वा धर्मे वा संघे वा मार्गेवा प्रतिपदि वा। एषां हि आनन्द ! पञ्चानां भिक्षुशतानां यः पश्चिम को भिक्षुः का स्रोतस्यापन्नोऽविनिपातधर्मों नियतः सम्बोधिपरायण'' इति। अथ खलु भगवान् भिक्षूनमन्त्रयत् – ''हन्त! इदानीं भिक्षवः! आमन्त्रयामि वः, व्ययधर्माः संस्काराः

हिन्दी अनुवाद

ऐसा कहने पर भी वे भिक्षु मौन ही रहे। इस पर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह कहा – ''भन्ते! आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है। मै ऐसा प्रसन्न हूॅ कि क्या कहूॅ !! भन्ते! इस भिक्षुसंघ में बुद्ध या धर्म या संघ या प्रतिपद् के सम्बन्ध में किसी को भी शंका या दुविधा (असहमति या असमंजस) नहीं है।''

आनन्द! तुम प्रसन्नता से ऐसा कह रहे हो। आनन्द! तथागत का ज्ञान ही यहाँ (कारण) है कि इस भिक्षुसंघ में एक भी भिक्षु का बुद्ध या धर्म या संघ या मार्ग या प्रतिपत् के सम्बन्ध में शंका या विीाति नहीं है। आनन्द! इन पाँच सौ भिक्षुओं में, जो सबसे छोटा भिक्षु है, वह भी (धर्म) की मूलधारा में पहुँचा हुआ है, मार्गच्युत होने वाला नहीं है। अविचलित रहने वाला है और सम्बोधिपरायण है।'' पुनः भगवान ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया – ''हे भिक्षुओं! अब मैं तुम्हें अन्तिम उपदेश दे रहा हूँ। संस्कार व्ययधर्मा है। अर्थात् संस्कार अव्यय – सदा एक जैसा रहने वाला अविकारी नहीं है। मादेन सम्पादथा' ति। अयं तथागतस्स पच्छिमा वाचा।

अथ खो भगवा पठमज्झानं समापज्जि। पइमज्झाना वुट्ठाहित्वा दुतियज्झानं ––––– ततियज्झानं ––– चतुत्थज्झानं समापज्जि । चतुत्थज्झाना वुट्ठहित्वा आकासानञ्चायतनं समापज्जि । आकासानञ्चायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा विञ्ञाणञ्चायतनं समापज्जि । विञ्ञाणञ्चायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा आकिञ्चञ्ञायतनं समापज्जि। आकिञ्चञ्ञायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं समापज्जि। नेवसञ्ञानासञ्ञायतनसमापत्तिया वुट्ठहित्वा सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जि। अथ खो आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं अनुरूद्धंएतदवोच – ''परिनिब्बुतो, मन्ते अनुरूद्ध, भगवा'' ति। ''न आतुसो आनन्द, भगवा परिनिब्बुतो, सञ्ञावेदयित–निरोधं समापन्नो'' ति । अथ खो भगवा सञ्ञावेदयित–

संस्कृत रूपान्तर

अप्रमादेन सम्पादयत'' इति। इयं तथागतस्य पार्श्चमा वाक्।

अथ खलु भगवान् प्रथमं ध्यानं समापादि। प्रथम ध्यानादुत्थाय द्वितीयध्यानं समापादि। द्वितीयध्यानं ––– तृतीयध्यानं ––– चतुर्थध्यानं समापादि। चतुर्थध्यानादुत्थाय आकाशानन्त्यायतनं समापादि। आकाशानन्त्यायतनसमापत्तेरूत्थाय विज्ञानानन्त्यायतनं समापादि । विज्ञानानन्त्यायतन समापत्तेरूत्थाय आकिञ्चन्यायतनं समापादि । आकिञ्चनानन्त्यायतनसमापत्तेरूत्थाय नैवसंज्ञानासंज्ञानायतनं समापादि। नैवसंज्ञानासंज्ञानायतनसमापत्तेरूत्थाय संज्ञावेदयितृनिरोधं समापादि । अथ खलु आयुष्मान् आनन्द आयुष्मन्तमनुरूद्धमवोचत्परिनिर्वृतो महन्त अनुरूद्ध! भगवान्'' इति। ''न, आयुष्मन् आनन्द! भगवान् परिनिर्वृतः संज्ञावेयितृनिरोधं समापन्न'' इति। अथ खलु भगवान् संज्ञावेदायितृनिरोध –

हिन्दी भावानुवाद

(अतः) अप्रमादपूर्वक इनका सम्पादन करो (प्रयत्नपूर्वक संस्कारवान् रहो) ।'' यह तथागत का अन्तिम वचन हैं। तत्पश्चात् भगवान् ने प्रथम ध्यान लगाया। प्रथम ध्यान से उठकर द्वितीय ध्यान में पहुँचे। इसी प्रकार, क्रमशः द्वितीय से तृतीय और तृतीय से चतुर्थ ध्यान में पहुँचे । चतुर्थ ध्यान से आगे आकाशानन्त्यायतन को प्राप्त हुए। आकाशानन्त्यायतनसमापत्ति से उठकर विज्ञानानन्त्यायतन में पहुँचे। विज्ञानानन्त्यायतन समापत्ति से उठकर आकिञ्चन्यायतन को प्राप्त हुए। आकिञ्चान्यायतनसमापत्ति से उठकर नैवसंज्ञानासंज्ञानायतन में पहुँचे। फिर नैवसंज्ञानासंज्ञानायतनसमापत्ति से उठकर संज्ञावेदयितृनिरोध को प्राप्त हुए। तब आयुष्मान आनन्द ने आयुष्मान् अनिरूद्ध से कहा – ''भन्ते अनिरूद्ध! क्या भगवान् परिनिर्वृत हो गये?'' ''नहीं, आयुष्मान् आनन्द! भगवान् परिनिर्वृत नहीं हुए हैं, संज्ञावेदपितृ निरोध की स्थिति में पहुँचे हैं । तब भगवान् पुनः (व्युतक्रम से) निरोधसमापत्तिया वुट्ठहित्वा नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं——विञ्ञाणञ्चायतनं —— आकासनञ्चायतनं —— चतुत्थं झानं —— ततियं झानं —— दुतियं झानं —— पंठमं झानं समापज्जि। पठमज्झाना वुट्ठहित्वा दुतियज्झानं —— ततियज्झानं —— ततियज्झानं —— चतुत्थज्झानं समापज्जि। चतुत्थज्झाना वुट्ठहित्वा समनन्तरा भगवा परिनिब्बायि । परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना, महाभूमिचालो अहोसि भिवनको लोमहंसो। देवदुन्दुभियो च फलिंसु । परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना, ब्रह्मा सहंपति इमं गाथं अभासि –

'सब्बेव निक्खिपिस्सन्ति, भूता लोके समुस्सयं ।
यत्थ एतादिसी सत्था, लोके अप्पटिपुग्गलो ।।
तथागतो बलप्पत्तो सम्बुद्धो परिनिब्बुतो' ति ।।

संस्कृत रूपान्तर

समापत्तेरूत्थाय नैवसंज्ञानासंज्ञानायतनं आकिञ्चन्यायतनं —— विज्ञानानन्त्यायतनं —— आकाशानन्त्यायतनं —— चतुर्थं ध्यानं —— तृतीयं ध्यानं —— तृतीय ध्यानं —— द्वितीयं ध्यानं —— प्रथमं ध्यानं समापादि। प्रथमध्यानादुत्थय द्वितीयं ध्यानं समापादि । द्वितीयध्यानादुत्थाय तृतीयंध्यानं, तृतीयध्यानादुत्थाय चतुर्थंध्यानं समापादि। चतुर्थध्यानादुत्थाय समनन्तरं भगवान् परिनिरवारीत् । परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेन महाभूमिचालोऽभूत्, भीषण को लोमहर्षकः [illegible]

ब्रह्मा सदस्यतिः इमां गाथामभाषिष्ट –

"सर्व एव निश्तेप्स्यन्ति भूताः लोके समुच्छ्रयम् ।
यथैतादृशः शास्ता लोकेऽप्रति पुदगणः ।
तथागतो बलप्राप्तः सम्बुद्धः परिनिर्वृतः ।।" इति।

हिन्दी भावानुवाद

संज्ञावेथितृनिरोध समापत्ति से उठकर नैवसंज्ञानासंज्ञानायतन को प्राप्त हुए। नैवसंज्ञानासंज्ञानायतनसमापत्ति से उठकर आकिञ्यहन्यायतन को ––– विज्ञानानन्त्यायतन को ––– आकांशानन्त्यायतन को ––– चतुर्थध्यानं को ––– तृतीयध्यानं को ––– द्वितीय ध्यानं को और फिर प्रथम ध्यानं को प्राप्त हुए । फिर प्रथम ध्यान को प्राप्त हुए। फिर प्रथम ध्यान से उठकर द्वितीय ध्यान में पहुँचे, द्वितीय ध्यान से तृतीय और तृतीय से चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हुए। चतुर्थ ध्यान से उठने के साथ ही भगवान् परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। भगवान् के परिर्वृत होते ही, परिनिर्वाण के साथ ही भीषण रोमाञ्चकारी महाभूचाल आया और देवदुन्दुभियां बज उठीं। भगवान् के परिनिर्वृत हो जाने पर, परिनिर्वाण के साथ ही सदस्पति ब्रह्मा ने यह गाथा कही –

"संसार में सभी प्राणियों का शरीरपात होगा तथापि लोक में, इस प्रकार के अद्वितीय महापुरूष, तथागत, आत्मबलसम्पन्न, शास्ता बुद्ध भी परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।" परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना सक्को देवानं इन्दो इमं गाथं अभासि –

'अनिच्चा बत संखारा उप्पादवयधम्मिनो ।
उपज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं वूपसमोसुखो' ति ।।

परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना, आयस्मा अनुरुद्धो इमा गाथायो अभासि–

नाहु अस्सासपस्सासो, ठितचित्तस्स तादिनो।
अनेजो तन्तिमारब्भ, यं कालं अकरी मुनी ।।
असल्लीनेन चित्तेन, वेदनं अज्झवासयि ।
पज्जोतस्सेव निब्बानं विमोखो चेतसो अहू' ति ।।

संस्कृत रूपान्तर

परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेन शक्रो देवानामिन्द्र इमां गाथामभाषिष्ट–

"अनित्याः बत संस्कारा उत्पादव्ययधर्मिणः।

उत्पद्य निरुध्यन्ते तेषामुपशमः सुखम् ।।'' इति।

परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेन, आयुष्मान् अनिरुद्ध इमें गाथे अभाषिष्ट–

''न खल्वाश्वासप्रश्वासः स्थितचित्तस्य तापिनः ।

अनेजः शान्तिमारभ्य यं कालमकरोन्मुनिः।।

असल्लीलेन चित्तेन वेदनामध्यवासयत् ।

प्रद्योतस्यैव निर्वाणं विमोक्षश्चेतसोऽमूत् ।।'' इति।

हिन्दी भावानुवाद

भगवान् के परिनिर्वृत होने पर, परिनिर्वाण के साथ ही देवेन्द्र शक्र ने यह गाथा कही –

''संस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न और नष्ट होने वाले हैं। (जो) उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं, उनका शान्त हो जाना ही सुख है।।''

भगवान् के परिनिर्वृत होने पर, परिनिर्वाण के साथ ही, आयुष्मान् अनिरूद्ध ने इन गाथाओं को कहा –

''स्थिरचित्त तपस्वी (तथागत) को आश्वास–प्रश्वास नहीं रहा। शान्ति के लिए निष्काम मुनि ने अपनी आयु (काल) व्यतीत की। असंलिप्त चित्त से वेदना को छोड़ दिया। जाज्वल्यमान दीपक के बुझने के समान ही चित्त का विमोक्ष हुआ है।।''

परिनिब्बुते भगवति, सह परिनिब्बाना, आयस्मा आनन्दो इमं गाथं अभासि–

तदासि यं भिंसन कं तदासि लोमहंसनं ।

सब्बाकारवरूपेते, सम्बुद्धे परिनिब्बुते' ति ।।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।

––––

संस्कृत रूपान्तर

परिनिर्वृते भगवति, सह परिनिर्वाणेन, आयुष्मान् आनन्द इमां गाथामभाषिष्ट –

''तदासीद्यद्मीषणकं तदा सील्लोमर्षणम् ।

सर्वाकारवरोपेते सम्बुद्धे परिनिर्वृते ।।'' इति।

नमस्तस्मै भगवतेऽर्हते सम्पक्सम्बुद्धाय ।।

हिन्दी भावानुवाद

भगवान् के परिनिर्वृत हो जाने पर, परिनिर्वाण के साथ ही आयुष्मान आनन्द ने यह गाथा कही –

"जब सर्वोत्तमस्वरूप में अवस्थित भगवान् बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हुए, उस समय जो भीषण भूचाल हुआ और भय के कारण सब रोमान्चित हो गये।।

उस भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को नमस्कार ।।

टिप्पणी

'महापरिनिब्बान सुत्त' सुत्तपिटक के दीघनिकाय से उद्‌धृत है। इसके अन्तर्गत भगवान् बुद्ध के धर्म और विनय से सम्बद्ध वचन, उपदेश के रूप में संग्रहीत हैं। भगवान् बुद्ध ने अपने लौकिक जीवन के अन्तिम क्षणों में आनन्द और अनिरूद्ध आदि प्रमुख शिष्यों के समक्ष धर्म, बुद्ध और संघ के सम्बन्ध में शंका या जिज्ञासा आमन्त्रित की थी। शिष्यों को सन्तुष्ट करने के पश्चात् वे योगसिद्धि का आश्रय लेकर महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए। इस पाठ में योग के ध्यानक्रम में ऊपर उठने और फिर वापस आने का प्रक्रियारहित निर्देश है।

अतीतसत्थुकं पावचनं –

अतीतशास्तृकं प्रावचनम् । अति + इ + क्त – अतीत विशेषणपद। बीता हुआ, परे गया हुआ। शास्+ तृच् – शास्तृ (शास्ता) । शस्तृ + क। उपदेशक, गुरू, आचार्य, विशेषतः बौद्ध या जैन धर्म का। प्र + वच् + ल्युट – प्रवचनम् । प्रवचनमेव प्रावचनम् । अतीतशास्तृकं प्रावचनम् – ऐसा उपदेश, जिसका उपदेशक या आचार्य नहीं रहा (परे संसार से चला गया) । भगवान् बुद्ध ने ऐसा इसलिए कहा कि कहीं शिष्य अश्रद्धावश बुद्धवचनों की अवलेहना न करें। छन्नस्स – छन्दसे । छन्द् + असुन् , चतुर्थी विभक्ति, एकवचन। 'छन्दस्' का अर्थ है अपनी मरजी का मालिक, स्वेच्छाचारी, किसी बन्धन को न मानने वाला।

ब्रह्मदण्डा –

ब्रह्मदण्डः, ब्रह्मदण्डम् । 'दण्ड' शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों में पठित है। ब्रह्मणा, ब्रह्मणे, ब्रह्मणो, ब्रह्मणि वा दण्डंवा। शास्ता ने कहा कि स्वेच्छाचारी भिक्षु को ब्रह्मदण्ड देना चाहिए। शिष्य आनन्द को शंका हुई (क्योंकि वैदिक संन्यासी जो दण्ड धारण करते हैं, उसे भी 'ब्रह्मदण्ड' कहते हैं)। तब शास्ता ने ब्रह्मदण्ड का विधान बताया कि वैसे भिक्षु से न बोलना, न शिक्षा देना, न उसे अनुशासित करना ही ब्रह्मदण्ड है। कहावत है – वध से भला त्याग। आरोचेतु – आरोचयतु । आ + रुच् , लोट् लकार, प्र. पु., एक वचन। अपनी पसन्द बतायें। संस्कृत में 'रूच' धातु पसन्द होने या

चमकने के अर्थ में है, कहने के अर्थ में नहीं। परिपदाय – प्रतिपदि । यह प्रयोग सम्भवतः प्रतिपत्ति या शरणागति के लिए किया गया है। वैसे 'प्रतिपद्' का अर्थ श्रद्धा युक्त बुद्धि या प्रज्ञा भी है। प्रति + पद् + क्विप्, सप्तमी विभक्ति, एक वचन।

संखाराः –

बौद्धधर्म में 'संखार' शरीर धर्म के लिए प्रयुक्त हुआ है। ये अनित्य हैं, उत्पन्न होकर क्षीण (– नष्ट या समाप्त) हो जाते हैं।

2.5 धम्मपदसंगहो

1. नहि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं ।
   अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो ।।5।।
2. यथा अगारं सुच्छन्नं वुट्ठि न समतिविज्झति ।
   एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविज्झति ।।14।।
3. इध नन्दति पेच्चनन्दति कतपुञ्ञो उभयत्थ नन्दति।
   'पुञ्ञं में कतं' ति नन्दति भिय्यो नन्दति सुग्गतिं गतो ।।18।।
4. अचिरं बत यं कायो पठविं अधिसेस्सति ।
   छुद्दो अपेतविञ्ञाणों निरत्थं व कलिंगरं ।।41।।
5. यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेष्यं ।
   पलेति रसं आदाय एवं गामे मनुनी चरे ।। 49।।

संस्कृत रूपान्तर

धर्मपदसंग्रहः

1. नहि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन ।
   अवैरेण च शाम्यन्त्येष धर्मः सनातनः ।। 5 ।।
2. यथागारं सुच्छन्नं वृष्टिर्न समतिविध्यति ।
   एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविध्यति ।। 14 ।।
3. इह नन्दति प्रेत्य नन्दति कृतपुण्यः उभयत्र नन्दति ।
   पुण्यं में कृतमिति नन्दति भूयो नन्दति सुगतिं गतः ।। 18 ।।
4. अचिरं बतायं कायः पृथिवीमधिशेष्यते ।
   क्षुद्रोऽपेतविज्ञानो निरर्थमिव कलिंगम् ।। 41 ।।
5. यथापि भ्रमरः पुष्पं वर्णगन्धमहेडमानः ।

पलायते रसमादाय एवं ग्रामे मुनिश्चरेत् ।। 49 ।।

हिन्दी भावानुवाद

धर्मपदसंग्रह

1. इस संसार में वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता अपितु अवैर (प्रेम) से ही शान्त होता है, यी सनातन धर्म (नियम) है। ।। 5 ।।

2. जिस प्रकार अच्छी तरह छाये गये घर के अन्दर वर्षा का पानी ऊपर से नहीं घुसता, उसी प्रकार,सुभाषित चित्त्त में राग का प्रवेश नहीं होता।।14।

3. इस लोक में आनन्दित होता है, परलोक में आनन्दित होता है, पुण्र करने वाला दोनों जगह आनन्दित होता है । 'मैने पुण्य किया' – ऐस सोचकर आनन्दित होता है और फिर अच्छी गति को निर्वाण को पाक आनन्दित होता है।। 18।।

4. यह शरीर शीघ्र ही पृथ्वी पर गिरकर पड़ जायेगा। फिर विज्ञान रहि क्षुद्र शरीर सूखे काठ या कण्डे के समान निरर्थक हो जायेगा।।41।।

5. जिस प्रकार भौंरा फूल के रंग गन्ध की अवहेलना न करता हुआ रस लेकर उड़ जाता है, उसी प्रकार मुनि को भी ग्राम–चर्या करनी चाहिए।।49

6. दीघा जागरतो रत्ती दीघं सन्तस्स योजनं ।
दीघं बालानं संसारो सद्धम्मं अतिजानतं ।। 60।।

7. न हि पापं कतं कम्म सज्जु रवीरं व मुच्चति ।
डहन्तं वालं अन्वेति भस्माछन्नो व पावको ।।71।।

8. उदकं नयन्ति नेत्तिका, उसुकारा नमयन्ति तेजनं ।
दारूं नमयन्ति तच्छका, अत्तानं दमयन्ति पण्डिता ।।80।।

9. सेलो यथा एकघनो वातेन न समीरति ।
एवं निन्दापसंसेसु न समिञ्जन्ति पण्डिता ।।81।।

10. यो सहस्सं सहस्सेन संगामें मानुसे जिते।
एकञ्च जेय्यमत्तानं स वे संगामजुत्तमो ।।103।।

संस्कृत रूपान्तर

6. दीर्घा जाग्रतो रात्रिर्दीर्घ श्रान्तस्य योजनम् ।
दीर्घो बालानां संसारः सद्धर्ममविजानताम् ।।60।।

7. नहि पापं कृतं कर्म सद्यः क्षीरमिव मुञ्चति।
दहन्बालमन्वेति अस्माच्छन्न इव पावकः ।।71।।

8. उदकं नयन्ति नेतृका इषुकाराः नमयन्ति तेजनम् ।

दारूं नमयन्ति तक्षका आत्मानं दमयन्ति पण्डिताः ।।80।।

9. शैलो यथैकघनो वातेन न समीर्यते ।

एवं निन्दाप्रशंसासु न समीर्यन्ते पण्डिताः ।।81।।

10. यः सहस्रं सहस्रेन संग्रामे मानुषान् जयेत् ।

एकञ्च जययेदात्मानं स वै संग्रामजिदुत्तमः ।।103।।

हिन्दी भावानुवाद

6. जागने वाले केलिए रात लम्बी होती है, थके हुए के लिए एक योजन भी बहुत लम्बा होता है। सद्धर्म को न जानने वाले मूर्खों का संसार भी बड़ा होता है।। 60।।

7. व्यक्ति को उसके द्वारा किया गया पाप कर्म, बरगद के दूधिया रस की तरह तुरन्त नहीं छोड़ता और राख से ढंकी हुई अग्नि (चिनगारी) की तरह जलाता हुआ उस मूर्ख के पीछे दौड़ता है।।71।।

8. नाली पानी को ले जाती है, बाण बनाने वाला सरकण्डे को सीधा करता है, बढ़ई लकड़ी को सीधा करता है। और उसी तरह विज्ञजन अपनी इन्द्रियों का दमन करते हैं।।80।।

9. जिस प्रकार उठा हुआ भारी पर्वत (तूफानी) हबा द्वारा नहीं हिलाया जा सकता, उसी तरह पण्डितजन निन्दा या प्रशंसा से विचलित नहीं होते।।81।।

10. जो (योद्धा) संग्राम में हजारों (योद्धाओं) को हजार बार जीत लेता है वहीं यदि अकेले केवल अपने को जीत ले (ात्मि नियंत्रण) कर ले तो वह श्रेष्ठ युद्धविजयी है।।103।।

11. परिजिण्णं इदं रूपं रोगनि ड्डं पभङ्गणं।

भिज्जति पूतिसन्दोहो मरणन्तं हि जीवितम् ।।148।।

12. एकं धम्मं उतीतस्स मुसावादिस्स जन्तुनो।

वितिण्णपरलोकस्स नत्थि पापं अकारियं ।।176।।

13. यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च सरणं गतो ।

चत्तारि अरियस्च्चानि सम्पप्पञ्ञाव पस्सति ।।190।।

14. दुक्खं दुक्खसमुप्पादं दुक्खस्स च अतिक्कमं ।

अरियञ्चट्ठङ्गिकं मग्गं दुक्खूपसमगामिनं ।।191।।

15. एतं खो सरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं।

एतं सरणभागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ।।192।।

संस्कृत रूपान्तर

11. परिजीर्णमिदं रूपं रोगनीडं प्रभङ्गुरम् ।
भिद्यते पूतिःसन्दौहो मरणान्तं हि जीवितम् ।।148।।

12. एकं धर्ममतीतस्य मृषावादिनो जन्तोः ।
वितीर्णपरलोकस्य नास्ति पापमकार्यम् ।।176।।

13. यश्च बुद्धञ्च धर्मञ्च सङ्घञ्च शरणं गतः।
चत्वार्यार्यसत्यानि सम्पक् प्रज्ञया पश्चति ।।190।।

14. दुःखं दुःखसमुत्पादं दुःखस्य चातिक्रमम् ।
आर्याष्टाङ्गिकं मार्गं दुःखोपशमगामिनम् ।।191।।

15. एतत्खलु शरणं क्षेममेतच्छरणमुत्तमम् ।
एतच्छरणमागत्य सर्वदुःखात्प्रमुच्यते ।।192।।

हिन्दी भावानुवाद

11. यह रूप क्रमशः क्षीण (जीर्ण) होने वाला, रोगों का घर, क्षणभङ्गुर, अपवित्रता की राशि और बदलने वाला है। यह जीवन भी मरणपर्यन्त ही है।।148।।

12. धर्म का उल्लंघन करने वाले, असत्यवादी और परलोक को न मानने वाले मनुष्य के लिये पाप अकार्य नहीं है। अर्थात् वह बेहिचक पाप कर सकता है।।176।।

13. जो व्यक्ति बुद्ध, धर्म और सङ्घ की शरण में पहुँच गया है, वह अपनी विवेक बुद्धि से चार आर्य सत्यों को अच्छी तरह देख सकता है।।190।।

14. दुःख, दुःख का समुत्पाद, दुःख का निरोध, दृःखनिरोधगामिनी प्रतिपत् तथा श्रेष्ठ अष्टाङ्गिक मार्ग– ।।191।।

15. यही कल्याणकारी और उत्तम शरण है। इस शरण में आकर व्यक्ति हर प्रकार के सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है।।192।।

16. मा पियेहि समागञ्छि अप्पियेहि कुदाचनं ।
पियानमदस्सनं दुक्खं अप्पियानञ्च दस्सनं ।।210।।

17. यो वे उप्पतितं कोधं रथं भन्तं व धारये।
तमहं सारथि ब्रूमि रस्मिग्गाहो, तरो जनो ।।222।।

18. अयसा वमलं समुट्ठितं, तदुपट्ठाय तमेव खादति।
एवं अतिधोनचारिनं सककम्मानि नयंति दुग्गतिं ।।240।।

19. सुदस्सं वज्जं अञ्ञेसं अत्तनो पन दुद्दसं ।
परेसं हि सो वज्जानि ओपुनाति यथा भुसं
अत्तनो पन छादेति कलिं व कितवा सठो ।।252।।

20. न तेत भिक्खु भवति यावता भिक्खते परे ।
विस्सं सम्मं समादाय भिक्खु होति न तावता।।266।।

संस्कृत रूपान्तर

16. मा प्रियैः समागच्छाप्रियैः कदाचन।
प्रियाणामदर्शनं दुःखमप्रियाणाञ्च दर्शनम् ।।210।।

17. यो वैउत्पतितं क्रोधं रथं भ्रान्तमिव धारयेत्।
तमहं सारथिं ब्रवीमि रश्मिग्राह इतरो जनः।।222।।

18. अयस इव भलं समुत्थितं तत उत्थाय तदेव खादति।
एवमतिधावनचारिणं स्वानि कर्माणि नयन्ति दुर्गतिम् ।।240।।

19. सुदर्शनवद्यमन्येषामात्मनः पुनः दुर्दर्शम्।
परेषां हि सोऽवद्यानवपुनाति यथा बुसम्।
आत्मनः पुनः छादयति कलिमिवकितवः शठः ।।252।।

20. न तावता भिक्षुर्भवति यावता भिक्षते परान् ।
वेष्यं सम्यक् समादाय भिक्षुर्भवति न तावता।।266।।

हिन्दी भावानुवाद

16. प्रिय के साथ मत जाओ और अप्रियों के साथ तो कभी भी मत जाओ प्रिय लोगों का अदर्शन (बिछुड़ना) और अप्रिय लोगों का दर्शन (मिलाना) दुःखदायी होता है।।210।।

17. जो उठे हुए क्रोध को असन्तुलित रथ की भॉति नियन्त्रण में कर लेता है, मै उसी को सारथि मानता हूॅ, अन्य लोग तो केवल लगाम पकड़ने वाले हैं।।222।।

18. लोहे से उठा हुआ मल (जंग) उसी से उठ कर उसको खा जाता है। इसी प्रकार (भौतिकता के पीछे) बहुत दौड़ने वाले को उसके ही कर्म दुर्गति तक पहुॅचा देते हैं।।240।।

19. जो दूसरों के बुरे कर्मों को अच्छी तरह और अपने बुरे कर्मों को कठिनाई से देखता है, वह शठ व्यक्ति कलि की भॉति दूसरे के बुरे कर्म को भूसे की तरह फैला देता है और अपने बुरे कर्मों को छल पूर्वक छिपा लेता

है। ।252।।

20. दूसरों से भिक्षा माँगने से कोई भिक्षु नहीं हो जाता और भिक्षु के लिए उपयुक्त वेष (चीवरादि) धारण करके भी भिक्षु नहीं होता ।।266।।

21. योध पुञ्ञञ्च पापञ्च बाहित्वा ब्रह्मचरियता।
संखाय लोके चरति स वे भिक्खू' ति वुच्चति ।।267।।

22. 'सब्बे संखारा अनिच्चा' ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दती दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ।।277।।

23. 'सब्बे संखारा दुक्खा' ति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दती दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ।।278।।

24. 'सब्बे थम्मा अनत्ता' तियदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बन्दती दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ।।279।।

25. सेय्यो अयोगृको भुत्तो वत्तो अग्गिसिखूपमों।
यञ्ञे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रटठपिण्डं असञ्ञतो ।।308।।

संस्कृत रूपान्तर

21. य इह पुण्यं चपापंच वाहयित्वा ब्रह्मचर्यवान् ।
संख्याय लोके चरति स वै भिक्षुरित्युच्यते ।।267।।

22. सर्वे संस्कारा अनित्या इति यदा प्रज्ञाय पश्यति ।
अथ निर्विन्दति दुःखान्येष मार्गो विशुद्धेः ।।277।।

23. सर्वे संस्काराः दुःखानीति यदा प्रज्ञाय पश्यति।
अथ निर्विन्दति दुःखान्येष मार्गो विशुद्धेः ।।278।।

24. सर्वे धर्मा अनित्या इति यदा प्रज्ञाय पश्यति ।
अथ निर्विन्दति दुःखान्येष मार्गो विशुद्धेः ।।279।।

25. श्रेयानयोगोलो भुक्तस्तप्तोऽग्निशिखोपमः।
यश्चेद्भुञ्जति दुःशीलोराष्ट्रपिण्डमसंयतः ।।308।।

हिन्दी भावानुवाद

21. लोक में जो पुण्य और पाप को छोड़कर ब्रह्मचर्यवान् होता है और प्रारब्धवश इस संसार में अच्छी तरह समझते हुए विचरण करता है, वही भिक्षु कहलाता है। ।267।।

22. 'सभी संस्कार अनित्य हैं' – ऐसा अच्छी तरह जानकर जो (लोक व्यवहार को) देखता है, तब दुःखों के प्रति दुःख प्रकट करता है– यही विशुद्धि

का मार्ग है। ।277।।

23. 'सभी संस्कार दुःखद हैं'– ऐसा अच्छी तरह जानकर जो देखता है, तब दुःखों के प्रति दुःख प्रकट करता है – यही विशुद्धि का मार्ग है। ।278।।

24. 'सभी (शरीर–) धर्म अनित्य हैं – ऐसा अच्छी तरह जानकर जो देखता है, तब दुःखों के प्रति दुःख प्रकट करता है– यही विशुद्धि का मार्ग है। ।279।।

25. जो दुराचारी असंयत होकर राष्ट्र के धन को खाता है। स्वार्थ में उपयोग करता है) उसके लिए आग की लपट के समान तप्त लोहे का गोला खा लेना श्रेयस्कर है। ।308।।

26. दिवा तपति आदिच्चो रत्तिं आभाति चन्दिमा ।
सन्न द्धो खत्तियो तपति झायी तपति ब्राह्मणों
अथ सब्बं अहोरत्तिं बुद्धो तपति तेजसा ।।387।।

27. न जटाहि न गोत्तेन न जच्चा होति ब्राह्मणों ।
यम्हि सच्चं च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो। ।393।।

28. किं तेजटाहि दुम्मेध, किं ते अजिनसाटिया ।
अब्मन्तरं ते गहनं, बाहिरं परिमज्जसि। ।394।।

29. पंसुकूलधरं जन्तुं किसं धमनिसन्थतं ।
एकं वनस्मिं झायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।।395।।

संस्कृत रूपान्तर

26. दिवा तपत्यादिव्यो रात्रावाभाति चन्द्रमाः ।
सन्नद्धः क्षत्रियस्तपति ध्यायी तपति ब्राह्मणः
अथ सर्वमहोरात्रं बुद्धस्तपति तेजसा ।।387।।

27. न जटाभिर्न गोत्रेण जात्या भवति ब्राह्णः ।
यस्मिन् सत्यञ्च धर्मश्च सशुचिस्स च ब्राह्मणः ।।393।।

28. किं ते जटाभिर्दुमेध ! किं तेऽजिनशाट्या?।
अभ्यन्तरं ते गहनं बाह्यं परिमार्जयसि ।।394।।

29. पांशुकूलधरं जन्तुं कृशं धमनिसंस्तृतम् ।
एकं वने ध्यायन्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ।।395।।

हिन्दी भावानुवाद

26. दिन में सूर्य तपता है, रात में चन्द्रमा चमकता है। युद्ध के लिए सदैव तैयार क्षत्रिय तपता है और ध्यान में निरत ब्राह्मण तपता है। किन्तु भगवान् बुद्ध अपने तेज से रात–दिन सदैव तपते रहते हैं। ।387।।

27. न तो जटाओं से, न गोत्र से और न ही जाति से कोई ब्राह्मण होता है। जिस मनुष्य में सत्य है,धर्म है, वही पवित्र है और वही ब्राह्मण है।।393।।

28. अरे कुबुद्धे! तेरी जटाओं और मृगचर्म से क्या लाभ? तुम्हारा अन्तः करण तो गहरा काला है और तुम केवल अपने को बाहर से संवारते हो।।394।।

29. धूलधूसरित, कृशकाय और जिसकी सारी धमनियां फैली हुई दिखाई दे रही हैं – ऐसा मनुष्य, एकाकी, वन में ध्यानमग्न जो है उसे मैं ब्राह्मण कहता (मानता) हूँ।।395।।

टिप्पणी –

'धम्मपद', यमकवग्ग, चित्त्वर्ग, पुप्फवग्ग और छब्बीस वर्गों में विभक्त है। यह इस संग्रह पाठ में धम्मपद के इन्हीं वर्गों से उद्धृत उपयोगी अर्थवाली महत्त्वपूर्ण गाथायें संकलित की गई हैं। गाथा क्रम 4 – पठविं अधिसेस्सवि– पृथिवीम् अधिशेष्यते। 'अधि' के योग से 'पठविं' में दुतिया विभत्ति। अधि + शी,लृट् लकार,प्र.पु., एक वचन। पृथिवी पर (निश्चेष्ट,निष्प्राण होकर) पड़ जायेगा। कलिङ्गरं– कलिङ्गरम् । 'कलिङ्गर' शब्द संस्कृत कोश में प्राप्त नहीं हैं। 'कडङ्गर' यथाकथञ्चित् मिलता है जिसका अर्थ है, सूखा गोबर या कण्डा। यद्यपि वह निरर्थक नहीं होता तथापि इधर–उधर पड़ा रहता है। 'निरत्थं व' का आशय निःसार, बेकार, फालतू आदि से है। प्राणवान् शरीर जैसा उपयोगी है, वैसा निष्प्राण शरीर तो नहीं । गा. क्र.–5 अहेठयं – अ–हेडमानः । अ+हेड्+धञ् – अहेडः+ शान च् (मानो) – अहेउमानः । अवहेलना या तिरस्कार न करता हुआ। मुनि (बौद्धभिक्षु) की ग्रामचर्या उपवन में भ्रमर की भाँति निर्लिप्ततया होनी चाहिए। गाथा क्र. 10 – सङ्गामजुत्तमो– सङ्गामजिदुत्तमः । सङ्ग्रामजित् + उत्तमः। सङ्ग्रामं जयति इति सङ्ग्रामजित्, तेषु तेषां वा उत्तमः सङ्ग्रामविजयी वीरों में सर्वश्रेष्ठ । प्र.वि., एक वचन। गाथा का भाव है कि आत्मविजयी ही सर्वश्रेष्ठ योद्धा होता है। गाथा क्र. 13 – चत्तारि अरियसच्चानि – चत्वारि आर्यसत्यानि । बौद्ध धर्म दर्शन में चार आर्यसत्यों का सिद्धान्त महत्वपूर्ण है। ये चार आर्यसत्य है। – दुःख, दुःखसमुदा,दुःखनिरोध और दुःखनिरोधगामिनी पतिपद् । आर्य का अर्थ है अर्हत्। अहेत् अर्थात् भगवान् बुद्ध द्वारा दृष्ट एवं प्रतिपादित होने के कारण ही इन्हें 'आर्यसत्य' कहा जाता है। दुःखादि चारों आर्यसत्य तथा अष्टाङ्गिक

मार्ग– ये बौद्ध दर्शन के पारिमाणिक शब्द हैं और इनकी व्याख्या विस्तृत होने से तथा प्रकृत में उपयोगी न होने से विस्तार नहीं किया जा रहा है। गाथा क्र. 22–23 – संखारा – संस्काराः । 'संखार' बौद्धदर्शन क पारिभाषिक शब्द है। और इसका अर्थ है – हेतु और प्रत्यय से उत्पन्न संस्कार अर्थात् जो मानव निर्मित हैं। ये संस्कार अनित्य हैं। शरीर स्वयं में अनित्य है। अतः शरीर धर्म रूप संस्कार भी अनित्य हैं। यहॉ वर्णित 'संस्कार' गर्भाधानादि षोऽश संस्कारों से भिन्न है। गाथा क्र. 24 – धम्मा= धर्माः। यहॉ 'धर्म' का अर्थ है। नाम–रूप। यह नाम और रूप भी अनित्य होता है। यह 'धर्म', सार्वभौम सत्य, सदाचार आदि रूप 'धर्म' से सर्वथा भिन्न है। नाम – रूप अर्थ लेने पर ही 'धर्म' की अनित्यता सङ्गत होगी।

सारांश

इकाई 2 के अन्तर्गत पालि साहित्य की प्रतिनिधि रचनाओं में से चयन कर पॉच पाठों का संकलन प्रस्तुत किया गया है। वे पॉच पाठ हैं – बावेरुजातकं, मायादवियासुपिनं, महाभिनिक्खमनं, महापरिनिब्बानसुत्तं और धम्मपदसंगहो। बावेरुजातकं में बोधिसत्त्व के मोर योनि में उत्पन्न होने की कथा है कि कुछ व्यापारी बावेरुराष्ट्र में, जहॉ कोई पक्षी न था, पहली बार एक कौआ लेकर गये। वहॉ के लोग कौवे पर मुग्ध होकर उसे मुॅहमॉगा दाम देकर खरीद लिये। दूसरी बार व्यापारी एक मोर लेकर गये। व्यापारियों ने इसे भी वहॉ के लोगों को मुॅहमॉगा दाम लेकर दे दिया। मोर के गुणों से रीझकर बावेरुराष्ट्र के लोगों ने कौवे की उपेक्षा की और भूखा प्यासा कौवा मलिन स्थान में चला गया।

'मायादेवियासुपिनं' में महारानी मायादेवी के गर्भ में बुद्ध के प्रविष्ट होने से पूर्व, उनके द्वारा देखे गये स्वप्न का वृत्तांत है।

'महाभिनिक्खमनं' में राजकुमार सिद्धार्थ के गृहत्याग की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है।

'महापरिनिब्बानसुत्तं' में भगवान् शास्ता (तथागत) द्वारा आनन्द आदि प्रमुख शिष्यों को भिक्षुसंघ के व्यवहारके सम्बन्ध में बताया गया है। यह भगवान् बुद्ध का अन्तिम उपदेश है। अन्ततः शास्ता के महापरिनिर्वाण की स्थिति का वर्णन किया गया है।

'धम्मपदसंगहो' में 'धम्मपद' से शिक्षाप्रद नीतिपरक तीस गाथाओं को उद्धृत कर संकलित किया गया है।

प्रश्न खण्ड – क व्याख्यात्मक प्रश्न

1. अधोलिखित का हिन्दी भावानुवाद कीजिए –

क. आगतागता रट्ठवासिनो ------ लाभग्गयसग्गप्पत्तो अहोसि।

ख. चत्तारो किर नं महाराजानो ----- निपज्जापेसुं

ग. बोधिसत्तो पि खो छन्नं -------- पासादतलतो ओतरि ।

घ. अथ खो आयस्मा आनन्दो ------ सम्बोधि परायणो' ति।

ङ. यथा अगारं सुच्छन्नं -------- समतिविज्झति ।

2. अधोलिखित का संस्कृत रूपान्तर प्रस्तुत कीजिए।

क. एतं खो सरणं खेमं -------- पमुच्चति ।।

ख. पंसुकूलधरं जन्तु -------- ब्रूमि ब्राह्मणं।।

ग. अनिच्चा बत संखारा --------- सुखो' ति ।।

घ. निब्बुता नून सा माता ---------- पती' ति ।।

खण्ड– ख टिप्पणात्मक प्रश्न

1. 'बावेरुजातकं' का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

2. 'बावेरुजातकं' में सन्निहित शिक्षा प्रस्तुत कीजिए।

3. 'मायादेवियासुपिनं' को संक्षेप में हिन्दी में प्रस्तुत कीजिए।

4. सिद्धार्थ गौतम के महामिनिष्क्रमण की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।

5. 'महापरिब्बानसुत्तं' के आधार पर भिक्षुसंघ के आचार का वर्णन कीजिए।

6. धम्मपद की कुछ गाथाओं का संकेत करते हुए उनका आशय प्रकाशित कीजिए।

खण्ड ग वस्तुनिष्ठात्मक प्रश्न

1. बोधिसत्त्व के मयूरयोनि में उत्पन्न होने पर वाराणसी में राज्य करते थे–

क. सोमदत्त, ख. ब्रह्मदत्त,

ग. प्रभुदत्त, घ. शिवदत्त।

2. व्यापारियों ने मयूर को कितने कार्षापण में बेचा?

क. एक सौ, ख. पॉच सौ,

ग. एक हजार, घ. डेढ़ हजार ।

3. महारानी मायादेवी को पलंग सहित कितने महाराजाओं ने उठाया–

क. चार, ख. दो,

ग. छः घ. आठ।

4. कृशागौतमी थी –

क. शूद्रकन्या, ख. ब्राह्मणकन्या,

Notes

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAST-102

पाली, प्राकृत अपभ्रंश तथा भाषा-विज्ञान

खण्ड

2

प्राकृत एवं अपभ्रंश

इकाई -3 91

प्राकृत साहित्य का परिचय

इकाई -4 123

प्राकृत पाठ

इकाई -5 159

अपभ्रंश साहित्य परिचय एवं पाठ

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

पाठ्य-सामग्री निर्धारण समिति

प्रो. पी0डी0 सिंह	आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रो. जी0 आर0 पाण्डे	आचार्य, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ
प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी	आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रो. सोमनाथ नेने	आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रो. यू0 पी0 सिंह	आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रो. आर0 सी0 पाण्डा	आचार्य, विद्याधर्म विज्ञान संकाय (बी0एच0यू0)
डॉ0 राममूर्ति चतुर्वेदी	रीडर, काशी विद्यापीठ
डॉ0 अच्छे लाल	प्रवक्ता, संस्कृत, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

सम्पादक

प्रो0 मुरली मनोहर पाठक	आचार्य, संस्कृत विभाग, पं0 दीनदयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर
डॉ0 राजेश्वर शास्त्री मुसलगांवकर	विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

लेखक

प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी	आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नही है।

प्रकाशक- उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से विनय कुमार , कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित वर्ष - 2023.

मुद्रक - के0 सी0 प्रिटिंग एण्ड एलाइड वर्क्स , पंचवटी , मथुरा - 281003.

खण्ड- परिचय

द्वितीय खण्ड में तीन इकाई है। इकाई तीन में प्राकृत भाषा की व्युत्पति, उत्पत्ति, तथा विकास और विशेषताओं का वर्णन किया गया है। प्राकृत साहित्य एवं प्राकृत व्याकरण का सामान्य वर्णन किया गया है। इकाई चार में प्राकृत पाठों का सामान्य विवेचन किया गया है। इकाई पाँच में अपभ्रंश साहित्य का तथा पाठों का सामान्य परिचय दिया गया है।

पाठ्यक्रम-परिचय

इस पाठ्यक्रम में तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में दो इकाइयाँ हैं। प्रथम इकाई में पालि भाषा की व्युत्पत्ति, उत्पत्ति, विकास और विशेष्ताएँ, पालि साहित्य का सामान्य परिचय तथा पालि व्याकरण का सामान्य परिचय दिया गया है। द्वितीय इकाई में पालि-पाठ का परिचय है। खण्ड दो में तीन इकाइयाँ हैं। इसमें प्राकृत एवं अपभ्रंश का परिचय है। इकाई तीन में प्राकृत साहित्य का सामान्य परिचय दिया गया है। इकाई चार में प्राकृत पाठ का सामान्य परिचय दिया गया है। इकाई पांच में अपभ्रंश साहित्य का सामान्य परिचय दिया गया है।

खण्ड तीन में चार इकाईयाँ हैं। इकाई छह में भाषा-विज्ञान की उत्पत्ति, विकास एवं विकास का सामान्य परिचय दिया गया है। इकाई सात में ध्वनि विज्ञान एवं पद विज्ञान का सामान्य परिचय दिया गया है। इकाई आठ में वाक्य एवं अर्थ विज्ञान का सामान्य परिचय दिया गया है। इकाई नौ में प्रमुख भाषा शास्त्रियों का सामान्य परिचय दिया गया है।

खण्ड–2

प्राकृत एवं अपभ्रंश

इकाई –03 प्राकृत साहित्य का परिचय

3.1 प्राकृतभाषा : व्युत्पत्ति, उत्पत्ति, विकास और विशेषताएँ

3.2 प्राकृत–साहित्य : सामान्य परिचय

3.3 प्राकृत–व्याकरण

3.3.1 वर्णमाला

3.3.2 सन्धि, प्रत्यय, समास और कारक,

3.3.3 शब्दरूप

3.3.4 धातुरूप

इकाई–04 प्राकृत पाठ

4.1 गाहासत्तसई

4.2 रावणवहो

4.3 कर्पूरमञ्जरी

इकाई –05 अपभ्रंश साहित्य परिचय एवं पाठ

5.1 अपभ्रंश भाषा और साहित्य

5.2 अपभ्रंश का संक्षिप्त व्याकरण

5.3 पाठ सञ्चय –

5.3.1 अपभ्रंश मुक्तक संग्रहः

5.3.2 सन्देशरासकम्

खण्ड –2

इकाई– 3– प्राकृतसञ्चयः

3.1 प्रस्तावना –

पालिभाषा के समान ही प्राकृत भाषा भी मध्यकालिक आर्य भाषा के अन्तर्गत परिगणित है। इसके अनेक भेद हैं। संस्कृत यदि शिष्टजन की भाषा है तो प्राकृत सामान्य जन की। संस्कृत नाटकों में यह संवादों में समानान्तर रूप से प्रयुक्त है। इसके अतिरिक्त प्राकृत में विरचित विपुल साहित्य उपलब्ध होता है। संस्कृत का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों को प्राकृत भाषा का ज्ञान होना चाहिए क्योंकि बिना प्राकृत भाषा के ज्ञान के संस्कृतसाहित्य का ज्ञान अधूरा है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने भी अपने काव्य शास्त्रीय ग्रन्तों में प्राकृतसाहित्य का पर्याप्त उपयोग किया है और उदाहरणों के रूप में प्राकृत भाषा की चुनी हुई उत्तम गाथाएँ प्रयुक्त की हैं।

इन्हीं बातों को दृष्टि में रखकर भारतीय विश्वविद्यालयों के संस्कृत परास्नातक पाठ्यक्रम में भाषा–विज्ञान के साथ प्राकृतभाषा के अध्ययन के महत्त्व को स्वीकार करते हुए उसे भी समुचित स्थान दिया गया है। एतदर्थ इसका एक संतुलित पाठ्यक्रम सन्निविष्ट किया गया है।

3.2 उद्देश्य –

इस द्वितीय खण्ड अर्थात् इकाई 3 और 4 का अध्ययन करने के पश्चात् आप–

1. 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति और प्राकृतभाषा की उत्पत्ति जान सकेंगे।
2. प्राकृत भाषा के विकास से परिचित हो सकेंगे।
3. प्राकृत भाषा में निबद्ध प्रचुर साहित्य (के प्रमुख ग्रन्थों) का एक सामान्य ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. प्राकृत भाषा के व्याकरण का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
5. प्राकृतभाषा के व्याकरण का अभ्यास करने पर आप स्वयं प्राकृत भाषा का प्रारम्भिक प्रयोग कर सकेंगे।
6. प्राकृतभाषा के पाठों को पढ़ने तथा अर्थ बोध करने में समर्थ हो सकेंगे। संस्कृतच्छाया बनाने और समझने में सुविधा अनुभव करेंगे।
7. इकाई 4 में संगृहीत पाठों का अध्ययन करने के पश्चात् प्राकृत भाषा की साहित्यिक प्रवृत्तियों से सुपरिचित होंगे।
8. तत्कालीन भारत की संस्कृति का भी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

3.3 प्राकृत भाषा – व्युत्पत्ति,उत्पत्ति, विकास और विशेषताएं –

'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति के समान ही 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भी अनेक मत पाये जाते हैं। जब हम संस्कृत भाषा के सन्दर्भ में 'संस्कृत' शब्द पर विचार करते हैं तो यह कहते हैं कि जिसे हम संस्कार करने के पश्चात् प्राप्त करते हैं, वह 'संस्कृत' है। अब यह प्रश्न होता है कि वह कौन भाषा है या थी जिसका संस्कार किया गया। इसके उत्तर में 'प्राक् + कृतम् – प्राकृतम् ' व्युत्पत्ति के आधार पर प्राकृत भाषा संस्कृत भाषा से पूर्व जान पड़ती है। किन्तु अधिकांश आचार्य 'प्राकृत' शब्द की जो व्युत्पत्ति करते हैं, उसके मूल में 'संस्कृत' को मानते हैं। प्राकृत का व्याकरण लिखने वाले प्रायः सभी आचार्यों ने इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाते हुए 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति की है –

(1) प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं तत आगतं वा प्राकृतम्। (हेमचन्द्राचार्य)

(2) प्रकृतिः संस्कृतं तत्रभत्वात् प्राकृतं स्मृतम्। (प्राकृतसर्वस्वकार)

(3) प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भवं प्राकृतमुच्यते (प्राकृतसर्वस्वकार)

(4) प्राकृतस्य तु स्वयमेव संस्कृतं योनिः (प्राकृतसंजीवनीकार)

(5) प्रकृतेः संस्कृतायास्तु विकृतिःप्राकृती मता।(षड्भाषाचन्द्रिकार)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'प्राकृत' के सम्बन्ध में दो अवधारणायें प्रचलित हैं। पहली अवधारणा के अनुसार, प्राकृत से संस्कृत और दूसरी के अनुसार, संस्कृत से प्राकृत का उद्भव हुआ। व्युत्पत्ति के आधार पर इन दोनों भाषाओं की उत्पत्ति का सिद्धान्त, दोनों ही दृष्टियों से मान्य हो सकता है।लोक को इस विषय में प्रमाण मानना चाहिए। उदाहरण के रूप हम किसी 'भवन' को ले सकते हैं। पहले उसका मात्र ढॉचा खड़ा होता है। फिर उसका संस्कार होता है और कालान्तर में उसका निरन्तर संरक्षण करने के बावजूद वह फिर जर्जर हो जाता है। इस तरह जैसे भवन से पूर्व उसका मात्र ढांचा और बाद में भी जर्जर दशा में विकृत रूप, उसी तरह संस्कृत के पूर्व भी प्राकृत और बाद में भी प्राकृत– ऐसी स्थिति को स्वीकार करने में कोई हानि नहीं होनी चाहिए। यही कारण है प्राकृत के संस्कारित रूप को संस्कृत के विकृत रूप को प्राकृत कहा गया। वस्तुस्थिति ही ऐसी है, इसमें कोई संशय नहीं होना चाहिए और हमें उन दोनों वास्तविकताओं को स्वीकार करना चाहिए।

यहॉ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि आज तक भाषा की उत्पत्ति का कोई सर्वमान्य एक निश्चित सिद्धान्त स्थापित नहीं किया जा सका है। अतः इदमित्थं यह कहना असम्भव है कि कोई भाषा अस्तित्व में कैसे आई? हॉ, भाषाओं के पूर्वापर के सम्बन्ध में विचार कर, उसका क्रम निश्चय किया

जा सकता है यदि हम आर्यभाषाओं के इतिहास का अवलोकन करें तो पायेंगे कि संस्कृत और प्राकृत दोनो ही भाषाओं का लोक में समानान्तर व्यवहार होता था। संस्कृत और प्राकृत का प्रयोग साथ साथ ठीक वैसे ही होता रहा होगा, जैसे आज हिन्दी की खड़ी बोली और ठेठ बोली का। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं का प्रयोग साथ साथ होता है। हॉ,वहॉ प्रयोग की दृष्टि से पात्रों का निर्धारण अवश्य किया गया है किन्तु इसमें सन्देह नही कि सारे पात्र और सम्पूर्ण प्रेक्षक मण्डल दोनों ही भाषाओं को अच्छी तरह समझते हैं।

प्राकृत भाषा की प्रवृत्ति वैदिक संस्कृत में प्राप्त होती है। यथा –

अ. प्राकृत भाषा में संयुक्त वर्ण वाले शब्दों में, कहीं कहीं एक व्यंजन का लोप होकर पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर का दीर्घ हो जाता है। जैसे –

दुर्लभः > दुल्लह > दूलह । वैदिक संस्कृत में भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं – दुर्लभः > दूलहः (ऋग्वेद, 4.9.8)।

ब. प्राकृत भाषा में 'घ' का 'ह' हो जाता है –बधिर बहिर, व्यांध बाह। वैदिक संस्कृत में भी ऐसे शब्द मिलते हैं – प्रतिसंधाय > प्रतिसंहाय (गोपथ ब्राह्मण, 2.4)

स. संस्कृत के व्यंजनान्त पदों के अन्त्य व्यंजन (हलन्त) का प्राकृत भाषा में लोप हो जाता है – तावत् > ताव, यशस् > जस । वैदिक संस्कृत में भी ऐसे प्रयोग देखे जा सकते हैं – पश्चात् > पश्चा, (अथर्ववेद, 10.4.11), उच्चात् > उच्चा (तैत्तिरीय संहिता, 2.3.14) ।

उपर्युक्त बिन्दुओं के आलोक में यह अनुमान किया जा सकता है कि वैदिक भाषा और प्राकृत भाषा की मूल भाषा सम्भवतः एक ही रही होगी। वह भाषा प्राकृत जन (जन सामान्य) की भाषा रही होगी। इसलिए भी हम इस भाषा को प्राकृत भाषा कहते हैं। इसके अतिरिक्त, प्राचीन आर्य भाषाओं मे हम पालि भाषा को वैदिक भाषा के सर्वाधिक समीप पाते हैं। प्राकृत को हम पालि भाषा से विकसित मान सकते हैं। यद्यपि भाषाओं के विकास को हम काल की दृष्टि से कोई एक निश्चित विभाजक रेखा खींच कर अलग अलग नहीं कर सकते तथापि यदि हम वैदिक भाषा को प्रथम स्थानीय मानकर चलें तो द्वितीय स्थानीय मूल भाषा पालि को मान सकते हैं। वस्तुतः प्राकृत की प्रथम अवस्था को पालि मानना उचित होगा। आगे चलकर प्राकृत के अनेक व्यवहारगत भेद हो गये। ये भेद विभिन्न स्थानों एवं कारकों के आधार पर किये गये क्योंकि अलग अलग स्थानों में बोली जाने के कारण उनमें उच्चारणगत अन्तर आ गया जैसा कि आज हम हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में देखते है। – मैथिल, भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बुन्देलखण्डी, छत्तीसगढ़ी आदि। अब इनमें से कुछ

इतनी समृद्ध हो गयी हैं कि अलग स्वतंत्र भाषा के रूप में प्रतिष्ठित की जाने लगी है। इसी प्रकार, भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में सात नाम प्राकृत भाषा के गिनाये गये हैं –

मागध्यवन्तिजा प्राच्या शौरसेन्यर्धमागधी।

वाह्लीका दाक्षिणात्यांश्च सप्तभाषा प्रकीर्तिता।। (17.48)

अर्थात्, मागधी, अवन्तिजा, प्राच्या, शौरसेनी, अर्धमागधी, वाह्लीका और दाक्षिणात्या। परवर्ती काल में इनमें से कुछ के नामकरण परिवर्तित हुए और संख्या में भी घट बढ़ हुई। प्राकृत भाषा के मान्य सर्वप्रमुख वैयाकरण वररूचि ने चार ही प्राकृत भाषाएं गिनाई हैं– महाराष्ट्री, पैशाची, शौरसेनी और मागधी। उन्होंने 'प्राकृत प्रकाश' में प्रथम आठ परिच्छेदों में महाराष्ट्री प्राकृत का पर्याप्त विवेचन किया है।

संस्कृत नाटकों और प्राकृत साहित्य का व्यापक अनुशीलन करने पर वर्तमान कारण में भाषाविदों ने प्राकृत के दस भेद स्थिर किये हैं – 1. पालि, 2. पैशाची, 3. चूलिका पैशाची, 4. महाराष्ट्री, 5. मागधी, 6. अर्धमागधी, 7. जैन मागधी, 8. शौर सेनी, 9. अशोकलिपि और 10. अपभ्रंश ।

इन सब का संक्षिप्त विवरण क्रमशः दिया जा रहा है –

1. पालि– इस भाषा का विस्तृत परिचय पूर्वतः इकाई 1 में दियाय जा चुका है।

2. पैशाची – यह विरल और सुक्लिष्ट प्राकृत है। ऐसा माना जाता है कि कविवर गुणाढ्य ने 'बृहत्कथा' का निर्माण पैशाची प्राकृत में ही किया था– 'भूतभाषामयीं प्राहुरद्‌मुतार्थां बृहत्कथाम्।' यहाँ पैशाची के लिए 'भूतभाषा' का प्रयोग किया गया है। मूल बृहत्कथा अब अनुपलब्ध है। भरतमुनि ने जिन प्राकृत भाषाओं की गणना करायी है उनमें पैशाची का उल्लेख नहीं है। किन्तु आचार्य रूद्रट (काव्यालंकार) और केशव मिश्र (अलंकार शेखर) ने पैशाची का उल्लेख किया है। वाग्भट ने (वाग्मयलंकार) 'संस्कृत–प्राकृतं तस्यापभ्रंशो भूतभाषितम्' (2.1) कहकर पैशाची प्राकृत (भूतभाषित) का संकेत किया है। प्राकृत भाषा के व्याकरण ग्रन्थों में पैशाची का उल्लेख मिलता है। 'मोहपराजयम्' नामक संस्कृत नाटक में पैशाचीभाषा का प्रयोग प्राप्त होता है । शौरसेनी प्राकृत और पैशाची प्राकृत में कुछ ही अन्तर प्राप्त होता है।

3. चूलिका पैशाची – प्राकृत के प्रायःअधिकांश वैयाकरणों ने 'चूलिका पैशाची' नाम से पैशाची प्राकृत का कोई भिन्न रूप नहीं माना है। केवल आचार्य हेमचन्द्र और पं. लक्ष्मीधर ही चूलिका पैशाची का अलग से उल्लेख करते हैं। हो सकता है यह पैशाची की कोई 'स्थानीय बोली' रही हो।

काव्यानुशासन, कुमारपालचरित और हम्मीरमदमर्दन में इसका स्वल्प प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। चूलिका पैशाची में 'र' के स्थान पर वैकल्पिक 'ल' होता है। यथा – दरिद्द > दालिद्द, रूद्र > लुद्द । साथ ही, वर्ग के तृतीय और चतुर्थ वर्ण के स्थान पर क्रमशः प्रथम और द्वितीय वर्ण का प्रयोग होता है– राजा > राचा, नगर > नकर, वग्ध > वक्ख, तडाग > तटाक आदि।

4. **महाराष्ट्री** – आचार्य हेमचन्द्र ने महाराष्ट्री का उल्लेख नहीं किया है। सम्भवतः भरतमुनि ने महाराष्ट्री को ही 'दाक्षिणात्या' कहा है। आचार्य दण्डी ने 'काव्यादर्श' में महाराष्ट्री को 'प्रकृष्ट प्राकृत' कहकर इस भाषा की प्रशंसा की है – 'महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः ।

सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादियन्मयम्।।' (1.34)

दण्डी का यह कथन यथार्थ है। महाराष्ट्री प्राकृत में उच्चकोटि का विपुल साहित्य लिखा गया हैं । सेतुबन्ध,गडउवहो, कुमार पाल चरित, गाहासत्तसई आदि साहित्य ग्रन्थ इसी भाषा में प्रमित है। संस्कृत नाटकों में सर्वाधिक प्रयोग महाराष्ट्री प्राकृत का ही हुआ है। महाराष्ट्री अपने उत्कर्ष के कारण प्राकृत भाषा का पर्याय ही बन गया। महाराष्ट्री प्राकृत से ही वर्तमान मराठी भाषा का उद्भव माना जाता है। यह एक समृद्ध भाषा है।

5. मागधी – मगध प्रान्त की भाषा को 'भागधी' कहा गया है। सम्राट अशोक के शिलालेखों में सर्वप्राचीन उदाहरण इस भाषा के प्राप्त होते हैं। अध ोलिखित गाथा में मागधी को बुद्धवचन की मूलभाषा कहा गया है –

'सा मागधी मूलभाषा नरायायादिकप्पिका।

ब्राह्मणा चुस्सुतालापा सम्बुद्धा चापि भासरे ।।

अन्य प्रादेशिक भाषाओं के मिश्रण से यह मागधी पालि भाषा के रूप में विकसित हुई। सम्राट अशोक ने मागधी को अपनी राजभाषा बनाया और अपने शिलालेखों के माध्यम से इस भाषा को मगध से बाहर भी फैलाया।

प्राकृत के वैयाकरणों ने मागधी भाषा के लक्षण उदाहरण दिये हैं । अश्वघोष, भास और कालिदासादि के नाटकों में तथा मृच्छकटिक प्रकरण में मागधी प्राकृत का प्रयोग पाया जाता है। भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में मागधी भाषा का उल्लेख किया है –'मागधी तु नरेन्द्राणामन्तःपुरनिवासिनाम्' (17.50) । कुछ वैयाकरणों ने मागधी की उत्पत्ति शौरसेनी से कही है। मागधी के तीन रूप मिलते हैं – शाबरी, शकारी और चाण्डाली।

6. **अर्धमागधी** – इसके नाम से आयाततः यह अर्थ निकलता है कि जो आधे मगध प्रान्त की भाषा हो वह अर्धमागधी है। जैनाचार्य श्री जिनदास गणि महत्तर ने अपने 'निशीथचूर्णि' नामक ग्रन्थ में अपना यही अभिप्राय प्रकाशित

किया है – 'मगहद्धविसयभाषानिबंद्धं अद्धभाग हैं' मगधार्द्धविषयभाषानिबद्धं अर्द्धमाग धम्) अर्थात् मगध के आधे भाग की भाषा में विरचित होने से (प्राचीन सूत्र को) अर्धमागध कहते हैं । इसी आधार पर कुछ विद्वानों ने 'अर्धे मागध्याः' – ऐसी व्युत्पत्ति करके अर्धमागधी की उत्पत्ति मागधी भाषा से मानी है।

जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर ने अपना धर्मोपदेश अर्धमागधी भाषा में दिया है। उनके समकालिक गणधर श्रीसुधर्मस्वामी ने अर्धमागधी भाषा में ही आचारांग सूत्रग्रन्थों की रचना की थी। वलभी और मथुरा में भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् प्रायः तीन सौ वर्ष पश्चात् (200 ई.पू.के आस पास) जैन धर्म के आदेशों को लिपिबद्ध करने हेतु मुनियों के सम्मेलन हुये थे। इस भाषा में देश के विभिन्न भागों से आये हुए मुनियों की भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा। अर्धमागधी को 'ऋषिभाषिता' या 'आर्यभाषा' भी कहा गया है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण में आर्य प्राकृत के लक्षण–उदाहरण दिये हैं। ग्रियर्सन ने अर्धमागधी के शूरसेन और मगध के मध्यवर्ती देश (अयोध्या के समीपवर्ती) की भाषा माना है। उनका यह भी मानना है कि पूर्वी हिन्दी इसी अर्धमागधी से उत्पन्न हुई है।

7. **जैन महाराष्ट्री** – प्राकृत भाषा के प्राचीन वैयाकरणों ने जैन महाराष्ट्री नाम से कोई पृथक प्राकृत भाषा नहीं मानी है। श्वेताम्बर सम्प्रादाय के जैनाचार्यों द्वारा विरचित ग्रन्थों की प्राकृत भाषा को जैन महाराष्ट्री ' की संज्ञा दे दी गयी है। इसमें तीर्थंकरों और जैन मुनियों की चरित्रकथाओ के अतिरिक्त विविध शास्त्रीय विषयों एवं साहित्यिक रचनाओं का विशाल भण्डार है। जैन महाराष्ट्री के कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं – पयन्ना ग्रन्थ, पऽमचरिम, उपदेश माला आदि।

8. **शौरसेनी** – शूरसेन देश (मथुरा प्रदेश) की भाषा को शौर सेनी कहा गया। भरत मुनि ने जिन प्राकृत भाषाओं का उल्लेख नाट्यशास्त्र में किया है, उनमें शौरसेनी भी है। संस्कृत नाटकों के गद्यांश प्रायः शौरसेनी प्राकृत में ही है। प्राकृत वैयाकरणों ने शौर सेनी प्राकृत के लक्षण उदाहरण दिये है।

9. **अशोक लिपि** – सम्राट अशोक द्वारा बौद्धधर्म के उपदेशों के प्रचार प्रसार हेतु खुदवाये गये शिलालेखों की प्राकृत को अशोक लिपि कहा गया है। यह प्राकृत प्रायः मागधी (अथवा पालि) है।

10. **अपभ्रंश भाषा** – इसका विवरण इकाई 5 में प्रस्तुत किया जायेगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्थानीय विशेषताओं के मिश्रण के कारण तत्रत्स्थानों में बोली जाने के कारण प्राकृत के अनेक भेद हो गये। यद्यपि मूल व्याकरण गत शास्त्रीय संरचना की एकता के बावजूद स्थानगत और प्रयोक्तगत विभिन्नता के कारण प्राकृत का व्यावहारिक स्वरूप भिन्न भिन्न हो गया। यह

प्राकृत की सबसे बड़ी विशेषता है। संस्कृत के समानान्तर प्राकृत भी जनभाषा थी किन्तु संस्कृत नाटकों की प्रवृत्ति का अनुशीलन करने से यह ज्ञात होता है कि समाज के सामान्य लोग व्यवहार में सदैव प्राकृत का प्रयोग करते थे और समाज का उच्च वर्ग संस्कृत का प्रयोग करता था। अतः संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत जनमानस से अधिक जुड़ी हुई थी। कोमल अभिव्यक्तियां प्राकृत में संस्कृत की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी थीं जैसा कि आचार्य कवि राजशेखर की उक्ति – 'परूसा सक्किअबंधा पाउदबन्धो विहोई सुअभारो' (कर्पूरमंजरी सट्टक) से स्पष्ट विदित होता है।

प्राकृत की व्याकरणगत विशेषताओं पर आगे चर्चा की जायेगी।

3.4 प्राकृत का साहित्य : सामान्य परिचय

संस्कृत की ही तरह प्राकृत का साहित्य भी परिभाण में प्रचुर है। यदि हम संस्कृत नाटकों के प्राकृतभाषा में निबद्ध अंशों की ओर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि प्रायः प्रत्येक नाटक का आधा से अधिक कलेवर प्राकृतमय है। स्वतंत्र रूप से प्राकृत भाषा में शास्त्रीय और शास्त्रेतर विरचित ग्रन्थों की संख्या प्रभूत है। संस्कृत भाषा में वैदिक धर्म से सम्बद्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त धर्म, दर्शन, व्याकरण, आयुर्वेदादि विषयों के साथ ही साहित्य के असंख्य ग्रन्थ विरचित हुए । ठीक इसी तरह जैन धर्म से सम्बद्ध प्रायः समग्र साहित्य प्राकृत भाषा में लिखे गये।

प्राकृत भाषा के साहित्य (वाङ्गमय) को हम मुख्यतः दो भागों में विभाजित कर सकते हैं – शास्त्रीय और शास्त्रेतर साहित्य ।

शास्त्रीय साहित्य – जैन–परम्परा के अनुसार, अर्हत् भगवान् ने आगमों का प्रवचन किया (अर्थात् आगमों के अर्थ का व्याख्यान किया) और उनके आधार पर गणधरों ने समुचित सूत्रों की रचना की। इन सूत्र संग्रहों को 'आगम' कहा जाता है। आगमों की संख्या 46 है। ये अधोलिखित हैं –

अंग – 1. आयारांग, 2. सूयगडांग, 3. ठाणांग, 4. समवायांग, 5. वियाहपण्णत्ति (भगवती), 6. नायाधम्मकहाओ, 7. उवासगदसाओ, 8. अतगडदसाओ, 9. अणुत्तरोववाड्पदसाओ, 10. पण्हवागराइं, 11. विवगसूय और 12. दिट्ठिवाय ।

उपांग – अंगों की तरह उपांग भी बारह हैं – 1. ओववाइय, 2. रायपसेणड्य, 3. जीवाभिगम, 4. पन्नवणा, 5. सूरियपण्णति, 6, जंबूदीवपण्णति, 7. चंदपण्णति, 8. निरयावलियाओ, 9. कप्पवडंसियाओ, 10. पुप्फियाओ, 11. पुप्फचूलियाओ और 12. वण्हिदसाओ।

पइन्ना – 1. चउसरण, 2. आउरपच्चाक्खाण, 3. कहापच्चाक्खाण, 4. भत्तपयिण्णा, 5. तदुलवेयालिथ, 6. संथारग, 7. गच्छायार, 8. गिणिजिज्जा, 9. देविन्दत्थव और 10. मरणसमाही।

छेयसुत्त – 1. निसीह, 2. महानिसीह, 3. ववहार, 4. दसासुयक्खंध, (आयारदसाओ) , 5. कप्प और 6. पंचकप्प या जीय कप्प।

मूलसुत्त – 1. उत्तरज्झयण, 2. दसवेयालिस, 3.आवस्मय, 4. पिंडनिज्जुति (अथवा ओहनिज्जुति) ।

उपर्युक्त चौवालीस आगमों के अतिरिक्त, देववाचककृत 'नन्दी' और आर्यरक्षितकृत 'अनुयोगद्वार' –इन दोनों ग्रन्थों की गणना भी आगमों में होती है। ये दोनों अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं। इस प्रकार इन दोनों को मिलाकर कुल 46 आगम हैं।

जैन धर्म में इन आगमों का अत्यन्त महत्त्व है। इस आगम वाङ्मय में प्राचीन जैनपरम्पराएं, धर्मोपदेश की पद्धतियां, आचार–विचार, संयम पालन, रीति रिवाज, लोक कथाएं और अनुश्रुतियां आदि अनेक उपयोगी विषय उल्लिखित हैं जो मुनियों और श्रावकों के लिए धर्म पालन में उपादेय हैं। इनके अध्ययन से उस समय की सामाजिक, धार्मिक , और राजनीतिक दशाओं का ज्ञान होता है। इनके आधार पर जैन धर्म के विकास के विविध आयामों का भी परिज्ञान होता है।

आगम–व्याख्या – साहित्य –

सभी धार्मिक सम्प्रदायों के मूल ग्रन्थों में सन्निहित वस्तु का उपवृंहणं परवर्ती काल में नाना प्रकार से आचार्यों द्वारा किया जाता है। इसी प्रकार जैन धर्म के भी आगम ग्रन्थों पर जैनाचार्यों ने व्याख्यायें लिखीं। व्याख्या का यह क्रम प्रायः ईसा की दूसरी शताब्दी से आरम्भ होकर सोलहवीं शताब्दी तक चला। जैन आचार्यों द्वारा की गयी व्याख्यायें निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, अवचूणि, अवचूरि, टीका, विवरण, वृत्ति, विवृत्ति, दीपिका, विवेचन, व्याख्या,छाया, अक्षरार्थपन्जिका, टब्बा, वचानिका आदि नामों से विपुल मात्रा में उपलब्ध होती है। प्राकृत साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से इनमें से निर्युक्ति, भाष्य,चूर्णि और टीकाएँ प्राकृत भाषावद्ध होने से विशेष महत्वपूर्ण है। आगमों के साथ इन चारों व्यवस्था ग्रन्थों को मिला देने से, इसे 'पन्चांगी साहित्य' कहते हैं।

निज्जुति (निर्युक्ति) – व्याख्या साहित्य में निर्युक्ति का अतीव महत्त्व है। सूत्र प्रतिपादित अर्थों को एक पद्धति विशेष में स्पष्ट करना 'निर्युक्ति'कहा जाता है। यह निर्युक्ति आर्याछन्दोबद्ध प्राकृत गाथाओं में होती है। निर्युक्ति में विषय का स्पष्टतः प्रतिपादन करने के लिए कथानकों, उदाहरणों और

दृष्टान्तों का प्रयोग किया जाता है। निर्युक्ति में भी सांकेतिक और संक्षिप्त विवेचना होता है और इन्हें भी समझने के लिए व्याख्या की अपेक्षा होती है। कुछ प्रमुख निर्युक्तियॉ इस प्रकार हैं –

1. भद्रबाहुसूरिकृत आचारांगसूत्र–निर्युक्ति (356 गाथाएँ)।
2. गणधर इन्द्रभूतिकृत सूत्रकृतांगनिर्युक्ति (205 गाथाएँ) ।
3. भद्रबाहुकृत उत्तराध्ययन निर्युक्ति (559 गाथाएँ) ।
4. भद्रबाहुकृत आवश्यकसूत्रनिर्युक्ति । इस पर माणिक्य शेखरसूरि कृत दीपिका।
5. भद्रबाहुकृत दशवैकालिक निर्युक्ति (371 गाथाएँ) ।
6. भद्रबाहुकृत निशीथनिर्युक्ति, बृहत्कल्पनिर्युक्ति एवं व्यवहार निर्युक्ति
7. भद्रबाहु (चतुर्दश पूर्वधारी) कृत संसक्तिनिर्युक्ति (64 गाथाएँ)

इनके अतिरिक्त भी अनेक निर्युक्ति ग्रन्थ हैं।

भाष्य – निर्युक्ति ग्रन्थों की ही तरह भाष्यग्रन्थ भी मुख्यतः आर्याछन्दों में गाथाशैली में लिखे गये हैं। नामतःभाष्य अवश्य है किन्तु संक्षेप विधि के आश्रय से विरचित है। ये प्रायः अर्धमागधी भाषा में लिखे गये हैं। मुख्य भाष्य हैं – निशीथभाष्य, व्यवहारभाष्य, बृहत्कल्पभाष्य, उत्तराध्ययन भाष्य, जीतकल्प भाष्य, आवश्यक भाष्य आदि।

चूर्णि – निर्युक्ति और भाष्य के समान ही जैन आगम साहित्य में चूर्णियों का स्थान भी महत्वपूर्ण है। इनमें केवल प्राकृत ही नहीं अपितु संस्कृत का भी मिश्रण है। चूर्णि साहित्य गद्यात्मक है। चूर्णियों में विविध विषयों जैसे – रीति रिवाज, पर्व, मेले, दुष्काल, चोर लुटेरे, व्यापार, भोजन और वस्त्राभूषण आदि वर्णन है। लोक कथा और भाषा विज्ञान की दृष्टि से चूर्णि साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा उपयोगी है। अधोलिखित अगम ग्रन्थों पर चूर्णियां उपलब्ध है–

आचारांग, सूत्रकृतांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, कल्प, व्यवहारनिशीथ, पंचकल्प, दशाश्रुतस्कन्ध, जीतकल्प, जीवभिगम, जम्बूद्वीपपरिज्ञप्ति, उत्तराध्ययन, आवश्यक, दशवैकालिक, नन्दी और अनुयोगद्वार – कुल 15 ग्रन्थों के चूर्णिग्रन्थ।

टीका – प्राकृत में निबद्ध आगम सिद्धान्तों को समझने समझाने के उद्देश्य से आचार्यों ने व्याख्यात्मक टीकाएँ संस्कृत में लिखीं। टीकाओं के कुछ कथा सम्बद्ध अंश प्राकृत में भी हैं। ये टीकाएँ वलभी में हुए मुनियों के सम्मेलन, जिसमें आगमों को लिपिबद्ध किया गया था, से पूर्व ही आगमों पर लिखी जानी प्रारम्भ हो गयी थी। टीकाकारों में हरिभद्रसूरि (705 से 775 ई.) का नाम

प्रमुख रूप से प्रसिद्ध है। इन टीकाओंने प्राकृत भाषा के चरित्र एवं टीका साहित्य के साथ ही शास्त्रीय एवं धार्मिक साहित्य के विकास में पर्याप्त योगदान किया है।

दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुसार आगमों के दो भेद हैं – अंगबाह्य और अंगप्रविष्ट । द्वादशांग आगम नष्ट हो चुका है, दृष्टिवाद का ही कुछ भाग अवशिष्ट है जो षट्खंडागम के रूप में विद्यमान है। यह एक महत्त्वपूर्ण और विशालकाय ग्रन्थ है। इसके छः खण्डों के नाम इस प्रकार हैं –जीवट्ठाण, खुदाबन्ध या छुल्लकबन्ध, बन्धस्वामित्वविचय, वेदना, वर्गणा और महाबन्ध। दिगम्बर सम्प्रदाय के आगम चतुर्धा विभक्त हैं –

1. **प्रथमानुयोग** – इसमें पुराणों का परिगणन किया गया है। प्रमुख पुराण हैं – रविषेणकृत पद्मपुराण, जिनसेनकृत हरिवंश पुराण तथा आदिपुराण. गुणभद्र कृत उत्तरपुराण ।

2. **करणानुयोग** – इसमें सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति और जयधवला आते हैं।

3. **द्रव्यानुयोग** –आचार्य कुन्दनप्रणीतग्रन्थ, उपस्वामी का तत्त्वार्थसूत्र और समन्तभद्र की आप्तमीमांसा आदि ग्रन्थ।

4. **चरणानुयोग** – इसके अन्तर्गत मूलाचार, त्रिवर्णाचार और रत्नकरण्डश्रावकाचार का परिगणन है।

भूतबलि ने पुष्पदन्तकृत सूत्रों से समन्वित पञ्चखण्डात्मक ग्रन्थ में 6 हजार सूत्रों का समावेश किया गया और तीन हजार श्लोकों वाले ग्रन्थ महाबन्ध की रचना की । महाबन्ध का ही दूसरा नाम 'महाधवल' है।

कसायपाहुड, तिलोयपण्णति, नियमसार, रयणसार, अस्टपाहुड पञ्चास्तिार आदि ग्रन्थ की जैनागम सिद्धान्तों के ज्ञान के लिए महत्वपूर्ण हैं।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी जैन धर्म दर्शन के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना हुई। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं – प्रवचनसारोद्धार, विशेषावश्यक, सम्मड्पयरण, उत्सुत्रखंडन, धम्मसंगहणी, जीवसमास, विशेषणवती, विंशतिविंशिका, कम्मण्यडि, पंचसंगह, सावयपण्णात्ति, साक्यधम्मविहि, जीवविचार प्रकरण, नवतत्त्व गाथा प्रकरण, विधिमार्गप्रथा आदि।

चरित साहित्य – संस्कृत के पुराणों, रामायण और महाभारत जैसे इतिहास काव्यों की शैली में जैन आचार्य कवियों ने भी अपने अपने सम्प्रदायों के अनुसार, राम, कृष्ण और जैनतीर्थंकरों आदि महापुरूषों के जीवन चरितात्मक काव्यों का प्रणयन किया। चरितसाहित्य में तिरसठ शलाकापुरूषों के चरित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इन ग्रन्थों के नायकों के रूप में चौबीस तीर्थंकर, बारह

चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ प्रतिवासुदेव और नौ बलदेवों को सम्मिलित किया गया है। कुछ प्रमुख चरित काव्य इस प्रकार हैं – पउमचरिअ, जॅबूचरिअ, कण्हचरिअ, महावीर चरिअ, पासनाहचरिअ, सुरसुंदरी चरिअ, सुदंसणा चरिअ आदि।

काव्य एवं महाकाव्य – संस्कृत भाषा के ही समान प्राकृत भाषा में भी खण्डकाव्यों एवं महाकाव्यों की रचना हुई। काव्य साहित्य का प्रणयन प्रथम शताब्दी ई. से ही प्रारम्भ हो गया था। सरसता की दृष्टि से प्राकृतकाव्य उल्लेखनीय है। संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत के काव्यों मेंरस पेशलता अधिक अनुभव की जाती है। क्योंकि जैन कवियों ने श्रृंगार रस के परिपोष पर विशेष यत्न किया। मुक्तक काव्यों की छटा निराली है। 'रसे सारश्चमत्कारः' की सार्थकता इन काव्यों में अच्छी तरह प्रमाणित होती है। क्योंकि कोई एक ही पद्य सहृदय को चमत्कृत करने के लिए पर्याप्त होता है।

कुछ प्रमुख काव्यों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है –

सेतुबन्ध (रावणवहो) – प्राकृत भाषा में निबद्ध सर्वोत्कृष्ट महाकाव्यों में से एक है सेतुबन्ध महाकाव्य। इसका अपरनाम 'दसमुहवहो' भी है। इसके कर्ता प्रवरसेन हैं। बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में सेतुबन्ध की प्रशंसा करते हुए प्रवरसेन का यशोगान किया है–

'कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाताकुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना ।।' 1.

इस महाकाव्य का विभाजन 15 आश्वासों में किया गया है। इसमें वानर सेना के प्रस्थान से आरम्भ कर रावणवध तक की कथा वर्णित है। इस महाकाव्य में अनुप्रास, यमक और श्लेष अलंकारों का सुचारू विन्यास है।

गउडवहो – वाक्यतिराज द्वारा प्रणीत यह महाकाव्य कुलकों में विभक्त है। इसमें 1209 गाथाएँ हैं। इसके नायक यशोवर्मा हैं और इन्हीं की प्रशंसा में यह महाकाव्य लिखा गया है।

कुमारवालचरिय – कलिकमलसर्वज्ञ हेमचन्द्र द्वारा प्रणीत इस ग्रन्थ का नाम 'द्वयाश्रय काव्य' भी है। सोलंकी वंश के मूलराज से लेकर जैनधर्मावलम्बी कुमारपाल तक का इतिहास इस महाकाव्य में 20 सर्गों में वर्णित है। इसे हम शास्त्रकाव्य भी कह सकते हैं। क्योंकि इसका उद्देश्य व्याकरण की शिक्षा देना भी है।

लीलावई – कोऊहल नामक ब्राह्मण कवि ने अपनी पत्नी के आग्रह से इस लीलावई (लीलावती) नामक काव्य की रचना 'मरहट्ठदेसीमासा' में की। इसमें प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन और सिंहलदेश की राजकुमारी लीलावती की

प्रेम कथा का वर्णन है। अनुष्टुप् छन्दों में निबद्ध कुल 1800 गाथाएं है। इसमें मानव पात्रों के साथ ही देवपात्र भी हैं।

कंसवहो – चार सर्गों में विभक्त इस काव्य के233 पद्यों में के संबंध की कथा निबद्ध है। इस काव्य के कर्ता केरल निवासी विष्णुभक्त श्री रामपाणिवाद हैं। श्रीमद्भागवत् की कथा के आधार पर विरचित इस काव्य में महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं शौरसेनी भी है। इस काव्य की रचना 1707 से 1775 ई. के बीच हुई है।

गाहासत्तसई (गाथासप्तशती) – श्रृंगाररसप्रधान यह मुक्तक काव्य 'हाल' की कृति के रूप में प्रसिद्ध है । जैसा कि इसके नाम से ही विदित है कि इसमें सात सौ गाथाएं हैं। वस्तुतः हाल ने इन गाथाओं का संकलन किया है। जो अनेक कवियों और कवियित्रियों की रचनाएँ है। इसमें लोक सम्बद्ध रसम्भिव्यञ्जक गाथायें अत्यन्त मनोरम हैं जो नाना विषयों से सम्बद्ध हैं। हिन्दी की 'बिहारीसतसई' पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

वज्जालग्ग – इस काव्य ग्रन्थ में 95 प्रकरण और 795 गाथाएँ है। यह भी एक कवि की रचना न होना अनेक कवियों के काव्यों का संग्रह है। आर्या छन्दों में निबद्ध इसके प्राकृत पद्यो में धर्म, अर्थ और काम से सम्बद्ध सुभाषित हैं।

उपर्युक्त कुछ उल्लेख काव्यों के अतिरिक्त, हरिविजय, रावणविजय, विषमबाणलीला, गाथा साहस्री, कामदत्ता, महुमहविअअ, उसाजिरुद्ध, सोरिचरित, भृंगसन्देस आदि अनेक काव्य हैं।

कथा–साहित्य – त्राकृत कथा साहित्य का विस्तार प्राचीन जैनागमों और उनके व्याख्या ग्रन्थों में दर्शनीय हैं। ईसा की चौथी शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक प्राकृत भाषा में कथा साहित्य का निर्माण हुआ। इन कथाओं में प्रेम, समाज की समस्यायें, जीवन चित्रण, मन्त्रशास्त्र आदि विविध विषय वर्णित हैं। ये कथायें पर्याप्त मनोरंजक हैं। कथाओं की भाषा मुख्य रूप से महाराष्ट्री है किन्तु संस्कृत और अपभ्रंश के मिश्रण भी मिलते हैं। उल्लेख्य कथा ग्रन्थ अधोलिखित हैं –

तरंगष्ड्कता, तरंगलीला, वसुदेवहिंडी, समराइच्चकता, कुवलयभाषा, णाणपंचमी कता, पाअकता संगत, मलयसुंदरी कता, महीष्मयकता इत्यादि।

रूपक – यद्यपि संस्कृत नाटकों में प्राकृत भाषा का बहुलतया प्रयोग हुआ है तथापि केवल प्राकृत भाषा में भी रूपकों की रचना हुई है। ये रूपक नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से रचनाविधान में 'नाटिका' का अनुसरण करते हैं। विशुद्ध प्राकृत में लिखे गये रूपक को 'सट्टक' कहा जाता है। कर्पूरमंजरी

चन्दलेहा, अनन्तसुन्दरी और सिंगारमंजरी – ये चार सट्टक उपलब्ध और प्रसिद्ध हैं। 'विलासवती' नामक सट्टक का भी उल्लेख मिलता है।

व्याकरण ग्रन्थ – प्राकृत व्याकरण के अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। उपलब्ध व्याकरण ग्रन्थों में वररूचि (सातवीं ई.) का 'प्राकृत प्रकाश' सर्व प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें बारह परिच्छेद हैं। प्रथम नौ परिच्छेदों में महाराष्ट्री प्राकृत, दसवें में पैशाची, ग्यारहवें में मागधी और बारहवें परिच्छेद में शौरसेनी प्राकृत विषयक लक्षण और न्याकरण निबद्ध है। दक्षिणभारत में भी 'प्राकृत प्रकाश' की खूब मान्यता है। इस व्याकरण ग्रन्थ पर अनेक टीकाएं लिखी गयीं।

प्राकृत के सबसे पुराने वैयाकरण 'चंड' कहे जाते हैं किन्तु उनका ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। ग्यारहवीं शताब्दी में होने वाले गुर्जरदेशीय आचार्य हेमचन्द्र ने भी प्राकृत काव्याकरण की रचना की है।

क्रमयीश्वर ने वररूचि के प्राकृत व्याकरण का अनुसरण करते हुए 'संक्षिप्तसार' नामक अपने संस्कृत व्याकरण ग्रन्थ के अष्टम अध्याय में प्राकृत व्याकरण लिखा है।

बारहवीं ई. में बङ्गप्रान्त के आचार्य पुरूषोत्तम ने 'प्राकृतानुशासन' नामक व्याकरण ग्रन्थ लिखा। इसमें बीस अध्याय हैं और इस ग्रन्थ में सभी प्राकृत भेदों के नियम प्रतिपादित किये गये हैं पुरूषोत्तम के ही ग्रन्थ को आधार बनाकर, बंगाल के ही निवासी रामशर्मा तर्कवागीश भट्टाचार्य ने 'प्राकृत कल्पतरू' नामक व्याकरण ग्रन्थ की रचना की है।

उत्कलप्रान्त के मार्कण्डेय ने 'प्राकृतसर्वस्व' की रचना की है। इस व्याकरण ग्रन्थ को, उन्होंने अपने पूर्ववर्ती उपलब्ध सभी प्राकृत व्याकरण ग्रन्थों का अनुशीलन करके बनाया है। प्राकृतभाषा के सभी भेदों के नियम का प्रतिपादन करने के कारण, यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है।

आचार्य हेमचन्द्रकृत 'सिद्धेहमशब्दानुशासन' के आठवें अध्याय में प्राकृत व्याकरण है जिस पर इनकी स्वोपज्ञवृत्ति भी उपलब्ध है। इसकी टीकाएँ भी कई हैं।

इन व्याकरणों के अतिरिक्त लक्ष्मीधर की षड्माषाचन्द्रिका, भिविक्रम का प्राकृतशब्दानुशासन, अप्पय दीक्षित का प्राकृतमणिदीप, रघुनाथ कवि का प्राकृतानन्द भी उल्लेख है। आधुनिक काल में भी देशी विदेशी विद्वानों द्वारा प्राकृत व्याकरण के कई ग्रन्थ लिखे गये हैं।

कोश ग्रन्थ – हेमचन्द्रसूरि ने 'रमणावलि' (रत्नावली) नामक देशीनाममाला में प्राकृत के कोशकारों – धनापाल, देवराज,गोपाल, द्रोण, शीलांक का उल्लेख करते हुए उनके उद्धारण भी दिये हैं किन्तु केवल धनपाल कृत

'पाइअलच्छीनाममाला' नामक कोशग्रन्थ ही उपलब्ध है।

अलंकार ग्रन्थ – स्वतंत्र रूप से प्राकृत भाषा का कोई अलंकारग्रन्थ नहीं लिखा गया। संस्कृत के अलंकार ग्रन्थों में प्राकृत काव्यों के उदाहरण बहुलतयाय दिये गये हैं।

उपर्युक्त विषयों के ग्रन्थों के अतिरिक्त, प्राकृत भाषा में अन्य अनेक विषयों का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ भी निर्मित हुए। इन विषयों में मुख्य हैं – अर्थशास्त्र, राजनीति,ज्योतिष,आयुर्वेद आदि।

ग. प्राकृत व्याकरण

(1) वर्णमाला –

1. स्वर – ह्रस्व स्वर – अ, इ, उ, ए, ओ ।

दीर्घ स्वर – आ, ई, ऊ, ए, ओ ।

2. सरल व्यंजन –

क	ख	ग	घ		
च	छ	ज	झ		
ट	ठ	ड	ढ	ण	
त	थ	द	ध	न	
प	फ	ब	भ	म	
य	र	ल	व	स	ह

ँ (अनुनासिक) ं (अनुस्वार)

3. संयुक्तव्यंजन –

	क्क	क्ख	ग्ग	ग्घ	ङ्क	ङ्ख	ङ्ग	ङ्घ
च्च	च्छ	ज्ज	ज्झ	ञ्च	ञ्छ	ञ्ज	ञ्झ	
ट्ट	ट्ठ	ड्ड	ड्ढ	ण्ट	ण्ठ	ण्ड	ण्ढ	ण्ण
त्त	त्थ	द्द	द्ध	न्त	न्थ	न्द	न्ध	न्न
प्प	प्फ	ब्ब	ब्भ	म्प	म्फ	म्ब	म्भ	म्म
ल्ल	व्व	स्स	य्ह	ण्ह	म्ह	ल्ह	द्र	

4. स्वर–विचार – प्राकृत में ऋ, ॠ , लृ, ऐ और औ स्वर नहीं होते।

काव्य में कहीं कहीं सम्बोधन के लिए 'ऐ' का प्रयोग मिलता है। महाराष्ट्री और शौर सेनी प्राकृत में 'ऐ' के स्थान पर 'अइ' का प्रयोग पाया जाता है। संयुक्त व्यंजन के पूर्ववर्ती ए और ओ स्वर ह्रस्व होते हैं। प्राकृत में

प्लुत स्वर नहीं पाये जाते ।

प्राकृत में स्वरों के परिवर्तन की मुख्यतः चार प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं– अ. दीर्घीकरण ब. ह्रस्वीकरण स. लोप और द. सम्प्रसारण।

अ. दीर्घीकरण – ह्रस्व स्वरों का दीर्घीकरण अधोलिखित प्रकार से होता है – 1. ह्रस्व स्वर + ऊष्म + ऊष्म (या अन्तःस्थ –ल को छोड़कर)– दीर्घस्वर + स । यथा – दुश्शासन – दूसासणो,निष्षिक्तः – नीसित्तो, पश्यति – पासइ, अश्वः – आसो।

2. ह्रस्व स्वर + र् + व्यञ्जन (ऊष्म वर्ण) – दीर्घ स्वर + यंजन। यथा – स्पर्शः – फासो, वर्षः – वासो, कर्तव्यम् – काअव्वं ।

3. सानुस्वार ह्रस्व स्वर + र या ऊष्म – दीर्घ स्वर + र या ऊष्म । यथा – विंशतिः – वीसा, सिंहः – सीहो, संरक्षणता – सारक्खणया।

4. 'अ' स्वर युक्त उपसर्ग + शब्द – 'आ' स्वर युक्त उपसर्ग+शब्द। यथा –

प्रकटम् – पाअडं, समृद्धिः – सामिद्धी। यह परिवर्तन वैकल्पिक है।

5. प्रथम पद का अन्तिम ह्रस्वस्वर – प्रथम पद का दीर्घ स्वर। यथा–

अन्तर्वेदिः – अन्तावेई, सप्तविंशतिः – सत्ताबीसा ।

ब) ह्रस्वीकरण –दीर्धस्वरों का ह्रस्वीकरण अधोलिखित प्रकार से होता है।

1. दीर्घ स्वर + संयुक्त व्यंजन – ह्रस्व स्वर + संयुक्त व्यंजन। यथा– विरहाग्निः – विरहग्गी, मुनीन्द्रः – मुनिन्दो, चूर्णः – चुण्णों।

किन्तु इस नियम के अपवाद भी मिलते हैं यथा–

आस्पम् – आसं, पार्श्वम् – पासं, प्रेष्यः – पेसो ।

2. प्रथम पद का अन्तिम दीर्घस्वर – ह्रस्व स्वर । यथा –

(पनिगृहम्) – पइहरं – पईहरं (पीहरं)

3. ए + संयुक्तव्यंजन – ऍ या इ + संयुक्तव्यंजन। यथा –

नरेन्द्रः – नरिन्दो , क्षेत्रम् –खेत्तं।

4. ओ + संयुक्तव्यंजन – ऑ या उ + संयुक्तव्यंजन। यथा–

ओष्ठम् – ऑट्ठं , नीलोत्पलम् – नीलुप्पलं ।

5. दीर्ध स्वर + व्यंजन – ह्रस्वस्वर + व्यंजन का द्वित्व। यथा –

तैलम्– तॅल्लं, प्रेमन् –प्रेम्मं, मण्डूकः – मण्डुक्को, यौवनम् – जॉव्वणं।

स. लोप – पदों के पश्चात् आने वाले 'अपि' आदि अव्ययों के आदि स्वर का लोप होता है।

1. अपि– पि, वि । यथा – किमपि –किं पि, तथापि – तह वि।

2. इति – ति, त्ति। यथा – किमिति – किं ति, तथोति– तहत्ति।

3. इव – व,व्व । यथा – गृहमिव – गेहे व, पततीव – पडइव्व।

द. सम्प्रसारण – संस्कृत भाषा की ही तरह प्राकृत में भी सम्प्रसारण होता है।

1. व्यंजनों का सम्प्रसारण –

क. य > इ। तिर्यक्षः – तिरिच्छो, व्यंजनम् – विअणं ।

ख. व > उ । गवयः – गउओ, त्वरितम् – तुरिअं ।

ग. अथ > ए । कथयति – कहेइ, स्थपयति – ठवेइ ।

घ. अव > ओ । अवतारः – ओतारो, लवणम् – लोणं ।

2. स्वरों का सम्प्रसारण (परिवर्तन) – प्राकृत भाषा में मूलतः ऋ, ॠ, लृ, ऐ तथा औ स्वर नहीं हैं। संस्कृत में ये स्वर हैं और प्राकृत में इनके परिवर्तन का कोई निश्चित नियम नहीं है। इस कारण इनके परिवर्तित रूप विभिन्न प्रकार से दिखायी देते हैं।

1. 'ऋ (ॠ)' सामान्यतः अ, इ, उ और रि मे परिवर्तित होता है।

क. ऋ > अ । घृतम् – घयं, तृणम् – तणं, मृगः – मओ ।

ख. ऋ > इ। ऋषिः – इसी, कृतिः – कई, मातृ – माई,माइ।

ग. ऋ > उ। ऋतुः – उऊ, कृषिः – कुसी, प्रावृट् – पाउसो।

घ. ऋ > रि । ऋद्धिः – रिद्धी, ऋक्षः – रिच्छो, सदृक्षः – सरिसो।

2. 'लृ' सामान्यतः 'लि' या 'इलि' में परिवर्तित होता है।

क. लृ > लि। लृकारः – लिआरो ।

ख. लृ > इलि । क्लृप्तम् । किलित्तं ।

3. 'ऐ' सामान्यतः 'ए' तथा 'अइ' में परिवर्तित होता है।

क. ऐ > ए । शैलः – सेलो, ऐरावणः – एरावणो।

ख. ए > अइ। दैत्यः – दइच्चो, वैशाखः – वइसाहो।

4. 'औ' सामान्यतः ओ, उ तथा अउ में परिवर्तित होता है।

क. औ > ओ । कौमुदी – कोमुई, कौशिकः –कोसिओ।

ख. औ > उ । दौवारिकः –दुवारिओ, सौवर्णिकम् – सुवण्णिओ।

ग. औ > अउ। पौरः – पउरो । कौरवः – कउरवो।

5. क. व्यंजन विचार

प्राकृत भाषा में व्यंजनों का निर्धारण दो प्रकार से किया गया है – सरल व्यंजन और संयुक्त व्यंजन । इन व्यंजनों को प्रारम्भ में दिया गया है। सरल व्यंजनों में मूलतः 'ङ' 'ञ', 'श' और 'ष' (तालव्यतथा मूर्धन्य) नहीं होते। विसर्ग (:) का भी अभाव होता है।

प्राकृत भाषा में स्वरों की ही तरह कुछ व्यंजनों में भी परिवर्तन होता है। 'श' और 'ष' के स्थान पर सदैव 'स' (दन्त्य) ही होता है। तथा विसर्ग (:) के स्थान पर 'ओ' पाया जाता है। अनियमित रूप से व्यंजन परिवर्तन अनेक प्रकारसे दृष्टिगोचर होता है। यहॉ हम संक्षेपतः उन पर विचार करेंगे।

1. **प्रारम्भिक व्यंजन** – सामान्यतः 'न' और 'य' में परिवर्तन दिखायी पड़ता है जब वे पद के प्रारम्भ में होते हैं ।

क. न > ण, न । नरः –णरो, नरो, नदी – णई, नई।

ख. य > ज । यशः – जसो, यतिः – जई ।

2. **मध्यवर्ती व्यंजन** – पदों के मध्य में रहने पर ढ, ण, म, र, ल, स और ह को छोड़ कर शेष व्यंजन परिवर्तित हो जाते हैं।

1. क, ग, च, ज, त, द, प, य और व का लोप हो जाता है। यथा–

लोकः – लोओ, भगिनी– भइणी, वचनम् – व अ (य) णं, गजः–ग ओ, लता – लया, यदि – जइ, रिपुः – रिऊ, वायुना – वाउणा, लावण्यम् – लाअ (य)ण्णं ।

2. ख,घ, थ, फ, भ, के स्थान पर 'ह' हो जाता हे। यथा –

मेखला – मेहला, जघनम्– जहजं, अनाथः –अणाहो,

बधिरः – बहिरो, मुक्ताफलम् – मुक्काहलं, सभा – सहा ।

3. ट, ठ, ड को क्रमशः ड, ढ और ल होता है। यथा –

भटः – भडो, घटः – घड़ो, कमठः – कमढो, पठति – पढइ, तडागम् – तलायं, गरुडः – गरुलो।

4. फ और ब को क्रमशः भ और व हो जाता है। यथा –

रेफः – रभो, सफलम् – सभलं, सहलं

कबरी – कवरी, शिबिका – सिविया ।

3. **अन्तिम व्यंजन** – प्राकृत भाषा में हलन्त पद नहीं होते। अतः अन्तिम व्यंजन का रूप –परिवर्तन इस प्रकार होता है।

1. लोप – देवात् – देवात्,पश्चात् – पच्छा।

2. अनुस्वर – साक्षात् –सक्खं, यत् – जं ।

3. स्वरयुक्त व्यंजन – शरद् – सरओ, भिषक् – भिसओ, सरित– सरिआ।

4. विसर्ग परिवर्तन – प्राकृत में विसर्ग का अभाव है। अतः वह इस प्रकार बदले हुए रूपों में हो जाता है।

क. अः> ओ । नरः – णरो, यशः – जसो।

ख. इः> ई । मुनिः – मुणी, गिरिः – गिरी।

ग. उः> ऊ । गुरूः –गुरू, तरूः – तरू ।

5. ख. संयुक्त व्यंजन–विचार –– सामान्यतया प्राकृत भाषा में समान वर्गीय संयुक्त व्यंजन ही अधिकांशतया उपलब्ध होते हैं। अतः संस्कृत के संयुक्त व्यंजनों को प्राकृत बदलते समय या तो उन्हें समानवर्गीय बना लिया जाता है अथवा उन्हें किसी स्वर से विभक्त करके सरल व्यंजनों में परिवर्तित कर दिया जाता है। इस तरह यहॉ दो विधियॉ प्रयुक्त होती हैं – समीकरण अथवा स्वरभक्ति।

क. समीकरण (समानीकरण) – विभिन्न वर्गीय दो व्यंजनों से बने संयुक्त व्यंजन में से एक व्यंजन का लोप होकर अवशिष्ट का (अनादि होने पर) द्वित्व हो जाता है। लोप होने में व्यंजनों का बलावल प्रभावी होता है और प्राकृतिक नियम से ही बलहीन व्यंजन का लोप होता है। वर्गों का प्रथम चार वर्ण बलशाली होते हैं। अनुनासिक वर्ण निर्बल होते है। तथा य, र, ल, व और स निर्वलतम होते हैं।

प्रायः पदों के प्रारम्भ में (कुछ अपवादों को छोड़कर यथा – ण्हाणं, द्रहो आदि) । संयुक्त व्यंजन नहीं होते । यथा – क्षत्रियः – खत्तियो, ध्वजः – धओ, त्यागः – चागो।

मध्यवर्ती व्यंजनों में लोप और द्वित्व होता है। यथा – उसलम् – उप्पलम्, शब्दः – सद्दो, लग्नः – लग्गो, मुक्ता – मुक्का, अग्निः – अग्गी, उग्रः – उग्गो, युग्मन् – जुग्गं, पक्वः – पक्को, अद्य – अज्ज, ऊर्ध्वम् – उद्धं, चत्वरम् – चच्चरम् आदि।

समीकरण का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। अतः ऊपर कतिपय उदाहरण दिये गये हैं। प्राकृत के प्रारम्भिक ज्ञान के लिए यह पर्याप्त है।

ख. स्वरभक्ति – संयुक्तव्यंजन में यदि एक व्यंजन अन्तःस्थ याअनुनासिक हो तो उन्हें स्वर के द्वारा विभक्त करके सरल बना दिया जाता है। विभक्त करने वाला स्वर अ, इ, ई और उ में से होगा।

क– 'अ' से विभक्त – क्ष्मा – छमा, रत्नम् – रयणं, स्नेहः – सणेहो।

ख– 'इ' से विभक्त – गर्हा – गरिहा, श्री – सिरी, क्रिया – किरिया, आदर्शः – आयरिसो, हर्षः – हरिसो, स्याद् – सिया, श्लोकः – सिलोओ

ग– 'ई' से विभक्त – ज्या –जीआ।

घ– 'उ' से विभक्त – पद्मम् – पउमं, छद्मम् – छउमं, तन्वी – तणुई, पृथ्वी – पुहुवी, श्वः – सुवे, स्वे – सुवे ।

3.5 सन्धि

प्राकृत में सन्धि नित्य नहीं है। इसकी व्यवस्था वैकल्पिक है। प्रायः सन्धियॉ संस्कृत के सन्धिनियमों का अनुसरण करते हुए होती हैं। तथापि अपवाद और विचलन प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। प्राकृत भाषा में सन्धि पॉच प्रकार की होती हैं – 1. स्वर सन्धि, 2. प्रकृतिभाव, 3. उद्वृतस्वरसन्धि, 4. अव्यय स्वर सन्धि और 5. व्यंजन सन्धि।

1. स्वर सन्धि – समान स्वर मिल की दीर्घ स्वर होते हैं। अ+ अ – आ, इ+ई – ई और उ + उ – ऊ । उदाहरण सर्वत्र मिलेंगें।

असमान स्वरों में सन्धि इस प्रकार होती है –

अ+ई – ए (उदा. सर्वत्र) अ+इ – इ । यथा गअ + इंदो – गइंदो आदि।

अ + उ – ओ (उदाहरण सर्वत्र) , अ+उ– उ । यथा – कण्ण+उप्पलं – कण्णुप्पलं। अ+ए – ए । यथा – गाम +एणी – गामेणी, तहा + एअ – तहेअ। अ+ओ – ओ । यथा – जल +ओहो – जलोहो।

स्वर+स्वर – स्वरलोप +स्वर। यथा – तीअस + ईसो – ती असीसो।

2. प्रकृति भाव – कुछ परिस्थितियों में स्वरों में सन्धि न होकर यथास्थिति रह जाती है। इसे प्रकृति भाव कहते हैं।यथा –

जइ + एवं – जइएवं, सु + अलंकियं – सुअलंकियं, वणे+अडइ – वणे अडइ, एओ+एत्थ – एओ एत्थ, होइ + इह – होइ इह ।

3. **उद्वृत्तस्वरसन्धि** – व्यंजन के लुप्त हो जाने पर जो स्वर शेष रहता है उसे उद्वृत्तस्वर कहते हैं। इनमें जो सन्धि होती है। उसमें प्रायः प्रकृति भाव ही रहता है। यथा – वरा + आ = वराआ, का+अत्वं = का अव्वं। इस सन्धि में अनेकशः अपवाद देखे जाते हैं । यथा –थ + इरो = थेरो।

4. **अव्यय स्वर सन्धि** –

क– स्वर + अपि = स्वर + वि । केण + अपि = केणवि, सुयणा+अपि = सुयणावि ।

ख– अनुस्वार + अपि= अनुस्वर+ पि । मरणं + अपि = मरणंपि,

तं+अपि तेपि ।

ग– स्वर+इति = स्वर+त्ति। तहा + इति = तहत्ति, दीसइ + इति= दीसइत्ति ।

घ– अनुस्वार+इति = अनुस्वार+ति। किं + इति = किंति, पढमं+इति= पढमंति।

च– स्वर+इव = स्वर+त्व। चन्दो+इव =चन्दोत्व, दासा+इव = दासात्व।

छ– अनुस्वार+इव = अनुस्वार+व। रिणं+इव = रिणंव, गेहं+इव= गेहंव।

अति, अमि आदि उपसर्ग के अन्तिम स्वर के साथ स्वर की सन्धि होने पर संस्कृत के नियमानुसार रूप प्राप्त होता है फिर उसका व्यंजन नियम से परिवर्तन होता है। यथा – अति+अन्तं = अत्यन्तं (अच्चन्तं) ।

5. **व्यंजन सन्धि** अ. प्राकृत में संस्कृत के हलन्त पदों के अन्तिम 'म्' को अनुस्वार हो जाता है। यथा – जलम् – जलं।

ब. अन्तिम 'म्' + स्वर – अनुस्वर (विकल्प) । यथा – उसभम् + अंजिअं – उसमें अजिअं, – उसभमजिअं ।

स. ङ्, ञ्, ण्, न् + व्यंजन – अनुस्वार+ व्यंजन । पराङ् + मुहो – परंमुहो, कञ् + चुओ – कंचुओ, सण् + मुहो – छंमुहो।

द. अनुस्वार + तद्वर्गीय व्यंजन – पंचमवर्ण + व्यंजन (विकल्प) से। पं + को – पंको, पंको, सं+ढो – संढो, सण्ढो, आरं + मो – आरंभो, आरम्भो।

य. अनुस्वार का आगम – वक्रं, वंकं , कृत्वा – काऊणं

र. 'म' का आगम – एकैकम् – एक्कमेक्कं ।

ल. अनुस्वार का लोप – विंशतिः – वीसा, सिंहः – सीहो।

3.6 प्रत्यय

अ– कृत्प्रत्यय – धातुओं से कृदन्त प्रत्यय लगते हैं।

1. **वर्तमान कृदन्त** – धातुओं में 'न्त' (शतृ) और माण (शानच्) जोड़ने पर वर्तमान कृदन्त के रूप बनते हैं। स्त्रीलिंग के साथ अन्त में 'इ' जुड़ता है। न्त, माज और ई के पूर्ववर्ती 'अ' को विकल्प से 'ए' होता है।

यथा – हस धातु से – पुल्लिंग में – हसन्तो, हसेन्तो, हसमानो, हसेमाणी।

नपु. लिंग में – हसन्तं, हसेन्तं, हसमाणं, हसेमाणं ।

स्त्रीलिंग – हसन्ती, हसेन्ती, हसमाणी, हसेमाणी, हसई, हसेई।

2. **भूतकृदन्त** – संस्कृत के 'क्त' के स्थान पर 'अ' होता है। अ के पूर्व वर्ती अ को 'इ' हो जाता है।

यथा – गम + अ – गमिओ, चल + अ – चलिओ।

कर + अ – करिओ, पढ + अ – पढिओ ।

गतम् – गअं, कृतम् – कडं, मृतम् – मडं, जितम् – जिअं, आदि।

3. **सम्बन्धसूचक कृदन्त** – क्त्वा औ ल्यप् के स्थान पर तुं, अ, तूण, तुआण, इत्ता, इत्ताण, आय और आए प्रत्यय लगते हैं। इन प्रत्ययों के 'ण' पर विकल्प से अनुस्वार लगता है। प्रत्ययों के पूर्ववर्ती 'अ' को प्रयोगानुसार 'इ' और 'ए' आदेश होते हैं। यथा – हसिडं, हसेडं, हसिअ, हसेअ, हसिऊण, हसेऊण, हसिऊणं, हसेऊणं, हसिउआण (णं), हसेउआण (णं)।

4. **भविष्यत्कृदन्त** – धातु से स्सन्त, स्समाण और स्सई (केवल स्त्रीलिंग में) प्रत्यय जोड़ने पर भविष्यत्कृदन्त के रूप बनते हैं।

हस (पु.) – हसिस्सन्तो, हसिस्समाणो। हसिस्सई (स्त्रीलिंग)।

5. हेत्वर्थककृदन्त – तुमुन (तुम्) प्रत्यय के स्थान पर उं तथा त्तए लगाय जाते है। उं तथा त्तए के पूर्ववर्ती 'अ' को 'इ' तथा 'ए' हो जाते हैं। यथा –

हस + उं –हसिउं, हसेउं ।

कर + त्तए – करित्तए, करेत्तए।

6. **विध्यर्थककृदन्त** – धातु से तब्ब, अणिज्ज और अणीअ प्रत्यय लगते हैं। 'यत' प्रत्यय का 'ज्ज' हो जाता है 'तब्ब' प्रत्यय के पूर्ववर्तों 'अ' को'इ' तथा 'ए' हो जाता है।

यथा – हस + तव्व – हसिअव्वं, हसेअव्वं, हसितव्वं, हसेतव्वं

कर + अणिज्ज, अणीअं – करणिज्जं, करणीअं

कर + ज्ज – कज्जं।

7. **कर्तृसूचक कृदन्त** – धातु में 'इर' प्रत्यय लगाया जाता है।

'हसनेवालों के अर्थ में – हस+इर – हसिरो (पु) हसिरा (स्त्री)

तद्धितप्रत्यय

प्रातिपादेकों से लगनेवाले प्रत्यय 'तद्धितप्रत्यय' कहे जाते हैं। कुछ मुख्य तद्धित प्रत्यय इस प्रकार हैं–

अण् एच्च्य । यौष्माकम् – तुम्हेच्चयं, आस्माकम् –अम्हेच्चयं।

कन् क, इल्ल, उल्ल, ल्लो। बहुकम् – बहुअयं, बहुअं। पल्लवकः – पल्लविल्लो। पितृकः – पिउल्ले। एककः – एकल्लो।

कृत्वस् हुत्त । शतकृत्वः –सयहुत्तं , सहस्रकृत्वः – सहस्सहुत्तं

'छ' प्रत्यय को णय, केर, क्क और इक्क होता है– आत्मीयम् – अप्पणयययययं, युष्मदीयः – तुम्हकेरो, परकीयम् – पारक्कं, राजकीयम् – राइक्कं, रायकेरं।

तसिल् प्रत्यय को त्तो और दो होता है – यतः – जत्तो, जदो, जओ

मतुप् प्रत्यय को आल, आलु, इल्ल, उल्ल, वन्त, मन्त, इत्त, इर और मण होते हैं। यथा – ईर्ष्यावान् – ईसालू, रसवान् – रसालो, शोभावान् – सोहिल्लो, दर्पवान् – दप्पुलो, धनवान–धणवन्तों, श्रीमान् – सिरिमन्तों, काव्यवान् – कव्व इत्तो, गर्ववान् – गव्विरो।

वति प्रत्यय के लिए 'व्व' लगता है – मधुवत् –महुव्व इत्यादि ।

स्त्री प्रत्यय

प्राकृत में केवल आ, ई, और ऊ – ये तीन ही स्त्री प्रत्यय प्राप्त होते है। इनका प्रयोग संस्कृत की ही भॉति होता है। यथा – अअ + आ – अआ (अजा) , पठम + आ – पठमा (प्रथम) । राया+ई –राणी, सीह+ई– सीही। छाया +ई – छाही (छाया भी विकल्प से) अज्ज + ऊ – अज्जू (आर्या)।

3.7 समास

प्राकृत के वैयाकरणों ने पृथक्तया समास का उल्लेख नहीं किया है। अतः संस्कृत के ही समान, अव्ययीभाव, तत्पुरूष, तत्पुरूष, कर्मधारय, द्विगु, द्वन्द्व और बहुब्रीहि समास होते हैं।

3.8 कारक

कतिपय विशेषताओं के साथ प्राकृत भाषा में भी कारक (विभक्ति नियम) संस्कृत के ही समान होते है। वे विशेषताएं अधोलिखित है।

1. चतुर्थी विभक्ति के ही समान षष्ठी विभक्ति भी होती है।
2. कहीं कहीं द्वितीया, तृतीया,पंचमी और सप्तमी के स्थान पर षष्ठी होती है।
3. कहीं कहीं द्वितीया और तृतीया के स्थान पर सप्तमी होती है।
4. पंचमी के स्थान पर तृतीया और सप्तमी भी होती है।
5. सप्तमी के स्थान पर द्वितीया और कहीं तृतीया भी होती है।

3.9 शब्दरूप

शब्दों के रूपों के सम्बन्ध में प्राकृत भाषा के सन्दर्भ में प्रमुख ध्यातव्य

tथ्य इस प्रकार हैं–

1. व्ययंजनान्त शब्दों का अभाव है। संस्कृत के व्यंजनान्त शब्दों के अन्तिम व्यंजन का या तो वे स्वर में परिवर्तित होते हैं । यथा– राजन् – रायो, शरद् – सरओ।

2. यद्यपि प्राकृत में भी तीनों लिंगों की व्यवस्था है किन्तु संस्कृत के कतिपय नपुंसकलिंग प्राकृत में पुल्लिंग हो गये हैं। यथा – तमः (नं.) – तमो (पु.) कुलम् (नं.) – तमो (पु.) , वचनम् (नं.) – वयणों (पु) इत्यादि ।

3. पालि भाषा की ही तरह प्राकृत भाषा में भी द्विवचन का अभाव है।

4. चतुर्थी और षष्ठी विभक्ति के रूप समान होते हैं।

5. शब्दों को उनके मूलसंस्कृत रूपों को ध्यान में रखकर पॉच प्रकारों में बॉटा गया है – अवर्णान्त, इवर्णान्त, उवर्णान्त, ऋवर्णान्त, और हलन्त। प्राकृत में हलन्त शब्द भी अजन्त हो जाते हैं। राजन् –राय,आत्मन् – अप्प।

अकारान्त पुल्लिंग शब्द वच्छ (वृंक्ष)

	एकवचन	बहुवचन
पठमा	वच्छो	वच्छा
दुतिया	वच्छं	वच्छा, वच्छे
ततिया	वच्छेण, वच्छेणं	वच्छेहि, वच्छेहिं, वच्छेहिं
चतुर्थी	वच्छस्स	वच्छाण, वच्छाणं
पंचमी	वच्छा, वच्छत्तो, वच्छाओ, वच्छाउ, वच्छाहि, वच्छाहिन्तो	वच्छत्तो,वच्छाउ, वच्छाओ, वच्छाहि, वच्छेहि, वच्छा (च्छे) हिन्तो, वच्छा (च्छे) सुन्तो।
छट्ठी	–	–
सत्तमी	वच्छे, वच्छम्मि	वच्छेसु, वच्छेसुं
संबोधन	वच्छ, वच्छा, वच्छो	वच्छा

इकारान्त (पु.) शब्द गिरि

प.	गिरी	गिरी, गिरिणो, गिरउ, गिरओ
दु.	गिरिं	गिरी, गिरिणो
त.	गिरिजा	गिरीहि, गिरीहिं, गिरीहिं
च.	गिरिणो, गिरिस्स	गिरीण, गिरीणं
पं.	गिरिणो, गिरित्त्पे,गिरीउ,	गिरित्तो,गिरीओ, गिरीउहिन्तो

	गिरिहिन्तो	सुन्तो
छ.	–	–
स.	गिरिम्मि	गिरिसु, गिरिसुं
संबो.	गिरि, गिरी	गिरी, गिरिणो, गिरिउ, ओ

उकारान्त (पु.) शब्द तरू

प.	तरू	तरू, तरूणो, तरउ, तरओ, तरवो
दु.	तरूं	तरू, तरूणो
त.	तरूणा	तरूहि, तरूहिं, तुरूहिं
च.	तरूस्स, तरूणो	तरूण, तरूणं
पं.	तरूणों, तरूत्तो, तरूउ, ओ, हिन्तो	तरूओ, तरूत्तो, तरूउ, हिन्तो सुन्तो
छ.	–	–
सं.	तरूम्मि	तरूसु, तरूसुं
संबो.	तरू, तरू	तरू, तरूणो, तरउ, तरवो

ऋकारान्त (पुं.) शब्द पितृ (पिउ, पिअर)

प.	पिआ, पिअरो	पिअस, पिउ, पिउणो, पिअउ, पिअओ, –वो
दु.	पिअरं	पिअरा, पिअरे, पिउ, पिउणो
त.	पिउणा, पिअरेण, पिअरेणं	पिअरेहि, हिं,–हिं, पिउहि,–हि, हि,
च.	पिअरस्स, विडणो, पिउस्स	पिअराण, पिअराणं, पिउणं पिउणं
प.	पिअरा, पिअरत्तौ, पिअराओ, पिअ़राउ, पिअराहि, –हिन्तो, पिउणो, पिउत्तो, –उ,–हिन्तो)	पिअरत्तो, पिअराओ, उ,–हि –हिन्तो, –सुन्तो, पिअरेहि, हिन्तो,–सुन्तो, पिउत्तो, पिउड, –ओ, –हिन्तो, –सुन्तो
छ.	–	–

स.	पिअरे, पिअरम्मि, पिउम्मि	पिअरेसु, –सु, पिउसु, –सुं
सम्बो.	पिअ,पिअरं	पिअरा,पिउ, पिउणो, पिअउ, –ओ, –वो

हलन्त (पुं.) शब्द 'राय' (राजन्)

प.	राया	राया, रायाणो, राइ्णो
दु.	रायं,राइणं	राया,रायाणो, राए, राइणो
त.	राएण, राएणं,राइणा,रण्णा	राएहि, –हिं, –हिं, राइहि, –हिं, हिं
च.	रायस्स, राइणो, रण्णो	रायाण, रायाणं, राईण, राईणं
पं.	रायत्तो, राया, –उ, –ओ, –हि, –हिन्तो, राड्णो,रण्णो	रायतो, रायाओ, –उ, –हि, –हिन्तो, –सुन्तो, राएहि, –हिन्तो, –सुन्तो, राईत्तो, राईओ, –उ, हिन्तो, –सुन्तो
छ.	–	–
स.	राये, रायम्मि, राइम्मि	राएसु, राएसुं, राईसु,राईसुं
संबो.	राय, राया	राया, रायाणो, राइणो

स्त्रीलिंग आकारान्त शब्द 'माला'

प.	माला	माला, मालाउ,मालाओ
दु.	मालं,	माला,मालाउ,मालाओ
त.	मालाअ, मालाइ, मालाए	मालाहि, –हिं, –हिं
च.	मालाअ, मालाइ, मालाए	मालाण, मालाणं
प.	मालत्तो, मालाअ,–इ, –ए, ओ, –उ, –हिन्तो	मालत्तो,मालाउ, –ओ, –हिन्तो, –सुन्तो
स.	मालाअ, मालाइ, मालाए	मालासु, मालासुं
संबो.	माले, माला	माला, मालाउ, मालाओ

इकारान्त (स्त्री) शब्द 'बुद्धि'

प.	बुद्धी	बुद्धी, बुद्धीउ, –ओ
दु.	बुद्धिं	,, ,, ,,
त.	बुद्धीअ, –आ, –इ, –ए	बुद्धीहि, –हिं, –हिं
च.	,, ,, ,,	बुद्धीण, बुद्धीणं

प.	बुद्धीअ, –आ, –इ, –ए, बुद्धाओ, –उ, –हिन्तो	बुद्धित्तो, बुद्धीओ, –उ, –हिन्तो –सुन्तो
स.	बुद्धीअ, –आ, –इ, –ए	बुद्धीसु, बुद्धीसुं
संबो.	बुद्धि, बुद्धी	बुद्धी, बुद्धीउ, बुद्धीओ

स्त्रीलिंग ईकारान्त, उकारान्त, और अकारान्त शब्दों के रूप भी 'बुद्धि' शब्द के ही समान चलते हैं।

नपुंसकलिंग अकारान्त शब्द 'वण'

प.	वणं	वणाणि, वणाइं, वणाइँ
द.	वणं	" " "
संबो.	वण	" " "

शेष रूप 'वच्छ' के समान

नपुं. इकारान्त शब्द 'दहि' (दधि)

प.	दहि	दहीणि, दहीइं, दहीइँ
दु.	"	" " "
संबो.	"	" " "

शेष रूप 'गिरि' के समान

नपुं. उकारान्त शब्द 'महु' (मधु)

प.	महु	महूणि, महूइं, महूइँ
दु.	"	" " "
संबो.	"	" " "

शेष रूप 'तरू' के समान

सर्वनाम शब्द 'सव्व' (सर्व) पुल्लिंग

प.	सव्वो	सव्वे
दु.	सत्वं	सव्वे, सव्वा
त.	सव्वेण, सव्वेणं	सव्वेहि, सव्वेहिं, सव्वेहिँ
च.	सव्वस्स	सव्वाण, सव्वाणं, सव्वेसिं
पं.	सव्वत्तो, सव्वा, –ओ, –उ, –हि, –हिन्तो	सव्वत्तो, सव्वा, –उ, –ओ, –हि –हिन्तो, –सुन्तो, सव्वेहि, –हिन्तो –सुन्तो।
सं.	सव्वस्सिं, सव्वम्मि, –त्थ, –हिं	सव्वेसु, सव्वेसुं

स्त्रीलिंग 'सव्वा' के रूप 'माला' के समान और नपुं. 'सव्व' के रूप 'वण' के समान होते हैं

पुल्लिंग 'ज' (यद्) शब्द

प.	जो	जे
दु.	जं	जे, जा
त.	जेण, जेणं, जिणा	जेहि, जेहिं, जेहिँ
च.	जस्स,जास	जाण, जाणं, जेसिं
पं.	जम्हा, जन्तो, जाओ, जाउ, जाहि, जाहिन्तो	जत्तो, जाओ, –उ, –हि, –हिन्तो –सुन्तो, जेहि, –हिन्तो, –सुन्तो
स.	जहि, जाला, जइआ, जहिं, जम्मि, जस्मिं, जत्थ	जेसु, जेसुं

स्त्रीलिंग 'जा', 'जी' (यद्) शब्द

	एकवचन	बहुवचन
प.	जा	जी, जीआ, जीउ, जीओ, जा, जाउ, जाओ
दु.	जं	,, ,, ,, ,,
त.	जीअ, जीआ, जीइ, जीए, जाअ, जाइ, जाए	जीहि, –हिं, –हिँ, जाहि, –हिं –हिँ
च.,छ.	जिस्सा, जीसे, जीअ, जीआ, जीए, जीइ, जाअ, जाइ, जाए	जाण,जाणं, जेसिं
पं.	जित्तो, जीअ, –आ, –इ, –ए, ओ, –उ, –हिन्तो, जाअ, –इ, –ए, जम्ता, जत्तो, जाओ,–उ, –हिन्तो	जत्तो,जाओ, –उ, –हिन्तो,–सुन्तो जीओ, –उ, –हिन्तो, –सुन्तो
स.	जीअ,जीआ, जीइ, जीए, जाअ, जाइ, जाए	जीसु, जीसुँ, जासु, जासुं

नपुं. 'ज' (यद्) शब्द

प.	जं	जाणि, जाइ, जाइँ
दु.	जं	,, ,, ,,

शेष पुल्लिंगवत्

पुल्लिंग 'इम' (इद्म) शब्द

प.	अयं	–
दु.	णं, इणं	णे
त.	णेण, णेणं	णेहि, णेहिं, णेहिँ
च.	अस्स, से	सिं
स.	अस्सिं, इह	–

स्त्रीलिंग 'इमा' (इद्म) शब्द

प.	इमिआ	–

नपुं. 'इम' (इद्म) शब्द

प., दु.	इदं, इणं, इणमो	–

'युष्मद्' शब्द (तीनों लिंगो में)

प.	तुं, तुमं, तुवं, तुह	तुम्हे, तुम्ह
दु.	" " " "	तुम्हे, वो
त.	तए, तुमे	तुम्हेहि, तुज्झेहि
च.,छ.	तुव, तुह, ते, तुज्झ, तुम्ह	तुम्हाण, तुम्हाणं
प.	तुज्झ, तुमाओ, तुमाहिंतो	तुम्हतो, तुज्झतो
स.	तुमे, तुमम्मि, तुहम्मि	तुमसु, तुम्हेसु, तुम्हासु

'अस्मद्' शब्द (तीनों लिंगों में)

प.	अहं, हं	अम्हे
दु.	ममं, मं	अम्हे
त.	मइ, मए	अम्हेहि
च., छ.	अम्ह, मज्झ, मम	अम्हाण, –णं, ममाण, –णं
पं.	ममत्तो, ममाओ, मज्झत्तो	अम्हत्तो, अम्हाहिंतो, ममाहिंतो
स.	अम्हम्मि, ममाम्मि	अम्हेसु, अम्हासु, ममसु

संख्या वाचक शब्द

प्राकृ भाषाओं में 'एक' के लिए 'एक्क'(पुं.) और 'एक्का' (स्त्री.) का प्रयोग होता है और इसके रूप क्रमशः 'सव्व' और 'सव्वा' की तरह बनते हैं। द्वि, त्रि, चतुर, पंचन्, षष् और सप्तन् का प्राकृत में क्रमशः दु, ति, चउ, पंच, छ, और सत्त होता है। ये तीनों लिंगों में समान रूप वाले होते हैं। इनके रूप

केवल बहुवचन में ही बनते हैं।

	'दु' शब्द	'ति' शब्द
प.,दु.	दुवे, दोण्णि, वेण्णि	तिण्णि
त.	दोहि,–हिं,हिँ, वेहि,–हिं,–हिँ	तीहि, तीहिं, तीहिँ
च.,छ.	दोण्हं, दुण्हं, वेण्हं	तिण्ह,तिण्हं
पं.	दुत्तो, दोओ,–उ,–हिन्तो, –सुन्तो, वेओ,–उ,–हिन्तो, –सुन्तो	तित्तो, तीओ, –उ, –हिन्तो, –सुन्तो
स.	दोसु, दोसुं, वेसु, वेसुं	तीसु, तीसुं
	'चउ' शब्द	'पंच' शब्द
प.,दु.	चत्तारो, चउरो, चत्तारि	पंच
त.	चऊहि, चऊहिं, –हिँ	पंचेहि, पंचेहिं, –हिं
च., छ.	चउण्ह, चउण्हं	पंचण्ह, पंचण्हं
प.	चउत्तो, चऊओ, इत्यादि	पञ्चत्तो, पंचाओ, इत्यादि
स.	चऊसु, चऊसुं	पंचसु, पंचसुं

अन्य संख्या वाचक शब्दों के रूप भी इसी प्रकार बनते हैं।

3.10 धातु–रूप

मूल धातुएँ और गण प्रायः संस्कृत के ही समान हैं। भ्वादिगण की धातुओं की ओर अन्य गणों की धातुएं भी अपने रूप की दृष्टि से झुकाव रखती हैं। धातुओं के रूप प्रायः परस्मैपद में ही मिलते हैं। धातु रूपों में भी द्विवचन का अभाव है। लट्, लिट, लृट्, लोट्, विधिलिंग, तथा लृंग लकार के ही रूप मिलते हैं। व्यञ्जनान्त धातुओं को स्वरान्त धातु में परिवर्तित कर लिया जाता है। यथा – हस् – हस, भण् –भण।

हस धातु

लट् लकार

पुरूष	एकवचन	बहुवचन
प्रथम	हसइ, हसए	हसिन्त, हसन्ते, हसिरे
मध्यम	हससि, हससे	हसित्था, हसह
उत्तम	हसामि, हसमि	हसामो, हसामु, हसाम, हसमो,

		हससु, हसम, हसिमो, हसिमु, हसिम

लोट् लकार

प्रथम	हसेउ	हसन्तु
मध्यम	हस, हससु, सहहि, हसेज्जे, हसेज्जसु, हसेज्जहि	हसह
उत्तम	हसामु, हसिमु, हसमु	हसमो, हसामो, हसिमो

विधिलिंग के रूप भी प्रायः इसी प्रकार बनते हैं।

लृट् लकार

प्रथम	हसिस्सइ	हसिस्सन्ति
मध्यम	हसिस्ससि	हसिस्सह
उत्तम	हसिस्सामि	हसिस्सामो,–मु,–म

हो (भू) धातु

लट् लकार

प्रथम	होई	होन्ति, होन्ते, होइरे
मध्यम	होसि	होइत्था, होह
उत्तम	होमि	होमो, होमु, होम

लिट् लकार

प्रथम पुरूष	होसी, होही, होहीइ	–

लृट् लकार

प्रथम	होस्सइ	होस्सन्ति
मध्यम	होस्ससि	होस्सइ
उत्तम	होस्सामि	होस्सामो,होस्सामु, होस्साम

लोट् तथा विधिलिंग

प्रथम	होउ	होन्तु
मध्यम	होहि, होसु	होमो
उत्तम	होमु	होमो

सारांश

'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति से ही प्राकृत भाषा की उत्पत्ति की समस्या का कुछ हद तक समाधान होता है किन्तु 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति के

सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ लोक प्राकृत को प्रकृति अर्थात् संस्कृत से उत्पन्न मानते हैं और कुछ लोगों का मानना है कि प्राकृत का संस्कार होने से संस्कृत बनी। अर्थात् प्राकृत संस्कृत से पूर्व विद्यमान थी और प्रथम मतानुसार वह संस्कृत के बाद सत्ता में आई। जो भी हो, प्राकृत का प्रयोग प्राचीन काल से ही समाज और साहित्य में समानान्तर रूप से प्राप्त होता है।

प्राकृत भाषा का वांग्मय बृहद् और समृद्ध है। इसमें महाकाव्य, गद्यकाव्य, नाट्य (सट्टक) आदि की रचना के साथ ही सुभाषितों का अपार भण्डार भरा हुआ है। जैन मतावलम्बियों ने अपने धार्मिक ग्रन्थों की रचना प्राकृत भाषा में की है। और इनकी संख्या भी प्रचुर है।

प्राकृत का व्याकरण यद्यपि संस्कृत के ही व्याकरण का अनुगामी है तथापि इसमें अपनी कई विशेषताएं हैं। पालिभाषा की ही तरह इसमें भी द्विवचन का अभाव है और चतुर्थी–षष्ठी तथा तृतीया–पंचमी विभक्ति के रूपों में समानता पाई जाती है। संस्कृत के समान धातुओं में सभी लकारों का प्रयोग नहीं पाया जाता । लोक व्यवहार की भाषा होने के कारण व्याकरण के नियमों का पूर्णतः पालन नहीं दृष्टिगोचर होता ।

प्रश्न खण्ड – क (निबन्धात्मक)

1. 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति देते हुए प्राकृत भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त कीजिए।
2. प्राकृत भाषा का उल्लेख करते हुए किसी एक प्राकृत भेद की विशेषता का सोदाहरण निरूपण कीजिए।
3. प्राकृत भाषा में निबद्ध जैन धर्म के प्रमुख ग्रन्थों का परिचय दीजिए।
4. प्राकृत– साहित्य की सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।

खण्ड – ख (टिप्पण्यात्मक)

1. संस्कृत नाटकों में प्राकृत प्रयोग
2. पैशाची प्राकृत।
3. महाराष्ट्री प्राकृत ।
4. जैन आगम का संक्षिप्त परिचय।
5. प्राकृत में कथा साहित्य।
6. प्राकृत के प्रमुख महाकाव्य ।
7. प्राकृत के सट्टक।

खण्ड – ग (वस्तुनिष्ठात्मक)

1. भरत के 'नाट्यशास्त्र' में उल्लिखित प्राकृतों की संख्या है –

क– तीन, ख– नौ

ग– सात घ– दस ।

2. 'प्राकृत प्रकाश' के लेखक हैं –

क– वररूचि, ख– हेमचन्द्र

ग– मार्कण्डेय, घ– पुरूषोत्तम।

3. गुणाढ्य ने बृहत्कथा लिखी है –

क– मागधी प्राकृत में, ख– महाराष्ट्री प्राकृत में

ग– शौरशेनी प्राकृत में घ– पैशाची प्राकृत में।

4. 'बुद्ध' शब्द का द्वितीया विभक्ति एकवचन में रूप है–

क– बुद्धं ख– बुद्धे

ग– बुद्धानं घ– बुद्धा

5. 'वट्ट' धातु का लट्लकार प्रथम पुरूष एकवचन में रूप है –

क– वट्टति ख– वट्टइ

ग– वट्टउ घ– वट्टेति

खण्ड – ग (वस्तुनिष्ठात्मक) प्रश्नों के सही उत्तर

1. ग, 2. क, 3. घ, 4. क, 5. ख।

इकाई–4 प्राकृतपाठसञ्चयः

4.1 गाहासत्तसई

1. उअ णिच्चलणिप्पन्दा भिसणीपत्तम्मि रेहइ वलाआ ।
णिम्मलमरगअभाअणपरिट्ठिआ संखसुत्ति व्व ।। 1.4 ।।

2. सहि ईरिसि व्विअ गई मा रुव्वसु तिरिअवलिअमुहअन्दं।
एआणॅ बालबालुंकितन्तुडिलागं पम्माणं ।। 2.10 ।।

3. पाअवडिअस्स पइणो पुट्ठिं पुत्ते समारुहत्तम्मि।
दहमण्णुदुण्णिआएँ वि हासो धरणीएँ णेक्कन्तो ।। 1.11 ।।

4. रंघणकम्मणिडणिए माजूरसु रत्तपाडलसुअन्धम् ।
मुहमारुअं पिअन्तो घूमाइ सिही ण पज्जलइ ।। 1.14 ।।

संस्कृच्छाया गाथासप्तशती

1. पश्य निश्चलनिःस्पन्दा बिसिनीपत्रे राजते बलाका ।
निर्मलमरकतभाजनपरिस्थिता शंखशक्तिरिव ।।

2. सखि, ईदृश्येव गतिर्मा रोदीस्तिर्यग्वलितमुखचन्द्रम् ।
एतेषां बालबालुंकीतन्तु कुटिलानां प्रेम्णाम् ।।

3. पादपतितस्य पत्युः पृष्ठं पुत्रे समारुहति ।
दृढमन्युदूनाया अपि हासो गृहिण्या निष्क्रान्तः ।।

4. रन्धनकर्मनिपुणिके मा क्रुध्यस्व रक्तपाटलसुगन्धम् ।
मुखमारूतं पिबन् धूमायते शिखी न प्रज्वलति ।।

हिन्दी अनुवाद गाथासप्तशती

1. देखो, निर्मल मरकतमणि (पन्ना) की तश्तरी पर रखी हुई शंख औरे सीपी के समान यह निश्चल और निःस्पन्द बगुली कमालिनी के पत्ते पर सुशोभित है।।

2. सखि, इस बतिया (छोटी) ककड़ी के टेढ़े तन्तुओं के समान प्रेम की गति ही ऐसी है, तूॅ (अपने) मुखचन्द्र को तिरछा कर (घुमाकर) मत रोओ।

3. (अपराध क्षमापन हेतु प्रियतम पत्नी के) पैरों पर झुके पति की पीठ पर पुत्र के चढ़ जाने पर, अत्यन्त क्रोध से दुःखी भी गृहिणी के मुख से हंसी निकल गयी।

4. हे रसोई के काम में कुशल (रमणी) ! लाल पाटल (गुलाब) जैसी सुगन्ध ा वाली तुम्हारे मुख की हवा पीते हुए यह अग्नि धुऑ दे रहा है, जलता नहीं

है।।

5. अमअमअ गअणसेहर रअणीमुहतिलअ चन्ददेधिवसु ।
छित्तो जेहं पिअअमो ममं पि तेहिं विअ करेहिं ।। 1.16 ।।

6. पिअविरहो अप्पिअदंसणं अ गरुआइँ दो वि दुक्खाइँ ।
जीएँ तुमं कारिज्जसि तीएँ णमो आहिजाईएँ ।।1.24।।

7. अज्ज मए तेण विणा अणु हूअसुहाइँ संभरन्ती ए ।
अहिणवमेहाणँ रवो णिसामिओ वज्झपडहो व्व ।। 1.29 ।।

8. आरम्भन्तस्स धुअं लच्छी मरणं विहोइ पुरिसस्स ।
तं मरणं अणारम्भे वि होइ लच्छी उण ण होइ ।। 1.42 ।।

9. विरहाणलो सहिज्जइ आसबन्धेण वल्लहजगणस्स ।
एकग्गामप्पवासो माए मरणं विसेसेइ ।। 1.43 ।।

संस्कृतच्छाया

5. अमृतमय गगनशेखर रजनीमुखतिलक चन्द्र हे स्पृश ।
स्पृष्टो यैः प्रियतमो मामपि तैरेव करैः ।।

6. प्रियविरहोऽप्रियदर्शनञ्च गुरूके द्वेऽपि दुःखें ।
यथा त्वं कार्यसे तस्यै नम आभिजात्यै ।।

7. अद्य मया तेन विनाऽनुभूतसुखानि संस्मरन्त्या ।
अभिनवमेघानां रवो निशामितो वध्यपटह इव ।।

8. आरभमाणस्य ध्रुवं लक्ष्मीर्मरणमपि भवति पुरूषस्य ।
तन्मरणमनारम्भेऽपि भवति लक्ष्मीः पुनर्न भवति ।।

9. विरहानलः सहयत आशाबन्धेन वल्लभजनस्य ।
एकग्रामप्रवासो मातर्मरणं विशेषयति ।।

हिन्दी अनुवाद

5. हे अमृतमय गगशेखर रजनीमुख के तिलकस्वरूप चद्र! मुझे भी अपनी उन्हीं किरणों से छुओ, जिनसे (तूने मेरे) प्रियतम को छुआ है।।

6. प्रिय वियोग और अप्रियदर्शन दोनों ही भारी दुःख (के कारण) हैं। जिससे तुम (ऐसा) कराये जाते हो, उस आभिजात्या को नमस्कार है।।

7. आज उसके (प्रियतम के) बिना (विरह में) (पहले) अनुभूत सुखों को याद करती हुई मेरे द्वारा नये बादलों की ध्वनि को वध्यपटह की भाँति सुना गया।।

8. कार्यारम्भ (उद्योग) करने वाले को ही लक्ष्मी प्राप्त होती है। और ऐसे ही व्यक्ति की मृत्यु भी (सार्थक) होती है। वह मृत्यु तो कार्यारम्भ न करने पर भी होती है, हॉ, फिर लक्ष्मी तो नहीं मिलती ।

9. प्रिय (मिलन) की आशा से बिरहाग्नि सह ली जाती है। किन्तु हाय भैया! एक ही गॉव में दूर–दूर रहना तो मृत्यु से भी बढ़ कर है।।

10. थोअं पि ण णीसरई मज्झह्णे उह सरीरतल लुक्का ।
आअवभएण छाई वि पहिअ ता किं ण वीसमसि ।। 1.49 ।।

11. सुसहउच्छअं जणं दुल्लहं पि दूराहि अम्ह आणन्तो ।
उ अ आरअ जर जीअं पि णेन्त ण कआवराहोसि ।। 1.50 ।।

12. पेम्मस्स विरोहिअसंधिअस्स पच्चक्खदिट्ठिविलिअस्स ।
उअअस्स व आविअसीअलस्स विरसो रसो होइ ।। 1.53 ।।

13. दिढमण्णुदूणिआएँ वि गहिओ दइअम्मि पेच्छह इमाए ।
ओसरइ बालुआमुट्ठि व्व माणो सुरसुरन्तो ।। 1.74 ।।

14. मुहमारुएण तं कण्ह गोरअं राहिआएँ अवणेन्तो ।
एताणं बल्लवीणं अण्णाणं वि गोरअं हरसि ।। 1.89 ।।

संस्कृच्छाया

10. स्तोकमपि न निःसरति मध्याह्ने पश्य शरीरतललुप्ता ।
आतपभयेन च्छायाऽपि पथिक तत्किं न विश्राम्यसि ।।

11. सुखपृच्छकं जनं दुर्लभमपि दूरादस्माकमानयन् ।
उपकारक ज्वर जीवमपि नयन् न कृतापराधोऽसि ।।

12. प्रेम्णो विरोधितसन्धितस्य प्रत्यक्षदृष्टव्यलीकस्य ।
उदकस्येव तापितशीतलस्य विरसो रसो भवति ।।

13. दृढमन्युदूनयाऽपि गृहीते दयिते प्रेक्षध्वमनया ।
अपसरति बालुकामुष्टिरिव मानः सुरसुरायमाणः ।।

14. मुखमारुतेन त्वं कृष्ण गोरजो राधिकाया अपनयन् ।
एतासांबल्ल्वीनामन्यासामपि गौरवं हरसि ।।

हिन्दी अनुवाद

10. देखो, मध्य दुपहरिया में शरीर में लुकाई (छिपी) हुई छाया तनिक भी धूप के भय से नहीं निकलती तो पथिक ! तुम भी (इस दुपहरी में) विश्राम क्यों नहीं कर लेते ?

11. सुख (आरोग्य) पूछने वाले दुर्लभजन (प्रियतम) को दूर से हमारे पास ले आने वाले उपकारी ज्वर! यदि (अब) हमारे प्राण भी ले जाओ तो कोई अपराध नहीं करोगे।।

12. जिसमें किया गया अपराध प्रत्यक्ष दिखाई देता हो, ऐसे टूट कर फिर से जोड़े गये प्रेम का रस, गरम करके ठण्डे किये गये जल की भाँति विरस हो जाता है।।

13. देखिए (तोसही), प्रियतम के पकड़ लेने पर, (उसके अपराध से) अत्यन्त क्रुद्ध और दुःखी भी भानिनी का मान मुट्ठी में बन्द बालू की तरह सुरसुरा कर निकल जाता है।।

14. अरे कृष्ण ! अपने मुँह की हवा से (फूँक कर) तुम राधा की आँख से गोधूलि दूर करते हुए इन दूसरी गोपियों के भी गौरव ('कृष्ण मेरे ही हैं' इस अहंकार) को भी हर लेते हैं।।

15. दिट्ठा चूआ अग्घाइया सुरा दक्खिणाणिलो सोहेओ।
कज्जाइं व्विअ गरूआइँ मामि को वल्ल हो कस्स ।। 1.79 ।।

16. कमलाअरा ण मलिआ हंसा उड्डाविआ ण व पिउच्छा।
केणाति गामतडाए अब्भं उत्ताणअं व्वूढम् ।। 2.10 ।।

17. कइअवरहिअं पेम्मं णत्थि व्विअ माम माणुसे लोए ।
अह होइ कस्स विरहो विरहे होत्तम्मि को जीअइ ।। 2.24 ।।

18. अहअं लज्जालुइणी तस्स अ उग्गच्छराइँ पेम्माइं ।
सहिआअणो वि णिउणो अलाहि किं पाअराएण ।। 2.27 ।।

19. रूअं अच्छीसु थिअं फरिसो अंगेसु जम्पिअं कण्णे।
हिअअं हिअए णिहिअं विओइअं किं त्थ देत्वेण ।। 2.32 ।।

संस्कृतच्छाया

15. दृष्टाश्चूता आघ्राता सुरा दक्षिणानिलः सोढः ।
कार्याण्येव गुरूकाणि मातुलानि ! को वल्लभः कस्य? ।।

16. कमलाकरा न मृदिता हंसा उड्डायिता न च पितृष्वसः ।
केनापि ग्रामतडागे अभ्रमुत्तानित क्षिप्तम् ।।

17. कैतवरहितं प्रेम नास्तीव मातुलानि ! मानुषे लोके ।
अथ भवति कस्य विरहो विरहे भवति को जीवति ।।

18. अहकं लज्जालोकिनी तस्य चोन्मत्सराणि प्रेमाणि ।
सखिकाजनोऽपि निपुणोऽपेहि, किं पादरागेण? ।।

19. रूपमक्ष्णोः स्थितं स्पर्शोऽन्गेषु जल्पितं कण्णे ।
हृदयं हृदये निहितं वियोजितं किमत्र दैवेन ।।

हिन्दी अनुवाद

15. आम के बौर देख लिए गये, मदिरा भी सूँघ ली गयी और दक्षिणपवन भी सहलिया गया।(लगता है, प्रवास में गये प्रिय के) कार्य मेरी अपेक्षा महत्वपूर्ण है। मामी! कौन भला किसका प्रिय है?।।

16. बुआ! गॉव के तालाब में किसी ने ताना हुआ आकाश गिरा दिया है किन्तु न कमल समूह मसले गये और न हंस ही उड़ाये गये हैं।।

17. मामी! इस मनुष्य लोक में निष्कपट प्रेम तो रह ही नहीं गया! अन्यथा किसका विरह होता और विरह होने पर जीता भी कौन?।।

18. मैं लज्जालु हूँ, उस (प्रियतम) का प्रेम भी उत्कट है, (मेरे) सखी जन चतुर हैं।(अतः) हटो, पैरों में महावर लगाने से क्या?।।

19. उस (प्रियतम) का रूप ऑखों में, स्पर्श अंगों में, बातें कानों में विद्यमान हैं, हृदय तो हृदय में रखा है, फिर यहॉ दैव ने क्या अलग किया?।।

20. दूइ तुमं विअ कुसला कक्खउमउआइं जाणसे बोल्लुं ।
कण्डूइअपण्डुरं जह ण होइ तह तं करेज्जासु ।। 2.81 ।।

21. सरए महद्धाणं अन्ते सिसिराइँ वाहिरूह्वाइं ।
जाआइं कुविअसज्जणहिअअसरिच्छाइँ सलिलाइं ।। 2.86 ।।

22. अज्जव्वेअ पउत्थो अज्ज द्विज सुंण्णआइँ जाआ इँ ।
रत्थामुहदेउलचत्तराइँ अम्हं च हिअआइं ।। 2.90 ।।

23. फुट्टन्तेण वि हिअएण मामि कह णिव्वरिज्जए तम्मि।
आदंसे पडिबिंबं विअ जम्मि दुःखं ण संकमइ ।। 3.4 ।।

24. पासासंकी काओ केच्छति दिण्णं पि पहिअघरणीए ।
ओअन्तकरअलो गलिअवलमज्झट्ठिअं पिण्डं ।। 3.5 ।।

संस्कृच्छाया

20. दूति त्वमेव कुशला कर्कशमृदुकानि जानासि वक्तुम् ।
कण्डूयितपाण्डुरं यथा न भवति तथा तं करिष्यसि ।।

21. शरदि महाह्रदानामन्त+शिशिराणि बहिरुष्णानि ।
जातानि कुपितसज्जनहृदयसदृक्षाणि सलिलानि ।।

22. अद्यैव प्रोषितोऽद्यैव शून्यकानि जातानि ।

रथ्यामुखदेवकुलचत्वराण्यस्माकञ्च हृदयानि।।

23. स्फुटिताऽपिहृदयेन मातुलानि! कथं निवेद्यते तस्मिन् ।
आदर्शे प्रतिबिम्बमिव यस्मिन्दुःखं न संक्रामति।।

24. पाशाशंकी काको नेच्छति दत्तमपि पथिकगृहिण्या ।
उपान्तकरतलावगलितवलयमध्यस्थितं पिण्डम् ।।

हिन्दी अनुवाद

20. अरी दूती, तुम्हं कुशल हो, कडवी मीठी बातें कहना जानतीहो, तुम वैसा ही करना जिसे वह खुजलाते हुए पीला न पड़ जाय अर्थात् लगने वाली बात कह के फिर सहला देना।।

21. शरत्काल में विशाल गहरे सरोवरों के जल, क्रुद्ध महानुभावों के हृदय के समान अन्दर तो शीतल होते हैं किन्तु बाहर गरम (से) लगते हैं।

22. वह आज ही परदेश गया और आज ही गलियां, मन्दिर, चबूरते और हमारे हृदय सूने हो गये।।

23. मामी! (तुम्हीं बताओ कि) विदीर्ण होते हुए हृदय से भी उससे (अपनी पीड़ा) कैसे कही जाय? जिसमें आईने में परछाईं की नाईं (तरह) दुःख संक्रान्त होता ही नहीं।

24. बरोही की पत्नी के द्वारा दिये जा रहे पिण्ड (कौरा) को कौवा ले ही नहीं रहा है क्योंकि उसके लटकते हाथ की कलाई में ढीले पड़े कंगन को वह फन्दा समझ रहा है (अतः फँसने की शंका से डर रहा है)।।

25. ओहिदि अहागमासंकिरीहिं सहिआहिं कुड्डलिहिंआओ।
दोतिण्णि तहि विअ चोरिआएँ रेहा पुसिज्जन्ति ।। 3.6 ।।

26. अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति गणरीए ।
पढम विअ दिअहद्धे कुड्डो रेहाहिं चित्तलिओ ।। 3.8 ।।

27. पुट्ठिं पुससु किसोअरि पडोहरंकोल्लपत्तचित्तलिअं ।
छेआहिं दिअरजाआहिं उज्जुए मा कलिज्जिहसि ।। 4.13 ।।

28. दढरोसकलुसिअस्स वि सुअणस्स मुहाहिं विप्पिअं कुतो।
राहुमुहम्मि विससिणो किरणा अमअं विअ मुअन्ति ।। 4.19 ।।

29. सूइज्जइ हेमन्तम्मि दुग्गओ पुप्फुआसुअन्धेण ।
धूमकविलेण परिविरलतन्तुना जुण्णवडएण ।। 4.29 ।।

संस्कृतच्छाया

25. अवधिदिवसागमाशंकिनीभिः सखीभिः कुड्यलिखिताः ।

द्वित्रास्तत्रैव चोरिकया रेखाः प्रोञ्छ्यन्ते ।।

26. अद्य गत इत्यद्य गत इत्यद्य गत इति गणनशीलया।
प्रथम एव दिवसार्धे कुड्यं रेखाभिश्चित्रितम् ।।

27. पृष्ठं प्रोञ्छ कृशोदरि पश्चाद्गृहांकोटपत्रचित्रितम् ।
विदग्धामिर्देवरजायाभि ऋजुके मा कलयिष्यसे ।।

28. दृढरोष्कलुषितस्यापि सुजनस्य मुखाद् विप्रियं कुतः ।
राहुमुखेऽपि शशिनः किरणा अमृतमेव मुञ्चन्ति ।।

29. सूच्यते हेमन्ते दुर्गतः करीषाग्निसुगन्धेन ।
धूमकपिलेन परिविरलतन्तुना जीर्णपटकेन ।।

हिन्दी अनुवाद

25. अवधि का दिन आ जाने की सम्भावना करने वाली सखियॉ (नायिका द्वारा) दीवाल पर खींची गयी दो तीन लकीरें वहीं चोरी छिपे मिटा देती हैं।।

26. 'आज गया', 'आज गया', 'आजगया' इस प्रकार (प्रवास के दिन) गिनने में लगी हुई नायिका ने, पहले ही दिनार्ध में, दीवाल को लकीरों से भर दिया।।

27. अरी तनुमध्ये! पिछवाड़े के घर वाले अंकोट पेड़ के पत्तों के निशान अपनी पीठ से पोंछ डाल। अरी भोली् कहीं तूं अपनी चतुर देवरानियों के द्वारा नान न ली आजो।।

28. अति रोष से कलुषित होने पर भी सुजन के मुख से अप्रिय (वचन) कहॉ? राहु के मुख में निगले जाने पर भी चन्द्रमा की किरणें अमृत ही निकालती हैं।।

29. हेमन्तकाल में दुरवस्था को प्राप्त गरीब आदमी, गोंइठे की महक वाले धुएँ से पीले पड़े अपने जीर्ण–शीर्ण (फटे–पुराने) वस्त्र से ही जान लिया जाता है।।

30. वसणम्मि अणुविग्गा विहवम्मि अगव्विआ भए धीरा ।
होन्ति अहिण्णसहावा समेसु विसमेसु सप्पुरिसा ।। 4.80 ।।

31. मरगअसूईविद्धं व मोत्तिअं पिअइ आअअग्गीओ।
मोरो पाउसआले तणग्गलग्गं उअअबिन्दुं ।। 4.94 ।।

32. सुप्पउ तइओ विगओ जामोत्ति सहिओ कीसमं भणह ।
सेहालिआणं गन्धो ण देइ सोत्तुं सुअह तुम्हे ।। 5.12 ।।

33. चावो सहासरलं सिच्छिवइ सरं गुणम्मि वि पडन्तं ।
अंकस्स उज्जुअस्स अ संबंधो किं चिरं होई ।। 5.24 ।।

34. कत्थ गअं रइबिंबं कत्थ पणट्ठाओ चन्दताराओ ।
गअणे वलाअपन्ति कालो होरं व कट्ठेइ ।। 5.35 ।।

संस्कृतच्छाया

30. व्यसनेऽनुद्विग्ना विभवेऽगर्विता भये धीराः ।
भवन्त्यभिन्नस्वभावाः समेषु विषमेषु सत्पुरूषाः ।।

31. मरकतसूचीविद्धमिव मौक्तिकं पिबत्यायतग्रीवः ।
मयूरः प्रावृट्काले तृणाग्रलग्नमुदकबिन्दुम् ।।

32. सुप्यतां तृतीयोऽपि गतो याम इति सख्यः कस्मान्मां भणथ।
शेफालिकानां गन्धो न ददाति स्वप्तुं स्वपित यूयम् ।।

33. चापः स्वभावसरलं विक्षिपति शरं गुणेऽपि पतन्तम् ।
वक्रस्य ऋजुकस्य च सम्बन्धः किं चिरं भवति ।।

34. कुत्र गतं रतिबिम्बं कुत्र प्रणष्टाश्चन्द्रताराः ।
गगने बलाकापंक्तिं कालो होरामिवाकर्षति ।।

हिन्दी अनुवाद

30. विपत्ति में अनुद्विग्न, वैभव होने पर अहंकाररहित, भय की स्थिति में धैर्यशाली सत्पुरूष ऊँच–नीच में भी समान स्वभाव (व्यवहार) वाले होते हैं।।

31. वर्षाकाल में मोर अपनी गर्दन फैला कर घास की नोक पर लगे, मरकत की सूई से बिंधे मोती की तरह लगने वाली जल की बूँदों को पी लेता है।।

32. 'सोओ, तीसरा पहर भी गया' – ऐसा मुझसे क्यों कहती हो सखियों! अरे मुझे तो शेफालिका के फूलों की खुशबू सोने ही नहीं देती, तुम सब सो जाओ।।

33. स्वभाव से सरल और गुण की ही शरण लेने वाले बाण को भी धनुष दूर फेंक देता है। (भाला) टेढे और सीधे का सम्बन्ध क्या देर तक रहता है?।।

34. सूर्य मण्डल कहॉ गया? और कहॉ गये चन्द्रमा तारे? (प्रावृट्) काल, आकाश में बगुलों की पंक्ति के समान होरा को काढ़ (खींच) रहा है।।

35. जइ भमसि भमसु एमेअ कण्ह सोहग्गगव्विरोगोट्टे ।
महिलाणं दोसगुणे वि आरक्खमो अज्ज विणहोसि ।। 5.47 ।।

36. तुह दंसणे सअण्हा सद्दं सोऊण णिग्गदा जाइं ।
तइ वोलीणे ताइं पआईं बोढव्विआ जाआ ।। 6.5 ।।

37. जं जं पलएमि दिसं परओ लिहिअव्व दीससे तत्तो ।
तुह पडिमापडिवाडिं वहइ व्व सअलं दिसाअक्कं ।। 6.30 ।।

38. पंकमइलेण छीरेक्कपाइणा दिण्ण जाणुवडणेण ।
आणन्दिज्जइ इलिओ पुत्तेण व्व सालिछेत्तेण ।। 6.67 ।।

संस्कृतच्छाया

35. यदि भ्रमसि भ्रमैवमेव कृष्ण ! सौभाग्यगर्वितो गोष्ठे ।
महिलानां दोषगुणयोर्विचारक्षमोऽद्यपि न भवसि ।।

36. तव दर्शने सतृष्णा शब्दं श्रुत्वा निर्गता यानि।
त्वयि व्यलीने तानि पदानि वोढव्यानि जातानि ।।

37. यां यां प्रलोके दिशं पुरतो लिखित इव दृश्यसे तत्र ।
तव प्रतिमापरिपाटीं वहतीव सकलं दिक्चक्रम् ।।

38. पंकमलिनेन क्षीरैकपायिना दत्तजानुवदनेन ।
आनन्धते हालिकःपुत्रेणेव शालिक्षेत्रोण ।।

हिन्दी अनुवाद

35. कृष्ण ! यदि घूमते हो तो सौभाग्यमद् से मतवाले हो इसी प्रकार इस गोष्ठ में घूमते रहो। तुम अभी तक महिलाओं के दोष – गुण का विचार करने में (भली भॉति समझने में) समर्थ नहीं हुए हो ।।

36. तुम्हारे दर्शन के लिए उत्कण्ठित होकर, तुम्हारी आवाज सुनकर वह जितने पग चल कर बाहर आयी थी, तुम्हारे न दिखाई देने पर (छिप जाने पर) फिर उसे ढोकर उतने ही पग वापस ले जाना पड़ा ।।

37. जिस जिस दिशा में देखती हूँ, वहीं उधर–उधर तुम चित्र लिखे से दिखाई पड़ते हो। लगता है कि समस्त दिड्मण्डल तुम्हारी प्रतिभा परम्परा (चित्रवीथी) को धारण करता है।।

38. मिट्टी से सने, दूध पीने वाले और घुटनों में मुँह छिपाये हुए पुत्र के समान कीचड़ों से भरे हुए, केवल पानी पीने वाले और घुटनों तक ऊपर उठे हुए अपने धान के खेत से किसान आनन्दित होता है।।

39. वाअइ किं भणिज्जउ के त्तिअमेत्तं व लिक्खिए लेहे ।
तुह विरहे जं दुक्खं तस्स तुमं चेअ गहिअत्थो ।। 6.71 ।।

40. दुस्सिक्खि अरअणपरिक्खएहिं घिटटोसि पत्थरे तावा ।
जा तिलमेत्तं वट्टसि मरगअ का तुज्झ मुल्लकहा ।। 7.27 ।।

41. कमलं मुअन्त महुअर पिक्ककइत्थाणं गन्धलोहेण।
आलेक्खलड्डुअं पामरो व्व छिविऊण जाणिहिसि ।। 7.41 ।।

42. गिंज्जन्ते मंगलगाइआहि धरगोत्तदिण्णकण्णाए ।
सोउं व णिग्गओ उअह होन्त बहुआइ रोमाञ्चो ।। 7.42 ।।

संस्कृतच्छाया

39. वाचा कि भण्यतां कियन्मात्रं वा लिख्यतां लेखे ।
तव विरहे यद्दुःखं तस्य त्वमेव गृहीतार्थः ।।

40. दुः शिक्षितरत्नपरीक्षकैर्घृष्टोऽसि प्रस्तरे तावत् ।
यावत्तिलमात्रं वर्तसे मरकत! का तव मूल्यकथा ।।

41. कमलं मुञ्चन्मधुकर पक्वकपित्थाणां गन्धलोभेन ।
आलेख्यलड्डुकं पामर इव स्पृष्ट्वा ज्ञास्पसि ।।

42. गीयन्ते मंगलगायिकाभिः वरगोत्रदत्तकर्णायाः ।
श्रोतुमिव निर्गतः पश्यत भविष्यद्वध्वाः रोमांचः ।।

हिन्दी अनुवाद

39. वाणी से कितना कहा जाय? और पत्र में भी कितना लिखा जाए? तुम्हारे वियोग में जो दुःख (पीड़ा) है, उसको तुम्हीं समझ सकते हो।।

40. रत्नपारखी दुःशिक्षित जौहरियों द्वारा हे मरकत ! तुम पत्थर पर इतना रगड़े गये हो कि तिलमात्र ही बचे हो। फिर भी तुम्हारे मूल्य का कहना ही क्या? अर्थात् उत्तम मरकत मणि तिलमात्र भी होने पर अत्यधिक मूल्यवान् होता है।

41. जैसे मूर्ख भी छूने मात्र से चित्र में बने लड्डू को जान लेता है (कि यह वास्तविक नहीं है) वैसे ही, हे भ्रमर! पके हुए कैथ की गन्ध के लोभ से, कमल को छोड़कर जाने पर तुम भी स्पर्श मात्र से वास्तविकता जान पाओगे।।

42. (विवाह के अवसर पर) मंगल गीत गाने वाली स्त्रियों के द्वारा (उच्चारित) वर का नाम सुनने के लिए कान लगायी हुई, होने वाली बहू का रोमांच भी कानों सुनने के लिए निकल पड़ा है।।

43. जं जं आलिहइ मणो आसावट्ठीहिं हिअअफलअम्मि।
तं तं बालो व्व विही णिहुअं हसिऊण पम्हुसइ ।। 7.56 ।।

44. उअ सिन्धवपव्वअसच्छहाइँ धूअतूलपुञ्जसरिसाइं ।
सोहन्ति सुअणु मुक्कोअआइं सरएसिअब्भाइं ।। 7.79 ।।

45. मज्झे पअणुअपंक अवहोवासेसु साणचिक्खिल्लं ।
गामस्स सीससीमन्तअं व रच्छामुहं जाअं ।। 7.82 ।।

संस्कृतच्छाया

43. यद्यदालिखति मन आशावर्तिकाभिर्हृदयफलके ।
तत्तद्बाल इव विधिर्निभृतं हसित्वा प्रमृशति ।।

44. पश्य सैन्धव पर्वतसदृक्षाणि धुत तूल पुञ्जसदृशानि ।
शोभन्ते सुतनु मुक्तोदकानि शरदि सिताभ्राणि ।।

45. मध्ये प्रतनुकपंकमुभयोः पार्श्वयोः श्यानकर्दमम् ।
ग्रामस्य शीर्षसीसन्तमिव रथ्यामुखं जातम् ।।

हिन्दी अनुवाद

43. आशा रूपी कूँची से मन हृदयफलक पर जो जो चित्र बनाता है, उन्हें उन्हें विधाता बालक की तरह चुपचाप हंसकर मिटा देता है।।

44. हे सुतनुके ! देखो, नमक के पहाड़ जैसे और धुनी हुई रूई के फाहो जैसे सफेद बादल, जल बरसा चुकने के बाद, (आकाश) में सुशोभित हो रहे हैं।

45. बीच में थोड़ी (गीली) मिट्‌टी वाली और दोनों किनारों पर सूखी कीचड़ वाली गॉव की पगडण्डी (या गली) उसके सिर पर (बालों के बीच) काढ़ी गयी मॉग (सीमन्त रेखा) जैसी हो गयी है।।

टिप्पणी

गाहासत्तसई – गाथासप्तशती । इसके कर्ता के रूप में 'हाल' नाम के राजा प्रसिद्ध है। हाल का अपर नाम 'शालिवाहन' भी हैं। वह दक्षिण भारत के एक राज्य के नरेश थे। इन्होंने लोक जीवन से सम्बद्ध प्राकृत भाषा में विरचित सात सौ गाथाओं का संकलन किया जो 'गाहासत्तसई' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता है। ध्वनि काव्य के उदाहरणों में इसकी गाथाएं प्रयुक्त हुई हैं। महाराज 'हाल' कवियों के आश्रयदाता थे। 'बृहत्कथा' (पैशाची प्राकृत में विचरित गद्यकाव्य) के कर्ता 'गुणाढ्‌य' इनके सभाकवि थे।

उअ – पश्य । 'उअ' एक आश्चर्यबोधक अव्यय है। 'पश्य' इसका संस्कृत रूपान्तर नहीं है, यह 'उअ' की भावच्छाया है। वर्तमान में आश्चर्यसूचक अव्यय के रूप में 'उअ' या 'उइ' प्रसिद्ध है। यह शब्द सहसा मुँह से निकल जाता है। यथा – उइ दैया ! या उइ मैया! । **बालबालुंकितन्तुकुडिलाणं** – बालबालुंकितन्तु कुटिलानाम् । नन्हीं (बतिया) ककड़ी के (वृन्त पर स्थित) तन्तु की तरह टेढ़ा मेढ़ा जैसा । पम्माणं (प्रेम्णाम्) का विशेषण । अनेक टीकाकारों ने 'बालुंकि' की

संस्कृतच्छाया 'कर्कटिका' दी है किन्तु ऐसा करने की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि 'ककड़ी' के लिए 'बालुंकि' या 'बालुंकी' शब्द संस्कृत कोशों में पठित है (द्रष्टव्य–संस्कृत–हिन्दी–कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ. 715)। ककड़ी की बतिया के सिरे वाले डंठल पर सर्पिल रचना तंतु की होती है। जो अत्यन्त कोमल होता है और तनिक दबाव से ही टूट जाता है। यहाँ प्रेम के साथ उसकी उपमा उचित है। **सरीरतललुक्का** – शरीरतललुप्ता । दोपहरी (मध्याह्न) में सूर्य आकाश के बीचो बीच रहता है, अतः किसी भी वस्तु की छाया उसी में समाहित रहती है। शरीरस्य तलं शरीरतलं, तस्मिन् शरीरतले लुप्ता शरीरतललुप्ता । **लुप्ता** – लुप् + क्त + टाप् । इस गाथा में उत्तम व्यंग्यार्थ है। ग्रीष्म की दोपहरी में कोई अपने घर से बाहर निकल कर देखने वाला नहीं है। अतः हे पथिक! यदि मेरे धर में विश्राम के बहाने तुम मेरा उपभोग करना चाहो, तो तुम्हारा स्वागत है। **पुप्फुआसुससअन्धेण** – करीषाग्निसुगन्धेन । गोबर से पाथे गये (बनाये गये) सूखे 'उपले' सुलगते हुए जब धुआँ छोड़ते हैं तो उनसे एक प्रकार की गन्ध निकलती है। उस धुएँ के बराबर लगने से कपड़े धूसर–पीले पड़ जाते हैं। जाड़े में फटे पुराने कपड़े पहन कर शीत से बचने के लिए कण्डे की धुआँ युक्त आँच सेंकने वाले दरिद्र का अत्यन्त सटीक वर्णन हुआ है। 'पुप्फुआ'की सही संस्कृतच्छाया उपलबध नहीं। **साणचिक्खिलम्** –श्यानकद्रमम् । वस्तुतः संस्कृततच्छाया–'श्यानचिकिलम्' होनी चाहिए । 'चिक्खिलम्' शब्द के समीप 'चिकिलम्' ही है न कि 'कर्दमनम्' चिकिल शब्द का अर्थ कीचड़,पंक या कर्दम है (द्र. – संस्कृत हिन्दी–कोश,वा. शि. आप्टे, पृ. 380)।

4.2 रावणवहो

णमह अतडिढअतुंग अवसारिअवित्थिअं अणोणअगहिरम् ।
अप्पलहुअपरिसण्हं अणाअपरमत्थपाअडं महुमहणम् ।।1।।
दणुएन्दरूहिरलग्गे जस्स फुरन्ते णहप्पहाविच्छड्डे ।
गुप्पन्ती विवलाआ गालेअव्व थणंसुए महासुरलच्छी ।।2।।
पीणत्तणदुग्गेज्झं जस्स भुआअन्तणिट्ठुरपरिग्गहिअम् ।
रिट्ठस्स विसमवलिअं कण्ठं दुक्खेण जीविअं वोलीणम् ।।3।।
ओआहिअमिहिवेढो जेण परूढगुणमूललद्धत्थामो ।
उम्मूलन्तेण दुभं पारोहोव्व खुडिओ महेन्दस्स जसो ।।4।।

संस्कृतच्छाया

नमतावर्धिततुंगमप्रसारित विस्तृतममवनतगमीरम् ।
अप्रलघुकपरिश्लक्ष्णनज्ञातपरमार्थप्रकटं मधुमथनम् ।।1।।

दनुजेन्द्ररुधिरलग्ने यस्यस्फुरतिनखप्रभाविच्छर्दे ।

गुप्यन्ती विपलायितागलित इव स्तनांशुके महासुरलक्ष्मीः ।।2।।

पीनत्वदुर्ग्राह्यं यस्य भुजान्तनिष्ठुरपरिगृहीतम् ।

अरिष्टस्य विषमवलितं कण्ठं दुःखेन जीवितं व्यतिक्रान्तम् ।।3।।

अवगाहितमहीवेष्टं येन प्ररूढगुणमूललब्धस्थामः ।

उन्मूलयता द्रुमं प्ररोह इव खण्डितं महेन्द्रययशः ।।4।।

हिन्दी अनुवाद

परमार्थतत्त्व के रूप में अज्ञेय होते हुए भी जो प्रकट रूप में मधुदानव का मंथन करने वाले (विष्णु) हैं, उन्हें प्रणाम करो, जो बिना बढ़े हुए ही ऊँचे (हैं), बिना फैले हुए ही सर्वत्र व्याप्त (हैं), बिना झुके हुए ही गहरे हैं और बिना हलके हुए ही सूक्ष्म हैं।।1।।

दनुजराज (हिरण्यकशिपु) के खून से रंगे हुए जिनके नखों के कान्तिजाल के फैलने पर, उस महासुर की लक्ष्मी स्तनांशुक के गिर जाने पर लज्जित हो छिपती हुई भाग गयी (इन्हें प्रणाम करो)।।2।।

बहुत मोटा होने से बड़ी मुश्किल से पकड़ में आने वाला अरिष्टासुर का गला, जिसके पंजे द्वारा निष्ठुरतापूर्वक पकड़ कर ऐंठ दिया गया और उसके प्राण अत्यन्त कष्ट से निकले। (उन्हें प्रणाम करो)।।3।।

(पारिजात) वृक्ष उखाड़ते हुए जिन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल का अवगाहन करने वाले, बढ़े हुए गुणों के कारण स्थिर देवराज इन्द्र के यश को नन्हें अंकुर के समान (अनायास उखाड़ कर) नष्ट कर दिया ।।4।।

णमह अ जस्स फुडरवं कण्ठच्छाआघडन्तणग्गिसिहम् ।

फुरइ फुरिअट्टहासं उद्धपडित्तितिमिरं विअ दिसाअक्कम् ।।5।।

वेवइ जस्स सविडिअं वलिडं महइ पुल आइअत्थणअलसम् ।

पेम्मसहावविमुहिअं वीआवासगमणूसुअं बामद्धम् ।।6।।

जस्स विलग्गन्ति णहं फुडपडिसद्दा दिसाअलपडिक्खलिआ।

जोण्हाकल्लोला विअ ससिधवलासु रअणीसु हसिअच्छेआ।।7।।

णट्टारम्भकुहिआ जस्स भउब्बन्तमच्छपहअजलरआ।

होन्ति सलिलुद्धुमाइअधूमाअन्तवडवामुहा मअरहरा ।।8।।

संस्कृतच्छाया

नमत च यस्य स्फुटरवं कण्ठच्छायाघटमाननयनाग्निशिखम्।

स्फुरति स्फुरिताट्टहासमूर्ध्वप्रदीप्ततिमिरमिव दिक्चक्रम् ।।5।।

वेपते यस्य सव्रीडं वलितुं महति पुलकाचितस्तनकलशम् ।
प्रेमस्वभावविमुषितं द्वितीयावकाशगमनोत्सुकं वामार्धम् ।।6।।
यस्य विलगन्ति नभः स्फुटप्रतिशब्दाः दिक्तलप्रतिस्खलिताः।
ज्योत्स्नाकल्लोला इव शशिधवलासु रजनीसु हसितच्छेदाः ।।7।।
नृत्यारम्भक्षुभिता यस्य भयोद्भ्रान्तमत्स्य प्रहतजलरयाः ।
भवन्ति सलिलोद्ध्मापितघूमायमानवडवामुखा मकरगृहाः ।।8।।

हिन्दी अनुवाद

जिसकी कण्ठच्छवि से मेल मिलाती हुई शब्दायमान तृतीय नेत्राग्नि की लपटें, अट्टहास सी करती हुई, मानो दिशााओं में व्याप्त ऊपर के अन्धकार को जलाती हुई चमक रही हैं, उस (भगवान् शिव) को नमस्कार करो।।5।।

जिस (अर्धनारीश्वर) का वामार्ध, पुलकोद्गमयुक्त कुचकुम्भ वाला, प्रेम के स्वभाववश विमूढ़ हो दूसरी (दाहिने) ओर जाने के लिए उत्सुक हो झुकते ही लज्जा के कारण कॉपने लगता है, उस (भगवान् शिव) को नमस्कार करो।।6।।

जिसकी स्पष्ट प्रतिध्वनि वाली, दिगन्तों से परावर्तित हॅसी, चॉदनी की लहरों के समान चन्द्रधवल रातों में आकाश का स्पर्श का स्पर्श करती है, (उसे नमस्कार करो)।।7।।

जिसके नृत्यारम्भ से विक्षुब्ध 'घड़ियालों के घर' अर्थात् समुद्र का जल प्रवाह, मय से व्याकुल मछलियों से अवरूद्ध हो जाता है और ऊपर उठते हुए जल से बुझता हुआ वडवानल धुऑ–धुऑ हो जाता है।।8।।

अहिणवराआरद्धा चुक्कक्खलिएसु विहडिअपरिट्ठविआ।
मेत्तिव्व पमुहरसिआ णिव्वोढुं होइ दुक्करं कव्वकहा ।।9 ।।
परिवड्ढइ विण्णाणं सम्भाविज्जइ जसो विढप्पन्तिगुणा।
सुव्वइ सुडरूस चरिअं किं तं जेण ण हरन्ति कव्वालावा ।।10।।
इच्छाइ व धणरिद्धी जोव्वणलद्धव्व आहिआईअ सिरी ।
दुक्खं सम्भाविज्जइ बन्धच्छाआइ अहिणवा अत्थगई ।। 11 ।।
तं तिअसबन्दिमोक्खं समत्थतेल्लोक्क हिअअसल्लुद्धरणं ।
सुणह अणुराअइण्हं सीआदुक्खक्खअं दहमुहरस्स वहम् ।। 12 ।।

संस्कृतच्छाया

अभिनवरागारब्धा च्युतस्खलितेषु विघटित परिस्थापिता।
मैत्रीव प्रमुखरसिका निर्वोदुं भवति दुष्करं काव्यकथा ।।9 ।।

परिवर्धते विज्ञानं सम्भाव्यते यशो विधीयन्ते गुणाः ।

श्रूयते सुपुरुषचरितं किं तद्येन न हरन्ति काव्यालापाः ।। 10 ।।

इच्छयेब धनऋद्धिर्यौवनलब्धेवाभिजात्या श्रीः ।

दुःखं सम्भाव्यते बन्धच्छाययाभिनवार्थगतिः ।। 11 ।।

तं त्रिदशबन्दि (बन्ध) मोक्षं समस्तत्रैलोक्यहृदयशल्योद्धरणम्।

शृणुतानुरागचिह्नं सीतादुःखक्षयं दशमुखस्यवधम् ।। 12 ।।

हिन्दी अनुवाद

नये प्रेम से जिसका आरम्भ होता है, जो प्रमादवश विचलित हो जाने पर खण्डित होने के कारण पुनः संयोजित की जाती है, जिसमें रस (आनन्द या प्रीति) ही मुख्य होता है, ऐसी मित्रता की भाँति अभिनव प्रेम से आरम्भ होने वाली, प्रमादवश (रीति या मार्ग से) स्खलित हो जाने पर पुनः संयोजित की जाने वाली, रस (आनन्द या प्रीति) की प्रधानता वाली काव्य कथा का निर्वाह अत्यन्त दुष्कर होता है।। 9 ।।

विशेष ज्ञान की वृद्धि होती है, यश अर्जित होता है, गुणों का आधात होता है, सत्पुरूषों के चरित्र सुने जाते हैं, काव्य कथा में क्या नहीं है? जिससे वह मनोहारी होती है।।10।।

चाहने के अनुसार धनसम्पत्ति, कुलीनता के साथ यौवनोचित शोभा सम्पन्नता, और काव्य बन्ध की रमणीयता के साथ नये नये अर्थों की योजना – ये सब बड़ी मुश्किल से ही हो पाते हैं।।11।।

बन्दी बनाये गये देवताओं की मुक्ति रूप, सम्पूर्ण त्रिलोकी के हृदय में चुभे हुए शूल के निःसरणरूप, सीता के घोर कष्ट के समाप्ति रूप,(सहृदयों की) प्रीति के प्रतीक उस रावण के वध को सुनें।।12।।

अह पडिवण्णविरोहे राहववम्महसरेण माणब्भहिए ।

विद्धाइ वालिहिअए राअसिरोअ अहिसारिए सुग्गीवे ।।13।।

ववसाअरइपओसो रोसगइन्ददढसिंखलापडिबन्धो।

कह कह वि दासरहिणोजअकेसरिपञ्जरो गओ घणसमओ।।14।।

गमिआ कदम्बवाआ दिट्ठं मेहन्धआरिअं गअणअलम् ।

सहिओ गज्जितसद्दो तह विहु से णत्थि जीविए आसंघो ।।15।।

तो हरिवइजसवन्थो राहवजीअस्स पथमहत्थालम्बो।

सीआबाहविहाओ दहमुहवज्झदिअहो उवगओ सरओ।।16।।

संस्कृतच्छाया

अथ प्रतिपन्नविरोधे राघवमन्मथशरेण मानाभ्यधिके ।
विद्ध्वा बालिहृदये राज्यश्रियाभिसारिते सुग्रीवे ।।13।।
व्यवसायरविप्रदोषो रोषगजेन्द्रदृढश्रृंखलाप्रतिबन्धः ।
कथं कथमपि दाशरथेर्जयकेसरिपञ्जरो गतो धनसभयः ।।14।।
गमिताः कदम्बवाताः दृष्टं मेघान्धकारितं गगनतलम् ।
सोढो गर्जितशब्दस्तथापि खल्वस्या नास्ति जीवितासंगः ।।15।।
ततो हरिपतियशःपथो राघवजीवस्य प्रथम हस्तावलम्बः ।
सीताबाप्शविधातो दशमुखवध्यादेवस उपगता शरत् ।।16।।

हिन्दी अनुवाद

विरोध से भरे हुए और अभिमान की पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए बालि के हृदय में रामरूपी कामदेव के द्वारा शरवेध करने पर (जब) राज्य लक्ष्मी ने सुग्रीव के साथ अभिसार किया, (अर्थात् राम द्वारा बालिवध के पश्चात् सुग्रीव के राजा होने पर ।।13।।

राम के प्रयत्न रूपी सूर्य के लिए रात्रि, क्रोध रूपी गजराज के लिए मजबूत जंजीर का बन्धन और जयरूपी सिंह के लिए पिंजड़ा रूपी वर्षाकाल किसी तरह बीत ही गया।।14।।

कदम्ब (–पुष्पों की गन्ध मिश्रित) हवायें भी बिता ली गयीं, बादलों से ढॅका श्याम गगनतल भी देख लिया गया, बादलों के गर्जना शब्द भी सह लिये गये फिर भी जीवन के प्रति व्यामोह नहीं हुआ ।।15।।

तत्पश्चात् बानरराज (सुग्रीव) की कीर्ति का मार्ग, राम के प्राणों का एकमात्र हाथ का सहारा, सीता के ऑसुओं का निवारक,दशमुख (रावण) के वध के योग्य दिवस रूप शरत्काल आ पहुँचा ।।16।।

रइअरकेसरण्विहं सोहइ धवलब्भदलसहस्सपरिगअम् ।
महुमहदंसणजोग्गं पिआमहुप्पत्तिपंकअं व णहअलम् ।।17।।
दिणमणिमोहप्फुरिअं गलिअं धणलच्छिरअणरसणदामम् ।
अदुमअणबाणवत्तं णहमन्दारणवकेसरं इन्दधणुम् ।।18।।
धुअमेहमहुअराओ धणसमआअट्टिओणअविमुक्काओ ।
णहपाअवसाहाओ णिअअट्ठाणं व पडिगभाओ दिसाओ ।।19।।
अहिणवणिद्धालोओ उद्देसासारदीसमाणजललवा ।
जिम्माअमज्जणसुहा दखसुआअच्छविं वहन्ति व दिअहा ।। 20।।

संस्कृतच्छाया

रविवरकेसरनिवहं शोभते धवलाभ्रदलसहस्रपरिगतम् ।

मधुमथदर्शनयोग्यं पितामहोत्पत्तिपंकजमिव नभस्तलम् ।।17।।

दिनमणिमयूखस्फुरितं गलितं धनलक्ष्मीरत्नरशनादाम।

ऋतुमदनबाणवक्त्रं नभोमन्दारनवकेसरमिन्द्रधनुः ।।18।।

धुतमेंघंमधुकरा धनसमयाकृष्टावनत विमुक्ता ।

नभः पादपशाखा निजकथानमिव प्रतिगता दिशः ।।19।।

अभिनवस्निग्धालोका उद्देशासारदृश्यमानजललवाः ।

निर्माण (निर्मित) मज्जनसुखा दरशुष्कच्छविं वहन्तीव दिवसाः।।20।।

हिन्दी अनुवाद

सूर्य की किरणों रूपी केसर समूहवाला, हजारों श्वेत मेघखण्ड रूपी पंखुड़ियों वाला, भगवान् विष्णु के दर्शन योग्य गगनतल, ब्रह्मा के उत्पत्तिकमल जैसा सुशोभित हुआ ।।17।।

सूर्य की किरणों से प्रकाशित, मेघलक्ष्मी की रत्ननिर्मित करधनी, वर्षा ऋतुरूपी कामदेव का बाणाग्र, आकाशरूपी पारिजातपुष्प का केसर –इन्द्रधनुष विगलित हो गया (अदृश्य हो गया) ।।18।।

जिनसे बादल रूपी भौंरे हिलाकर भगा दिये गये हैं, ऐसी वर्षाकाल द्वारा खींच कर झुकाई जाने के बाद (फिर) छोड़ दी गयी, आकाश रूपी वृक्ष की दिशारूपी डालियॉ मानो अपनी पहले की जगह में लौट गयी हों।।19।।

नये कोमल प्रकाश से भरे हुए दिन, एक स्थान पर भारी वर्षा के कारण दिखायी पड़ने वाले जलकणों के कारण स्नान सुख प्राप्त कियेहुए लोगों के समान, तनिक शुष्कता की शोभा को धारण करते हुए से लग रहे हैं।।20।।

सुहसम्माणिअणिद्दो विरहालुंखिअसमुद्ददिण्णुक्कण्ठो।

असुवन्तो वि विबुद्धो पदमविवुद्धसिरिसेविओ महुमहणो।।21।।

सोहइ विसुद्धकिरणो गअणसमुद्दम्भि रअणिवेलालग्गो।

तारामुत्तावअरो फुडविहडिअमेहसिप्पि संपुडमुक्को ।।22।।

सत्तच्छऑण गन्धो लग्गइ हिअए खलइ कलम्बामोओ।

कलहंसाणं कलरओ ठाइण संठाइ परिणअं सिहिविरुअम् ।।23।।

पीणपओहरलग्गं दिसाणं पवसन्तजलअसमअविइण्णम् ।

सोहग्गपणमइण्हं पम्माअइ सरसणहवअं इन्दधणुम्।।24।।

संस्कृतच्छाया

सुखसम्मानितनिद्रो विरहस्पृष्टमुद्रदत्तोत्कण्ठः ।

अस्वपन्नपि विबुद्धः प्रथमविबुद्धश्रीसेवितो मधुमथनः।।21।।

शोभते विशुद्ध किरणो गगनसमुद्रे रजनिवेलालग्नः ।

तारामुक्ताप्रकरः स्फुटविधटितमेघशुक्तिसम्पुटमुक्तः ।।22।।

सप्तच्छदानां गन्धो लगति हृदये स्खलति कदम्बामोदः ।

कलहंसानां कलरवस्तिष्ठति न सन्तिष्ठते परिणतं शिखिविरूतम्।।23।।

पीनपयोधरलग्नं दिशां प्रवसज्जलदसमयवितीर्णम् ।

सौभाग्यप्रथम चिह्नं प्रम्लायति सरसनखपदमिन्द्रधनुः ।।24।।

हिन्दी अनुवाद

सुखप्राप्ति से निद्रा का सम्मान करने वाले, विरह दशा में पड़े हुए समुद्र के प्रति व्याकुल, पूर्वतः जागी हुई लक्ष्मी से सेवित, भगवान् विष्णु (नारायण) वस्तुतः न सोने पर भी जागे (सो कर उठे अर्थात् देवोत्थानी एकादशी आ गयी) ।।21।।

फट कर अलग होने वाले मेघ रूपी सीपी के सम्पुट से निकला हुआए, आकाश रूपी समुद्र में रात्रि रूपी तट पर फैला हुआ तारा रूपी मोतियों का समूह स्वच्छ किरणों को बिखेरता हुआ सुशोभित हो रहा है।।22।।

कदम्बों की गन्ध दूर हो रही है, छितवन की गन्ध हृदय में लग रही हैं, कलहंसों का कूजन सर्वत्र व्याप्त हो रहा है और अब मोरों की केका ध्वनि विरस होकर समाप्त हो गयी है।। 23।।

प्रस्थापन करते हुए वर्षा काल द्वारा दिया गया (और) दिशाओं के विशाल स्तनों पर लगा हुआ सौभाग्य (पतिप्रेम) का प्रथम चिहन सरस नखक्षत रूप (वक्र) इन्द्र धनुष म्लान हो रहा है।।24।।

पज्जत्तसलिलधोए दूरा लोक्कन्तणिम्मले अणअले ।

अच्चासण्णं व ठिअं विमुक्कपरभाअपाइडं ससिबिम्बम् ।।25।।

चिरआलपडिणिउत्तं दिसासु घोलन्तकुमुअरअवेल्लविअम्।

भमइ अलद्धासाअं कमलाअरदंसणूसुअं हंसउलम्।।26।।

चन्दाअवधवलाओ फुरन्तदिअसरअणन्तरिअसोहाओ।

सोम्मे सरअस्स उसेमुत्तावलिविब्भमं वहन्ति पिसाओ ।।27।।

भमररुअदिण्णसण्णं धण्रोहविमुक्कदिण अरअरालिट्ठम ।

फरिससुहाअन्तं विअ पडिबुज्झइ जलणिहितणालं णलिणम्।।28।।

संस्कृतच्छाया

पर्याप्तसलिलधौते दूरा लोक्यमाननिर्मले गगन तले।

अत्यासन्नमिव स्थितं विमुक्त पर भाग प्रकटं शशिबिम्बम्।।25।।

चिरकालप्रतिनिवृतं दिक्षु धूर्णमान कुमुदरजोविलिप्तम् ।

भ्रमत्थलब्धास्वादं कमलाकरदर्शनोत्सुकं हंसकुलम् ।।26।।

चन्द्रातपधवला स्फुरद्दिवसरत्नान्तरितशोभाः ।

सौम्ये शरद उरसि मुक्तावलिविभ्रमं वहन्ति निशाः ।।27।।

भ्रमररूतदत्तसंज्ञं घनरोधविमुक्तदिनकराश्लिष्टम् ।

स्पर्शसुखायमानमिव प्रतिबुध्यते जलनिहितनालं नलिनम् ।।28।।

हिन्दी अनुवाद

(वर्षा की) प्रचुर जलराशि से अच्छी तरह घुले हुए और दूर से ही देखने में निर्मल आकाशमण्डल में, मेघों से मुक्त, प्रकाशमान चन्द्रमा, अत्यन्त पास में स्थित सा लगता है ।।25।।

दिशाओं में उड़ते हुए कुमुदों की पराग धूलि से लिप्त, बहुत समय बाद लौटा हुआ, कमलाकर की झलक पाने के लिए उत्सुक हंस समूह, (बिसनी तन्तु का) आस्वाद किये बिना ही घूम रहा है।।26।।

द्योतमान दिनमणि से नष्ट हुई शोभा वाली, चन्द्रिकोज्ज्वल रात्रियां सौम्य शरत्काल के वक्षःस्थल पर मोती की लड़ियों की शोभा धारण कर रही है।। 27 ।।

भौरों की गुञ्जार से उत्प्रेरित, बादलों से मुक्त सूर्य की किरणों से गले लगाया जाकर स्पर्शसुख का अनुभव करता हुआ सा, जल में डूबी हुई नाल वाला कमल जागता है (खिल रहा है) ।।28।।

मभ्यधणुग्धोसा कमलवणक्खलिअ लच्छिणेड़रसद्दो।

सुव्वइ कलहंसरओमहुअरिवाहित्तणलिणिपडिसंला ओ ।।29।।

खुडिडप्पइअमुणालं दट्टूण पिअं व सिढिलवलअं णलिणिम्

महुअरिमहुरुल्लावं महुमअतम्बं मुहं व घेप्पइ कमलम् ।।30।।

पज्जत्तकमलगन्धो महुत्तण्णाओसरन्तणवकुमुअरओ ।

भमिरभमरोअइव्वो संचरइ सदाणसीअरो वणवाओ ।।31।।

कण्टइअणूमिअंगी थोअत्थोओसरन्तमुद्धसहावा ।

रइअरचुम्बिज्जन्तं ण णिअत्तेइणलिणी मुहं विअ कमलम्।।32।।

परिघोलन्तक्खलिअं सत्तच्छअकुसुमधवलरेणुक्खइअम् ।

उत्पुसइ दाणवंक मुहुत्तगअकण्ण चामरं ममरउलम् ।।33।।

संस्कृतच्छाया

मन्मथधनुर्निघोषः कमलवनस्खलितलक्ष्मीनूपुरशब्दः ।
श्रूयते कलहंसरवो मधुकरीव्याहृत नलिनीप्रतिसंल्लापः ।।29।।
खण्डितोत्पाटितमृणालीं दृष्ट्वा प्रियामिव शिथिलवलयां नलिनीम्।
मधुकरीमधुरोल्लापं मधुमयाताम्रं मुखमिव गृह्यते कमलम्।।30।।
पर्याप्तकमलगन्धो मध्वार्द्रापसरन्नव कुमुदरजः ।
भ्रमद्भ्रमरोपजीव्यः सञ्चरति सदानशीकरो वनवातः ।।31।।
कण्टकितगोपितांगी स्तोकस्तोकापसरन्मुग्धस्वभावा।
रविकरचुम्ब्यमानं न निवर्तयति नलिनी मुखमिव कमलम्।।32।।
परिधूर्णमानस्खलितं सप्तच्छ कुसुमधवलरेणूत्खचितम् ।
उत्प्रोञ्छति दानपंक मुहूर्तगजकर्णचामरं भ्रमरकुलम् ।।33।।

हिन्दी अनुवाद

कामदेव के धनुष की टंकार, कमलवन में फिसलती हुई लक्ष्मी के नूपुरों की रूनझुन और कलहंसों की आवाज, मधुकरी और कमलिनी के बीच बात चीत के रूप में सुनाई देती है।। 29।।

तोड़कर निकाले गये मृणालागें वाली कमलिनी को ढीले पड़े कंगन वाली प्रियतमा की भाँति देखकर, मधुकरी के मधुर रव से युक्त मधुमय रक्तमुख के सम्मान कमल (सहृदयों द्वारा) ग्रहण किया जाता है।।30।।

कमलगन्ध से परिपूर्ण, घूमते हुए भौंरों द्वारा सेव्य, मत्तगज के मदजल सीकरों से युक्त वनवायु, नये कुमुदपुष्पों के मकरन्द सेगीले पराग को विकीर्ण करता हुआ बह रहा है।।31।।

कण्टकित नाल को जल में छिपाये, कोरकभाव का शनैः शनैः त्याग करने वाला कमालिनी सूर्यकिरणों द्वारा स्पृश्यमान मुखकमल को नहीं रटाती। यथा पुलकित अंगों के छिपाने वाली, मुग्धा भाव का क्रमशः परित्याग वाली नायिका,प्रेंमी के द्वारा चुम्बन किये जाते हुए मुखकमल को नहीं हटाती।।32।।

चक्कर लगाते हुए फिसल जाने वाला, छितवन के फूलों के उज्ज्वल पराग से सना हुआ, क्षणभर के लिए गज के कानों को चॅवर बनने वाला भ्रमसमूह उसके मदजल के लेप को पोंछ देता है।।33।।

टिप्पणी

रावण वर्हो – रावरणवधः । यह प्राकृत का सर्वोत्तम महाकाव्य है। इसके दो अन्य नाम भी प्राप्त होते हैं – सेतुबंधों और दसमुहवहो। इसके प्रणेता महाकवि का नाम प्रवरसेन है। इस काव्य में पन्द्रह आश्वास हैं। इस पाठ में प्रथम आश्वास के तैंतीस प्राकृत पद्यों को लिया गया है। इसके उत्तरार्ध (अर्थात् प्रथम आश्वास के पद्य 17 से 33 तक) शरद् ऋतुका स्वाभाविक और

मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया गया है। 'गाहासत्तई'की ही तरह 'रावणवहो' भी महाराष्ट्री प्राकृत में विरचित है। रावणस्स वहो रावणस्स वहो रावणवहो, षष्ठी तत्पुरूष समास। परूढगुणमूललद्धत्थामो – प्ररूढगुणमूललब्धस्थामः । प्रकृष्ठेन रूढः प्ररूढः । प्ररूढो गुण एव मूलं प्ररूढगुणमूलम्, तेन प्ररूढगुजमूलेन लब्धः स्थामः इति प्ररूढ गुणमूललब्धस्थामः। 'यशः' का विशेषण । जैसे बढ़ी हुई और गहरी धंसी हुई जड़ों के कारण वृक्ष सुदृढ़ और स्थिर होता है। और उसे उखाड़ना अत्यन्त कठिन होता है वैसे ही देवेन्द्र के बढ़े गुणों के कारण उनका यश भी सुदृढ़ और स्थिर था किन्तु विष्णु (कृष्ण) ने स्वर्ग से पारिजात को उखाड़ने के साथ ही इन्द्र का यश भी उखाड़ दिया। **ववसायरइपओसो** – व्यवसायरविप्रदोषः। (रामस्य) व्यवसायय एवरविः तत्कृते प्रदोषः इति व्यवसायरविप्रादोषः जैसे रात में सूर्य लुप्त रहता है इसी तरह वर्षा काल में राम को कोई प्रयत्न सफल न था। **रोसगइन्ददढसिंखलापडिबन्धो** – रोषगजेन्द्रदृढश्रृंखलाप्रतिबन्धः । दृढ़ा च सा श्रृंखला इति दृढश्रृंखला । रोष एवं गजेन्द्रः रोषगजेन्द्रः तस्मै दृढश्रृंखलायाः प्रतिबन्धः रोषगजेन्द्र दृढश्रृंखा–प्रतिबन्धः। जैसे मजबूत जंजीर से बंधा हुआ मतवाला हाथी प्रतिबन्धित रहता है, विवश रहता है वैसे ही राम का क्रोध भी वर्षा काल के आगे विवश था। दासरहिणोजअकेसरिपञ्जरो – दाशरथेः जयकेसरीपञ्जरः। दशरथस्य अपत्यं पुमान् दाशरथिः तस्य दाशरथे। जय एव केसरी जय केसरी तत्कृते पिञ्जर जयकेसरी पिञ्जरः । बलवान् भी सिंह पिंजड़े में कैद होकर लाचार होता है। उसी तरह राम का विजय भी वर्षा काल रूपी पिंजड़े में बन्द था। उपर्युक्त तीनों पदसमूह रूपक अलंकार से युक्त है। और 'घणसमओ' के विशेषण हैं। **णहपाअवसाहाओ** – नभःपादपशाखाः । नभ एव पादपः। पादेन मूलेन पिबतीति पादपः। नभः पादपस्य शाखाः नभः पादपशाखा। आकाश रूपी वृक्ष की डालियॉ। रूपकालंकार। यह 'दिशाः' का विशेषण है। पद्य में उत्प्रेक्षालंकार का रूचिर प्रयोग हुआ है। कवि की अत्यन्त मौलिक कल्पना है कि ये दिशाऍ आकाशरूपी वृक्ष की डालियॉ हैं। वर्षा काल ने इन्हें मानो खींच कर झुका दिया था और अब वे छोड़ दी गयी हैं तो पुनः अपने स्थान पर पहुॅच गई है। वर्षा में घने मेघों के कारण अन्धकारित दिशाएं पुनः साफ (स्पष्ट) हो गयी हैं।

4.3 कर्पूरमञ्जरी

(चतुर्थजवनिकान्तरम्)

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा – अहो! गाढ़अरो गिम्हो पवणो अ प्पचण्डो, ता कधं णु सहिदब्बे,जदों
इह कुसुमसरेक्कगोअराणां इदमुभअं वि सुदुस्सहं त्ति मणे।

जरठरइकरालिदो अकालो तहअ जणेण पिएण विप्पलम्भो।।1।।

विदूषकः – एक्के दाव मम्मह बाहणिज्जा अण्णे दाव सोसणिज्जा।

अम्हारिसो उण जणो ण कामस्स बाहणिज्जो ण तावस्स सोसणिज्जो।।2।।

(नेपथ्ये)

ता किं णक्खुदे मूलुप्पाडिअचूडिआबिअलं सीसं करिस्से ?

राजा – (विहस्य) वअस्स! लीलाबणसच्छन्दचारिणा केलिसुएण किं मणिदं?

विदूषकः– (सक्रोधम्) आ दासीए उत्त! सूलाअरणजोग्गो सि।

संस्कृतच्छाया कर्पूरमञ्जरी

(चतुर्थ जवनिकान्तर)

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा – अहो! गाढतरो ग्रीष्मः पवनएव प्रचण्डः, तत् कथं नु सोढव्यः। यतः –

इह कुसुमशरैकगोचराणामिदमुभयमपि सुदुःसहमिति मन्ये।

जरठरविकरालितश्च कालस्तया च जनेन प्रियेण विप्रलभ्भः ।।1।।

विदूषकः – एके तावन्मदनस्य बाधनीयाः अन्ये तावच्छोषणीयाः ।

अस्मादृशः पुनर्जनो न कामस्य बाधनीयो न तापस्य शोषणीयः।।2।।

(नेपथ्ये)

तत् किं न खलु ते मूलोत्पाटिरचूलिका तिकलं शीर्षं करिष्ये?

राजा – (विहस्य) वयस्य! लीलावनस्वच्छन्दचारिणा केलिशुश्केन किं भणितम्?

विदूषकः– (सक्रोधम्) आः दास्याः पुत्र! शूलाकरणयोग्योऽसि ।

हिन्दी अनुवाद कर्पूरमञ्जरी

(चतुर्थ जवनिकान्तर)

(राजा और विदूषक रंगमंच पर आते हैं)

राजा – अरे भीषण गर्मी है, हवा भी प्रचण्ड है। भला कैसे सहा जाय? क्योंकि – इस संसार में एकमात्र कामदेव का लक्ष्य बने हुए (कामार्त) व्यक्ति के लिए ये दोनों ही –प्रचण्ड सूर्य से विकराल काल (निदाघ) और प्रियजन से वियोग–सुदुःसह हैं – ऐसा मैं मानता हूँ।।1।।

विदूषक – कोई काम से पीड़ित है और कोई ताप से सूखे जा रहे हैं, हमारे जैसे को तो न काम ही सताता है और न गर्मी का ताप ही सुखाता है।।2।।

(नेपथ्य मे)

जड़ सहित चोटी उखाड़ कर तेरे सिर को विद्रूप क्यों न कर दूँ ?

ाजा– (हंस कर) मित्र! लीलावन में स्वच्छन्दचारी तोते ने क्या कहा?

ेदूषक– (क्रोधपूर्वक) अरे दासी का छोरा! तू तो शूली पर चढ़ाने लायक है।

(नेपथ्ये)

सब्बं तुम्हारिसाहिंतो सम्भाविज्जदि, जइ मे ण होंति पक्खाबलीओ।

जा– (विलोक्य) कहं उड्डीणो ज्जेब्ब?

(विदूषकं प्रति)

णिसातलिणवित्थरा तह दिणेसुय बड्ढत्तणं
ससी लहदि खण्डणं तह अ चण्डबिम्बो रई।
णिदाहदिअसेसु विप्फुरदि जस्स एब्बं कमो
कहं ण स विही तदो खुरसिहाइं खण्डिज्जदि ।।3।।

कि अ, णिडणं सेवणिज्जो जइ सुहसंगमो मोदि ! जदो –

ांस्कृतच्छाया **(नेपथ्य में)**

सर्वं युष्मा दृशेभ्यः सम्भाव्यते यदि मे न भवन्ति पक्षावल्यः ।

राजा– (विलोक्य) कथमुड्डीन एव ।

(विदूषकं प्रति)

निशाऽस्तलीनविस्तरा तथा दिनेषु वृद्धत्वं
शशी लभते खण्डनं तथा च चण्डबिम्बो रविः ।
निदाघदिवसेषु विस्फुरति यस्पैवं क्रमः
कथं न स विधिस्ततः क्षुरशिखामिः खण्ड्यते?।।3।।

किञ्च, निपुणं सेवनीयो यदि शुभसगमों भवति । यतः –

हेन्दी अनुवाद

(नेपथ्य में)

तुम्हारे जैसे के लिए सब सम्भव है, यदि मेरे पंख न होते ।

अर्थात्, यदि मैं उड़ता न होता, तो तुम सब कर सकते थे।

राजा – (देखकर) क्या उड़ ही गया?

(विदूषक के प्रति)

रात सिमटी हुई अर्थात् , छोटी होती है और दिनों में बढ़ोत्तरी होती है अर्थात् दिन बड़े होते हैं। चन्द्रमा घटता जाता है अथवा निष्प्रभावी होता है। और सूर्यमण्डल प्रचण्ड (तापकारी) होता जाता है। गरमी के दिनों में जिसका ऐसा विघटन प्रकट होता है क्यों न उस विधाता छुरे की धार से काट दिया

जाय? ।।4।।

तथापि, यदि अपना प्रियजन साथ में रहे तो ऐसे समय का अच्छी तरह उपयोग किया जा सकता है। क्योंकि –

मज्झणे सिरिखण्डपंककलणा आ संझमाद्दांसुअं
लीलामज्ज्णमाप्पदोससमअं साअं सुरा सीअला ।
गिम्हे पच्छिमजामिणीणिहुवणं जं किं पि पञ्चेसुणो
एदे पञ्च सिलीमुहा विजइणो सेसा सराजज्जरा ।।4।।

विदूषकः – मा एब्बं मण–

पण्डुच्छबिच्छुरिदणाअलदादलाणं
साहारतेल्लपरिपेसलपोफलाणं ।
कप्पूरपंसुपरिबासिदचंदणाणं
भद्दं णिदाहदिअसाणं वअस्स ! भोदु ।।5।।

राजा – एदं उण एत्थ रमणिज्जं ।

संस्कृतच्छाया

मध्याह्ने श्रीखण्डपंककलना आसान्ध्यमार्द्रांशुकं
लीलामज्जनमाप्रदोषसमयं सायं सुरा शीतला ।
ग्रीष्मे पश्चिमयामिनीनिधुवनं यक्तिमपि पञ्चेषोः
एते पञ्चशिलीमुखा विजयिनः शेषाः शरा जर्जराः ।।4।।

विदूषकः – मैवं भण –

पाण्डुच्छविच्छुरितनागलतादलानां
सहकारतैलपरिपेशलपूगफलानाम् ।
कर्पूरपांसुपरिवासितचन्दनानां
भद्रं निदाधदिवसानां वयस्य ! भक्तु ।।5।।

राजा – इदं पुनरत्र रमणीयम् ।

हिन्दी अनुवाद

(ग्रीष्म में) दोपहर में चन्दन कालेप, शाम तक गीले रेशमी वव्त्र (धारण किये रहना), रात्रि के प्रारम्भ में जलक्रीड़ा, सायंकाल शीतल मदिरापान और रात के अन्तिम पहर में (मध्यरात्रि के पश्चात्) रतिक्रीडा का आनन्द – ये ही कामदेव के पॉच बाण (ग्रीष्मताप पर) विजय करने वाले हैं, बाकी सब पुराने और कमजोर पड़ गये हैं ।।4।।

विदूषक – ऐसा न कहिए – पीले पड़े हुए पान के पत्तों वाले, आम, तेल और कोमल सुपारियों वाले, कपूर के चूर्ण से सुगन्धित चन्दन वाले ग्रीष्म दिवसों का कल्याण हो अर्थात् ऐसे गर्मी के दिन चिरकाल तक बने रहें।।5।।

राजा – यह तो (और भी) सुन्दर है।

सपञ्चमतरंगिणो स्सबणसीअला बेणुणो
समं सिसिरवारिणा बअणसीअला वारुणी।
सचन्दणघनत्थणी सअणसीअला कामिणी
णिदाहदिअसोसहं सहजसीअलं कस्सवि ।।6।।

अबिअ, लीलुत्तंसो सिरीसं सिहिणपरिसरे सिन्दुबाराणां हारो
अंगे आद्दं वरिल्लं रमणपणइणी मेहला उप्पलेहिं ।
दोसुं दोकंदलीसुं णवबिसवलआ कामवेज्जो मणोज्जो
ताबातंकक्खमाणं महुसमए गदे एस वेसोऽबलाणं ।।7।।

विदूषकः – अहं उण भणामि ।

मज्झणस्लक्खधणचन्दणपंकिलाणं
साअं णिसेबिदणिरंतरमज्जणाणं ।
सज्जासु बीअणजवारिकणुक्खिदाणं
दासत्तणं कुणइ पञ्चसरोडबलाणं ।।8।।

संस्कृतच्छाया

सपञ्चमतरन्गिणः श्रवणशीतला वेणवः
समं शिशिरवारिणा वदनशीतला वारुणी ।
सचन्दनघनस्तनी शयनशीतला कामिनी
निदाधदिवसौषधं सहजशीतलं कस्यापि ।।6।।

अपिच, लीलोत्तंसः शिरीषं स्तनपरिसरे सिन्दुवाराणां हारः
अंगे आर्द्रं वस्त्रं रमणप्रणयिनो मेघलोत्पलै।
द्वयोर्दोः कन्दल्योर्नवबिसवलया कामवैद्यो मनोज्ञः
तापातंकक्षमाणां मधुसमयेगत एष वेशोऽबलानाम् ।।7।।

विदूषकः – अहं पुनर्भणामि + मध्याह्नश्लक्ष्णघनचन्दनपंकिलानां
सायं निषेवितनिरन्तरमज्जनानाम्।

हिन्दी अनुवाद

पञ्चमस्वर में तानभरी गयी कर्णसुखद् वंशीध्वनि, शीतल जल के

साथ मुख को शीतल लगने वाली मदिरा, चन्दनलिप्त सुकठिनस्तनों वाली शयन सुखद रमणी – ये तीनों ग्रीष्म सन्ताप के उपचार, निसर्ग शीतल वस्तुंएं किसी–किसी को प्राप्त होती हैं।।6।।

और भी, कानों में शिरीष पुष्प का अलंकार, वक्षःस्थल पर सिन्दुवार पुष्पों की माला, शरीर पर गीले वस्त्र, रमणप्रिय की कटि में नीलकमल की करधनी, दोनों भुजाओं में नये मृणालों के कंगन – इस प्रकार ये सभी ग्रीष्म सन्ताप सहन करने वाली स्त्रियों के सुन्दर वेश वाले कामोपचारक (चिकित्सक) हैं ।।7।।

विदूषक – मैं तो यह कहता हूँ –

दोपहर में जो चिकना और गाढ़ा चन्दन शरीर पर लेप करती हैं,

राजा – (स्मरणमभिनीय) –

पञ्चंग णबरूअभंगिघड़णारम्भे जणे संगमो
जाणं ताणं रवणं ब्ब झत्ति दिअहाबट्टन्ति दीहा अपि ।
जाणं ते अ मणम्मि देंति ण रइ चित्तस्स सन्दाबिणो
ताणं जांति जगम्मि दीहरतमा मासोबमा बासारा ।।9।।

राजा– (विदूषकं प्रति) बअस्स! अत्थि तग्गदा कावि वत्ता?

विदूषकः– अत्थि। सुणादु प्पिअबअस्सो, कधेमि सुहासिदं दे। जदो प्पहुदि कप्पूरमञ्जरी रक्खाभबणादो सुरंगादुआरे देबीए दिट्ठा, तदो प्पहुदि तं सुरंगादुआरं देवीए बहलसिलासञ्चएण णीरन्धं कदुअ पिहिदं । अणंगसेणा कलिंगसेणा कामसेणा कामसेणा बसन्तसेणा बिब्भमसेणेत्ति पञ्चसेणाणाम–धेआओ चामर धारिणीओ फारप्फुरक्किदकरबालहत्थपाइक्कसहस्सेण सह कारामन्दिरस्स रक्खाणिमित्तं पुब्बदिसिणिउत्ताओ ।

संस्कृतच्छाया

शय्यासु व्यजनजवारिकणोक्षितानां
दासत्वं करोति पञ्चशरोऽबलानाम् ।।8।।

राजा – (स्मरणमभिनीय) – प्रत्यंग नवरूपभंगिघटनारम्ये जने संगमो।
येषां तेषां क्षणमिव झटिति दिवसा वर्तन्ते दीर्घा अपि।
येषां ते च मनसि ददति न रतिं चित्तस्यसन्तापिनः
तेषां यान्ति जगति दीर्घतमा मासोपमा वासराः ।।9।।

राजा– (विदूषकं प्रति) वयस्य! अस्ति तद्गता कापि वार्ता ?

विदूषकः – अस्ति! श्रृणोतु प्रियवयस्यः, कथयामि सुभाषितं ते। यतःप्रभृतिकर्पूर–मञ्जरी रक्षाभवनात् सुरंगाद्वारे देव्या दृष्टा, ततः प्रभृति तत्सुरंगाद्वारं देव्या बहुलशिलासञ्चयेन नीरन्ध्रं कृत्वापिहितम् । अनंगसेना, कलिंगसेना, कामसेना, वसन्तसेना विभ्रमसेनेति पञ्च सेनानामधेयाश्चामरधरिण्यः स्फारस्फुरत्करवाल–हस्तपदातिसहस्रेण सहकारामन्दिरस्य रक्षानिमित्तं पूर्वदिशिनियुक्ताः ।

हिन्दी अनुवाद

सायंकाल जो लगातार स्नान करती हैं, शय्या पर पंखे से निकले जलकणों से जिनके शरीर भींगे रहते हैं – ऐसी स्त्रियों का कामदेव दास बना रहता है।।8।।

राजा – (स्मरण का अभिनय करके) – अंग प्रत्यंग सौन्दर्य से युक्त प्रियजन के साथ जिनका संगम हो जाता है, उनके लम्बे दिन भी क्षण मात्र की तरह शीघ्र बीत जाते हैं और प्रियजन जिनके चित्त को मिलन का आनन्द नहीं देते, उन्हें सन्तप्त करने वाले दिन इस संसार में महीनों के बराबर लम्बे हो जाते हैं।।9।।

राजा – (विदूषक के प्रति) – मित्र ! कुछ उसका भी वृत्तान्त ज्ञात है?

विदूषक – हॉ, है। प्रिय मित्र सुनें, आपके लिए प्रिय समाचार है। जब से महारानी ने कर्पूरमञ्जरी को रक्षा भवन से सुरंग द्वार पर जाती हुई देखा है, तब से उस सुरंग द्वार को, एक छेद भी छोड़े बिना, पत्थरों से ढॅक कर बन्द करा दिया है और अनंग सेना, कलिंग सेना

अणंगलेहा चित्तलेहा चन्दलेहा मिअंकलेहा बिब्भमलेहेति लेहाणामधेआओ पञ्च सेरन्धीओ पुंखिदसिलीमुहत्थेण णिबिडणिबद्धतूणीरदुद्धरेण धाणुक्कसहस्सेण समं दक्खिणाए दिसाए णिबेसिदाओ ।

कुन्दमाला चन्दणमाला कुबलअमाला कञ्चणमाला बउलमाला मंगलमाला माणिक्कमालेत्ति सत्त मालेत्तिणामधेआओ णवणिसिदकुंतहत्थ पाइक्कसहस्सेण समं तम्बूलकरंकबाहिणीओ पच्छिमाए दिसाए बिबसिदाओ।

अणंगकेली पुक्करकेली कन्दप्पकेली सुन्दरकेली कन्दोट्टकेलीत्ति पञ्च केलीत्तिणाामधेआओ मज्जणकारिणी ओ फलअखग्गकम्पबिदुरिल्लेण पाइक्कसहस्सेण समं उत्तरदिसाए आणत्ताओ।

संस्कृतच्छाया

अनंगलेखा, चित्रलेखा, चन्द्रलेखा, मृगांकलेखा और विभ्रम लेखेति लेखानामधेयाः पञ्चसैरिन्ध्र्यः पुंखितशिलीमुखधनुर्हस्तेन निबिऽनिबद्धतूणीर–दुर्धरेण धानुष्कसहस्रेण समं दक्षिणस्यां दिशि निवेशिताः ।

कुन्दमाला, चन्दनमाला, कुवलयमाला, काञ्चनमाला, बकुलमाला,

मंगलमाला, माणिक्यमालेति सप्तमालेतिनामधेया नवनिशितकुन्तहस्त. पदातिसहस्रेणसमंताम्बूलकरंक वाहिन्यः पश्चिमायां दिशि निवेशिताः ।

अनंगकेलिः, पुष्करकेलिः, कन्दर्पकेलिः, सुन्दरकेलिः, उत्पलकेलिरिति पञ्चकेलीति नामधेया मज्जनकारिण्यः फलकखड्गभीषणेन पदातिसहस्रेण सममुत्तरदिशि प्राज्ञप्ताः ।

हिन्दी अनुवाद

कामसेना, वसन्तसेना और विभ्रमसेना – इन पॉच सेना नाम वाली चैवर डुलाने वाली स्त्रियों को अत्यन्त चमकती हुई तलवार हाथ में लिये हजार पैदल सैनिकों के साथ कारागार की रक्षा में पूर्व दिशा में नियुक्त कर दिया है।

अनंगलेखा, चित्रलेखा, चन्द्रलेखा, मृगांकलेखा और विभ्रमलेखा – इन पॉच लेखा नाम धारण करने वाली प्रसाधिकाओं को बाण चढ़े हुए धनुष हाथ में लिये और कसकर बॅधे हुए तरकसों से सज्जित हजार धनुर्धारियों के साथ दक्षिण में तैनात किया है।

कुन्दमाला, चन्दनमाला, कुवलयमाला, काञ्चनमाला, बकुलमाना, मंगलमाला, और माणिक्यमाला – इन सात माला नाम वाली पनडिब्बा उठाने वाली स्त्रियों को नये तीक्ष्णनोक वाले भालों को हाथ में उठाये हजार पैदल सैनिकों के साथ पश्चिम दिशा में नियुक्त कर दिया है।

अनंगकेलि, पुष्करकेलि, कन्दर्पकेलि, सुन्दरकेलि, उत्पलकेलि – इन पॉच केलिनाम वाली , स्नान कराने वाली स्त्रियों को ढाल–तलवार से भीषण हजार पैदल सैनिकों के साि उत्तर दिशा में तैनात कर दिया है।

ताणं बि उण उबरि मदिराबदी केलिबदी कल्लोलबदी तरंगबदी अणंगबदीत्ति पञ्च बदीत्तिणामधेआओ परिचारिआकुमारीओ कणअचित्तदण्डहत्थाओ सुहासिअपादिआओ बंदीणामधेआओ सेणाए अद्धक्खीकिदाओ त्ति।

राजा – अहो ! देबीए सामग्गी अंतेउरोचिदा ।

विदूषकः – भो वअस्स! एसा देबीए सारंगिआ णाम सही किं पि णिवेदिदुं प्पेसिदा ।

(ततः प्रविशंति सारंगिका)

सारंगिका – जअदु जअदु भट्टा । देब! देबी विण्वेदि– ''अज्ज चतुत्थदिअहे भबिअबउसाइत्तीमहूसबोबकरणाइं केलिबिमाणप्पसादमारुहिअ प्पेक्खिदब्बाइं'' त्ति।

राजा – जं देवी आणबेदि ।

(चेटी निष्क्रान्ता । उभौ प्रासादाधिरोहणं नाटयतः।)

संस्कृतच्छाया

तासामपि पुनरुपरि मदिरावती, केलिवती, कल्लोलवती, तरंगवती, अनंगवतीति पञ्च वतीति नामधेयाः परिचारिकाकुमार्यः कनकवेत्रदेण्डहस्ताः सुभाषित पाठिका बन्दीनामघेयायाः सेनाया अध्यक्षीकृता इति।

राजा – अहो देव्याः सामग्री अन्तः पुराचिता ।

विदूषकः – भो वयस्य ! एषा देव्यासारंगिका नाम सखी किमपि निवेदितुं प्रेषिता। (ततः प्रविशश्ति सारंगिका)

सारंगिका – जयतु जयतु भर्ता !देव ! देवी विज्ञापयति – "अद्य चतुर्थदिवसे भाविवटसावित्रीमहोत्सवोपकरणानि केलिविमानप्रासादमारुह्य प्रक्षितव्यानी" ति।

राजा – यद्देवी आज्ञापयति ।

(चेटी निष्क्रान्ता । उभौ प्रासादाधिरोहणं नाटयतः)

हिन्दी अनुवाद

उनके भी ऊपर, मदिरावती, केलिवती, कल्लोलवती, तरंगवती और अनंगवती – इन 'वती' नाम वाली पॉच कुमारी परिचारिकाओं को, हाथ में सोने की मूठ वाले बेंत के डण्डे लिये रहती हैं और सुभाषित पढ़ती रहती है, बन्दी नाम की सेना का अध्यक्ष बना दिया है।

राजा – वाह, देवी की यह तैयारी (व्यवस्था) तो अन्तःपुर के योग्य ही है।

विदूषक – मित्र! यह सारंगिका नाम की सखी (दूती) देवी के द्वारा कुछ कहने के लिए भेजी गयी है। (तब सारंगिका आती है)

सारंगिका – स्वामी की जय हो, जय हो। महाराज, महारानी सूचित करती है। कि आज चौथे दिन होने वाले वट सावित्री महोत्सव की तैयारी को क्रीड़ा विमान महल पर चढ़कर देखा जाय।

राजा – जैसी महारानी की आज्ञा । (चेटी बाहर जाती है) दोनों महल पर चढने का अभिनय करते हैं।

(ततः प्रविशति चर्चरी)

विदूषकः –

मोत्ताहलिल्लाहरणुच्चआओ लास्साबसाणे चलिअंसुआओ।
सिंचंति अण्णोण्णमिमीअ पेक्खजंताजलेहिं मणिमाजणेहिं ।।10।।

इदो अ, परिब्भमन्तीअ विचित्तबन्धं इमाइ दो सोलह णच्चणीओ।

खेलन्ति तालाणुगदपदाओ तुहांगणे दीसइ दण्डरासो ।।11।।

समांससीस्सा समबाहुहत्था रेहाबिसुद्धा अपरा अदेंति ।

पंत्तीहिं दोहिं लअतालबंधं परप्परं साहिमुहा हुबंति ।।12।।

मोत्तूण अण्णा मणिबारआइं जंत्तेहिं धारासलिलं खिबन्ति ।

पडंति ताआ अ पिआणमंगे मणोहुओ बारुणबाणकप्पा।।13।।

संस्कृतच्छाया (ततः प्रविशति चर्चरी)

विदूषकः मुक्ताफलाभरणोच्चया लास्यावसाने चलितांशुकया ।

सिञ्चन्त्यन्योऽन्यमिमाः पश्य यन्त्रजलैर्मणिभाजनैः ।।10।।

इतश्य, परिभ्रमन्त्यो विचित्रबन्धमिमा द्विषोडशनर्तक्यः ।

खेलन्ति तालानुगतपदास्तवांगणे दृश्यते दण्डरासाः ।।11।।

समांसशीर्षाः समबाहुहस्ता रेखाविशुद्धा अपराश्च ददति।

पंक्तिभ्यां द्वाभ्यां लयतालबन्धं परस्परं साभिमुखा भवन्ति।।12।।

मुक्त्वाऽन्या मणिवारणानि यन्त्रैर्धारासलिकं क्षिपन्ति ।

पतन्ति ताश्च प्रियाणामंगे मनोभुवो वारुणबाणकल्पाः ।।13।।

हिन्दी अनुवाद (तत्पश्चात् चर्चरी नर्तकियाँ प्रवेश करती हैं।)

विदूषक – मोतियों के आभूषणों से लदी हुई, लास्य (नृत्य) की समाप्ति पर अपने वस्त्रों को फहराने वाली ये नर्तकियाँ, देखिए, मणि के पात्रों से और पिचकारियों के जल से एक दूसरे को भिगो रहीं हैं।।10।।

इधर तो, ये बत्तीस नर्तकियाँ विचित्र बन्ध बनाकर घूम रही हैं, इनका पद चालन मीताल का अनुगामी है। इसलिए आपके इस प्रांगण में दण्डरासका (मनोमोहक) दृश्य उपस्थित हो गया है।।11।।

कुछ नर्तकियाँ कन्धे और सिर को बराबर (सीधा) किये हुए और भुजाओं तथा हाथों को भी एक ही स्थिति में बनाये हुए, तनिक भी स्खलन न करती हुई, दो पंक्तियों में लय और ताल के साथ मेल रखकर चलती हुई आमने सामने हो रही हैं।।12।।

कुछ दूसरी (नर्तकियाँ) मणिनिर्मित कवच उतार कर पिचकारी से पानी की धार छोड़ती हैं। वे जलधारें उनके प्रेमियों के शरीर पर कामदेव के वारुण बाण की तरह पड़ती हैं।।13।।

इमा मसीकज्जलकालकाआ तिक्खच्छचाबा अबिलासणीओ।

पुलिंदरूबेण जणस्स हासं समोरपिच्छाहरणा कुणंति ।।14।।

हत्थे महामंसबलीधराओ हुंकारफेक्कारबा रउद्दा ।

णिसाअरीणं पडिसीस्सएहिं अण्णा स्ससाणाभिअणं कुणंति ।।15।।

काबि वारिदकरालहुडुक्कारम्ममद्दलरएण मिअच्छी ।

भूलदाहिं परिबाटिअलाहिं चेटिकम्मकरणम्मिप्पउट्टा ।।16।।

किं किणीकिदरणज्झणसद्दा कंठगीदलअजंतिदताला।

जोगिणीबलअणच्चणकेलिं तालणेउररअं विरअंति ।।17।।

संस्कृतच्छाया

इमा मसीकज्जलश्यामकायास्तीक्षणाक्षिचापाश्च विलासिन्यः ।

पुलिन्दरूपेण जनस्य हासं समपूरपिच्छामरणा कुर्वन्ति ।।14।।

हस्ते महामांसबलिधारिण्यो हुंकारफेत्काररवा रौद्राः ।

निशाचरीणां प्रतिशीर्षकैरन्याः रमशानाभिनयं कुर्वन्ति ।।15।।

कापि वारिदकरालहुडुक्का रम्यमर्दलरवेण मृगाक्षी ।

भ्रूलताभ्यां परिपाटीचलाभ्यां चेटीकर्मकरणे प्रवृत्ता ।।16।।

किंगिणीकृत रणज्झणशब्दा। कण्ठगीतलययन्त्रिततालाः ।

योगिनीवलयनर्तनकेलिं तालनूपुररवं विरचयन्ति ।।17।।

हिन्दी अनुवाद

स्याही और काजल की तरह काली देह वाली, धनुष की तरह तिरछी चितवन वाली और मोरपंखों के गहने पहने हुए ये (कुछ) विलासिनी स्त्रियॉ शिकारी के रूप में लोगों को हॅसा रही हैं।।14।।

कुछ स्त्रियॉ हाथ में महामांस (नरमांस) की बलि (उपहार) धारण किये हुए और हुंकार रूप से सियारों जैसा शब्द करती हुई तथा पिशाचिनियों के मुखौटे लगाये हुए रौद्र रूप से शमशान अभिनय कर रही हैं।।15।।

कोई मृगनयनी नर्तकी सुन्दर मर्दलनामक वाद्य से घनगर्जन सदृश स्निग्ध गम्भीर ध्वनि करती हुई अपनी चञ्चल भौहों से चेटी कर्म करने में लगी है।। 16।।

कुछ नर्तकियॉ घुंघरूओं को रूनझुन बजाती हुई, अपने कण्ठस्थ गीतों से ताल को जमाती हुई, योगिनियों जैसा घेरा बनाकर नाचती हुई अपने पैरों की ताल से नूपुरों को बजा रही हैं।।17।।

कोदुहलबसचंचलवेसा बेणुवाबदणपरा अबराओ ।

कालबेसबसहासिदलोओ ओसरंति पणमंति हसंति ।।18।।

(प्रविश्य)

सारंगिका – (पुरोऽवलोक्य) एसो महाराओ उणो मरगअकुंजज्जेब्बगदो,

कदलीधरं अ अणुप्पइट्टो, ता अग्गदो गदुअ देबीविण्णबिअं विबण्णबेमि। (उपसृत्य) जअदु जअदु देबो। देवी एदं बिण्णवेदि जधा 'संझासमए जूअं मए परिणेदब्बा।'

विदूषकः – भो! किं एदं अकालकोहंडपडणं ?

राजा– सारंगिए ! सब्बं वित्थरो कधेहि ।

सारंगिका – एदं बिण्णबीअदि, अणंतरातिक्कंतचउद्दसीदिअहे देवीए पोम्मारा–

अमणिमई गोरी कदुअ भैरवाणंदेण प्पडिट्ठाविदा, सअं अ दिक्खा

संस्कृतच्छाया

कौतूहलवशश्चञ्चलवेषा वेणुवादनपरा अपराः (अवलाः वा) ।

कालवेशवशहासितलोका अपसरन्ति प्रणमन्ति हसन्ति ।।18।।

(प्रविश्य)

सारंगिका – (पुरोऽवलोक्य) । एष महाराजः पुनर्मरकतकुञ्जमेव गतः कदलीगृह–

ञ्चानुप्रविष्टः । तदग्रतोगत्वा देवीविज्ञापितं विज्ञापयामि। (उपसृत्य) जयतु जयतु देवः । देवी दं विज्ञ्ज्ञपयति यथा 'सन्ध्यासमये यूयं परिणेतव्याः।'

विदूषकः – भोः ! किमेतदकालकूष्माण्डपतनम् ?

राजा – सारंगिके ! सर्वं विस्तरेण कथय ।

सारंगिका – इदं विज्ञाप्यते, अनन्तरातिक्रान्तचतुर्दशीदिवसे देव्या पद्मरागमणि–मयी गौरी कृत्वा भैरवानन्देन प्रतिष्ठापिता, स्वयं च दीक्षा गृहीता ।

हिन्दी अनुवाद

कुछ नर्तकियां कुतूहल वश चञ्चलवेश बनाकर वीणा बजाती हुई ओर काले वस्त्र वेशविन्यास से लोगों को हॅसाती हुई, पीछे हट रही हैं, स्वयं हंस रही हैं और (सब को) प्रणाम कर रही हैं।।18।।

(प्रवेश करके)

सारंगिका – (सामने देखकर) – महाराज तो मरकत कुञ्ज में चले गये और कदलीगृह में घुस भी गयी । तो आगे बढ़कर महारानी का सन्देश कहूॅगी। (पास पहुॅच कर) महाराज की जय हो, जय हो। महारानी ने कहा है कि आज सायंकाल आपका विवाह कराऊॅगी।

विदूषक – अरे असमय में यह कुम्हड़ा कहॉ से फट पड़ा?

राजा – सारंगिके ! सब विस्तार से बताओ।

सारंगिका – बताती हूॅ , विगत चतुर्दशी के दिन महारानी ने पद्मरागमणि की गौरी की प्रतिमा बनवा कर भैरवानन्द से उसकी प्राण प्रतिष्ठा कराई और

(भैरवानन्द को गुरू बना कर) स्वयम् उनसे दीक्षा गहिदा। तदो ताए विण्णत्तो जोगीस्सरो गुरुदक्खिणाणिमित्तं । भणिदं अ तेण, जइ अबस्सं गुरुदक्षिणा दादब्बा, वा एसा दीअदु महाराअस्स । तदो देबीए विण्णत्तं, जं आदिसदि भअवं। उणो बि उल्लबिदंतेण, अत्थि एत्थ लाटदेसे चंडसेणो णाम राजा, तस्स दुहिदा धणसारमंजरी णाम, सादेबण्णेहिं आदिट्टा, एसा चक्कवट्टिघरिणी भविस्सदि त्ति। तदो महाराअस्स परिणेदब्बा, तेण गुरूदक्खिणा दिण्णा भोदि, भट्टा वि चक्कवट्टी किदो भोदि । तदो देवीए बिहसिअ भणिअं, जं आदिसदि भअवं । अहं अ विष्णुविदुं प्पेसिदा गुरुदाक्खिणाणिमित्तं ।

विदूषकः – (विहस्य) एदं तं संविधाणअं सीस्सेसप्पो,देसंतरे बेज्जो । इह अज्ज विबाहो, लाटदेसे घणसारमंजरी ।

संस्कृतच्छाया

ततस्तया विज्ञप्तो योगीश्वरो गुरू दक्षिणानिमित्तम् । मणितञ्च तेन, यद्यवश्यं गुरू दक्षिणा दातव्या, तदेषा दीयतां महाराजस्य। ततो देव्या विज्ञप्तं, यदादिशति भगवान् । पुनरप्युल्लपितं तेन, अस्ति अत्र लाटदेशे चण्डसेनो नाम राजा, तस्य दुहिता घनसारमञ्जरी नाम। सा दैव ज्ञैरादिष्टा एषा चक्रवर्तिगृहिणी भविष्यतीति, ततो महाराजेन परिणेतव्या, तेन गुरूदक्षिणा दत्ता भवति, भर्ताऽपि चक्रवर्ती कृतो भवति। ततो देव्या विहस्य भणितं – 'यदादिशति भगवान्।' अहञ्च विज्ञापयितुं प्रेषिता गुरोर्गुरू दक्षिणानिमित्तम् ।

विदूषकः – (विहस्य) – एतत्तत् संविधानकं शीर्षे सर्पः देशान्तरे वैद्यः। इहाद्य विवाहो, लाटदेशे घनसारमञ्जरी।

हिन्दी अनुवाद

तब महारानी ने योगीश्वर से गुरूदक्षिणा लेने का निवेदन किया। इस पर उन्होंने कहा कि यदि गुरू दक्षिणा देनी ही है तो उसे महाराज के लिए दो। तब महारानी ने कहा – 'जो आपकी आज्ञा'। तब भैरवानन्द ने कहा – ''लाट देश में चण्डसेन नाम का राजा है। उसकी धनसारमञ्जरी नाम की कन्या है। उसके सम्बन्ध में ज्योतिषियों ने कहा है कि वह चक्रवर्ती राजा की पत्नी बनेगी इसलिए अपने महाराज से इसका विवाह करा देना चाहिए। यही गुरू दक्षिणा पर्याप्त होगी। महाराज भी तुम्हारे द्वारा चक्रवर्ती हो जायेंगे।'' तब महारानी ने कहा – 'जैसी आपकी आज्ञा।'' और मुझे आपके पास गुरू दक्षिणा के लिए भेजा है।

विदूषक – (हंसकर) यह कैसा माजरा? सिर पर सॉप वैद्य पर देश । यहॉ आज विवाह है और घनसारमञ्जरी लाटदेश में?।

टिप्पणी

जवनिकान्तर – प्राकृत भाषा में लिखे गये –सट्टक' में 'अंक'को जवनिकान्तर कहते हैं। 'सट्टक' संस्कृत की 'नाटिका' के लक्षणों वाला होता है।

कुसुमसेरक्कगोअराणं – कुसुमसरैकगोचराणाम् । कुसुमानि एव शराः यस्य सः कुसुमशरः, तस्य एकगोचराणाम् इति कुसुमशरैकगोचराणाम् । एकमात्र कामदेव के बाणों का लक्ष्य बने हुए अर्थात् अत्यन्त कामपीडित । **उड्डीणो** –उड्डीनः। उत् + डी + क्त, 'क्त' के शेष 'त' को 'न' आदेश – उड्डीत = उड्डीन। उड़ा हुआ। **अत्तलिणवित्थरा** – अस्तलीनविस्तरा । अस्तं लीनः अस्तलीनः अस्तलीनः विस्तरःयस्याः सा अस्तलीनविस्तरा। अत्यन्त सीमित कालावधि की,अति लघु। **मासोबमा** –. मासोपमाः । मासौः उपमा येषॉ ते मासोपमाः। 'वासराः' का विशेषण। एक दिन महीनों जैसा। अर्थात्, बहुत लम्बे, कठिनाई से बीतने वाले। णीरन्धं –नीरन्ध्रम। निर्गतः रन्ध्रः यस्मात् तत्। निर् + रन्ध्रम् । 'रोरि' रे 'र् ' कालोप और 'ट्रलोपे पूर्वस्य दीघोऽणः' से ह्रस्व इकार को दीर्घ इकार। छिद्ररहित, जिसमें कहीं से भी कोई एक छेद भी न हो। **चर्चरी** – चर्चरी। एक प्रकार का गाना गाने और साथ साथ नाचने वालों की मण्डली। विशेष रूप से यह नर्तकियों का ही समूह होता है। कधेमि – कथयामि। कहता हूँ । कथ् + लट् लकार, उत्तम पुरूष, एक वचन। **सुहासिदं** – सुभाषितम् । सु + भाष् + क्त। यहॉ विदूषक व्यंग्य कर रहा है। कानों के लिए अप्रिय वार्ता को 'सुभाषित' कह रहा है। विपरीत लक्षणा से अत्यन्त विरस्कृत वाच्य ध्वनि है यहॉ। **पाइक्क** – पदाति । पैदल सेना। यहॉ वर्णच्छाया नहीं अपितु भावच्छाया है। 'पदाति' के लिए 'पाइक्क' का प्रयोग होता रहा होगा। इसी प्रकार, **विन्दुरिल्लेण** –भीषणेन, मैं भी प्रयोग रूढ़ता के कारण भावच्छाया है। अन्यत्र (कर्पूरमञ्जरी, 2.31) 'घण्टाहिं बिन्दुरिल्ला ––––' में 'बिन्दुरिल्ला' की संस्कृतच्छाया – 'विद्राण' की गयी है। जिसका अर्थ है – उद्बुद्ध या नींद से जागा हुआ। **कणअचित्तदण्डहत्थाओ** – कनकवे त्रदण्डहस्ताः । यहॉ 'कनकवेत्रदण्उ' का अर्थ है सोने की मूठ वाली बेत की छड़ी। न कि स्वर्णनिर्मित छड़ी जैसा कि कुछ टीकाकारों ने अर्थ किया है। दण्डरासो – दण्डरासः । यह नृत्त का एक प्रकार विशेष है। इसे 'दण्ड रासक' या 'दण्डलास्य' भी कहते हैं। यहॉ 'दण्डरास' में बत्तीस नर्तकियों का भाग लेना कहा गया है। अधिकतम 64 + 64 = 128 नर्तकियॉ हो सकती हैं। ये सभी नर्तकियॉ अपने हाथ में स्वर्णमूठ वाले सोलह अंगुल लम्बे और अंगूठे की मोटाई वाले डण्डे लिये रहती हैं औरे घूम–घूम कर नाचती हैं। एक दूसरे के सामने होने पर परस्पर डण्डे लड़ाकर बजाती हैं। यह नृत्त बड़ा मोहक होता है। गुजरात का आधुनिक 'डॉडिया' नृत्त एक ऐसा ही 'दण्डरास' नृत्त है।

सारांश

पाठ–1

इस पाठ में गाथा सप्तसती से उद्धृत करके 45 गाथाओं का संग्रह किया गया है ये गाथायें विभिन्न भावों, अर्थों वाली है। कुछ गाथाओं में श्रृंगार परक वर्णन है, किसी में दरिद्रता का वर्णन, किसी में नीति के उपदेश है और कुछ गाथायें शरद् और हेमन्त ऋतुओं के वर्णन वाली हैं।

पाठ–2

यह पाठ 'रावण वहो' (रावणवधः) के प्रथम उच्छ्वास के 33 (प्राकृत) पद्यों का संकलन है। परम्परानुसार आरम्भ की गाथाओं में विघ्नविधान हेतु विष्णु (कृष्ण) और शिव की स्तुति की गयी है।फिर कुछ गाथाओं में काव्यप्रशंसा की गयी है। तत्पश्चात् शेष पद्यों में शरद्ऋतु का सुन्दर वर्णन उपस्थित किया गया है।

पाठ–3

इस पाठ में 'कर्पूरमञ्जरी' नामक सट्टक के चतुर्थ अंक का प्रारम्भिक अंश है। इसमें राजा और उसके मित्र विदूषक का संवाद निबद्ध है।

प्रारम्भ में दोनों ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए उसे सुखद बनाने के उपायों का उल्लेख करते हैं। पुनः राजा को कर्पूरमञ्जरी का स्मरण होने पर विदूषक उन्हें उसके कारागृह में रहने की अतिरंजित स्थिति से अवगत कराता है। तत्पश्चात् महारानी की सखी सारंगिका की सूचना से वे दोनों महल पर चढ़कर 'चर्चरी' नृत्यगीत का आनन्द लेते हैं। चर्चरी की समाप्ति पर पुनः सारंगिका आकर विवरण सहित महाराज का धनसारमञ्जरी के साथ विवाह होने (आज सायंकाल) की अग्रिम सूचना देती है। विदूषक आश्चर्य प्रकट करता है।

प्रश्न – खण्ड – क व्याख्यात्मक प्रश्न

1. अधोलिखित का हिन्दी अनुवाद कीजिए –

क. रंधणकम्मणि उणिए ———————— हिसी ण पज्जलइ ।।

ख. सुहउच्छअं ———————————— कआवराहोसि ।।

ग. दढरोसकलुसिअस्स ———————— विअ मुअन्ति ।।

घ. गिंज्जन्ते मंगलगाइआहि ———————— बहुआइ रोमाञ्चो।।

ङ. वो हरिवइजसवन्थो ———————— उबगओ सरओ।।

च. इह कुसुमसरेक्क ———————— विप्पलम्भो ।।

छ. किंकिणीकिदरण ———————— विरअंति ।।

2. अधोलिखित की संस्कृतच्छाया प्रस्तुत कीजिए –

अ. वाअइ किं भणिज्जिउ ————————— गहि अत्थो।।

ब. णमह अवडि ——————————— महुमहणम् ।।

स. सोहइ विसुद्धकिरणो —————————— संपुडमुक्को ।।

द. मज्झणस्लक्ख ——————————— पञ्चसरोऽबलाणं ।।

य. मोत्तूण अण्णा ——————————— बारुणबाणकप्पा।।

खण्ड – ख लधुउत्तरीय प्रश्न

1. 'गाहासत्तसई' का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

2. 'गाहासत्तसई' की विशेषताएँ पठित अंश के आधार पर लिखिए।

3. 'रावणवहो' के पठित अंश का सारांश लिखिए।

4. 'कर्पूरमञ्जरी' के पठित अंश के आधार पर ग्रीष्म का वर्णन कीजिए अथवा 'चर्चरी' का निरूपण कीजिए।

खण्ड – ग वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. किसी ने तना हुआ आकाश गिरा दिया है–

क. उपवन में | ख. घर के आंगन में,

ग. गॉव के तालाब में | घ. खलिहान में।

2. किसान को धान का खेत आनन्दित करता है –

क. पिता के समान | ख. माता के समान

ग. भाई के समान | घ. पुत्र के समान ।

3. 'रावणवहो' पाठ में वर्णित है–

क. निदाधकाल | ख. वर्षाकाल

ग. शरत्काल | ध. वसन्तकाल।

4. महारानी की सखी का नाम है –

क. लवंगिका | ख. सारंगिका

ग. कुरंगिका | घ. इनमें से कोई नही।

5. सर्प सिर पर है औ वैद्य –

क. परदेश में | ख. घर में

ग. उपवन में | घ. राजसभा में

खण्ड – ग वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के सही उत्तर

1. ग, 2. घ, 3. ग,

4. ख, 5. क।

इकाई – 5 अपभ्रंश साहित्य परिचय एवं पाठ

5.1 प्रस्तावना –

भारतीय भाषाओं के विकास क्रम में सर्वप्रथम वैदिक संस्कृत और तत्पश्चात् लौकिक संस्कृत का स्थान आता है। ये दोनों भाषाएं प्राचीन आर्यभाषा कही जाती हैं। मध्यकालिक आर्यभाषाओं में पालि,प्राकृत और अपभ्रंश की गणना होती है। अपभ्रंश को हिन्दी आदि आधुनिक आर्यभाषाओं की स्रोतोवहा माना जाता है। अपभ्रंश से ही द्रविड परिवार की भाषाओं को छोड़कर शेष भारतीय आधुनिक भाषाओं का विकास हुआ है। 'अपभ्रंश' को 'अवहट्ठ' भी कहते हैं ।

अतएव, भाषाओं के इस क्रमिक विकास को समझना तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के पूर्वरूप में स्थित अपभ्रंश भाषा– साहित्य का परिचय प्राप्त करना संस्कृत के अध्येताओं के लिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अपभ्रंश का उल्लेख संस्कृत के आचार्यों और वैयाकरणों ने भी किया है।

5.2 उद्देश्य

अपभ्रंश भाषा साहित्य का परिचय आपके इस इकाई–5 में कराया जायेगा। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

1. 'अपभ्रंश' के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
2. भाषाओं के क्रमिक विकास को जानने में समर्थ हो सकेंगे।
3. अपभ्रंश में निबद्ध साहित्यिक ग्रन्थों का परिचय प्राप्त करने के साथ ही उसकी प्रतिनिध रचनाओं के चुने हुए अंश का आनन्द ले सकेंगे।

5.3 अपभ्रंश भाषा और साहित्य

संस्कृत के प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ 'वाक्यपदीय' (भर्तृहरिकृत) में अपभ्रंश के सम्बन्ध में व्यादि के मत का उल्लेख किया गया है –

'शब्दसंस्कारहीनो यो गौरिति प्रयुयुक्षते ।
तमपभ्रंशमिच्छन्ति विशिष्टार्थनिवेशिनम् ।।' (1.148)।

वस्तुतः 'अपभ्रंश' का शाब्दिक अर्थ है– अधःपतन – नीचे गिरना। भाषा के सन्दर्भ में संस्कृव्याकरण के नियमों के विपरीत अशुद्धशब्द अपभ्रंश कहे जाते हैं। यह प्राकृत भाषा का निम्नतम रूप है। दण्डी ने 'काव्यादर्श' में अपभ्रंश को आमीर (अही) आदि लोगों की बोली कहा है –

आभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंश इति स्मृताः ।

शास्त्रेषु संस्कृतादन्यदपभ्रंशतयोदितम् ।।

पतञ्जलि मुनि ने अपने महाभाष्य में अपभ्रंश के विषय में लिखा है – ''एकस्यैव शब्दस्य बहवोऽपभ्रशाः । तद्यथा – गौरित्यस्य गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिकेत्येवमादयोऽपभ्रंशाः ।'' अर्थात्, एक ही शब्द के (स्थान और प्रयोक्ता के भेद से) अनेक अपभ्रंश रूप पाये जाते हैं। जैसे – ''गौ'' शब्द के लिए गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि।

वस्तुतः ससंस्कृत भाषा के विकृत अथवा अपभ्रंष्ट शब्दों (के रूपों) को अपभ्रंश कहते हैं। पतञ्जलि के अतिरिक्त, प्राकृतवैयाकरणों ने भी अपभ्रंश का निर्देश दिया है। प्राकृत व्याकरण के कर्ता हेमचन्द्र ने भी – 'गोणादयः गौः, गोणी, गावी, गावः, गावीयो' का उल्लेख किया है ।

भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में प्राकृत के तीन भेदों का उल्लेख किया है–

'एतदेव विपर्यस्तं संस्कारगुणवर्जितम् ।
विज्ञेयं प्राकृतं पाठ्यं नानावस्थान्तरात्मकम् ।।
त्रिविधं तच्च विज्ञेयं नाट्ययोगे समासतः ।
समानशब्दं विभ्रष्टं देशीगतमथापि च ।।' (17.2–301)

इस तरह, भरतमुनि के द्वारा निर्दिष्ट प्राकृत के ये त्रिविध रूप हैं – तत्सम्, विभ्रष्ट अथवा तद्भव और देशीगत या देशज। पतञ्जलि मुनि ने जिसे 'अपभ्रंश' कहा है उसी को भरतमुनि विभ्रष्ट अथवा तद्भव कहते हैं। आचार्य दण्डी ने वाङ्मय का चतुर्धा विभाजन किया है –

तदेतद् वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा ।
अपभ्रंशश्च मिश्रञ्चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम् ।। (काव्यादर्श, 1.32)।

इसी प्रकार अनेक आचार्यों ने प्राकृत की भाँति ही अपभ्रंश को भी साहित्य की भाषा स्वीकार किया है। अपभ्रंश में साहित्यिक रचनाओं का प्रारम्भ 500–600 ई. से माना जाता है। किन्तु 'ललितविस्तर' और महायान के बौद्धग्रन्थों में अपभ्रंश के छिटपुट प्रयोग प्राप्त होते हैं।

आचार्य कवि राजशेखर ने 'कर्पूरमञ्जरी' सट्टक में संस्कृतबन्ध को परुष (रूखा–कठोर) और प्राकृत बन्ध को सुकुमार कहा है–

''परुसा सक्कियबंधा पाउदबंधो वि होई सुउमारो।''

किन्तु अप्रभ्रंश बन्ध तो और भी मीठा और सुकुमार सिद्ध हुआ। कवि विद्यापति ने लिखा है –

'सक्कअ वाणी बहुअ ण भावइ, पाउँअ रस को मम्म न पावइ।

देसिल वयना सब जन मिट्ठा तें तैसन जम्पओ अवहट्ठा।।'

अर्थात् संस्कृत वाणी बहुत अच्छी नहीं लगती, प्राकृत के रस का मर्म मिलता नहीं। अपने देशी बोल सबको मीठे लगते हैं जैसे कि अवहट्ठ (अपभ्रंश) की जल्पना (बातें करना)।

अपभ्रंश साहित्य का अधिकांश भाग, मुख्य रूप से विदर्भ, राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश,मगध और मिथिला में लिखा गया है। इन स्थानों के दिशागत भेदों के आधार पर अपभ्रंश के भी चार प्रकार कह गये –

1. उत्तरभारत का अपभ्रंश साहित्य – नाथ सम्प्रदाय के अपभ्रंश पद।
2. पूर्वी भारत का अपभ्रंश साहित्य – सिद्धसम्प्रदाय तथा विद्यापति का अपभ्रंश साहित्य।
3. दक्षिणभारत का अपभ्रंश साहित्य– (मुख्यतः विदर्भ और महाराष्ट्र)– पुष्पदन्त द्वारा और मुनि कनकामर द्वारा विरचित अपभ्रंश साहित्य ।
4. पश्चिम भारत का अपभ्रंश साहित्य – स्वयम्भू, हेमचन्द्र, जोगिन्दु, धनपाल, अब्दुर्रहमान आदि द्वारा विरचित अपभ्रंश साहित्य

साहित्य की दृष्टि से अपभ्रंश साहित्य को महाकाव्य, खण्डकाव्य और मुक्तक काव्य के रूप में विभक्त किया जा सकता है। अभ्रंश का अधिकांश साहित्य पद्यात्मक ही है। गद्य साहित्य नाम मात्र का ही उपलब्ध होता है।

महाकाव्य – संस्कृत–प्राकृत महाकाव्यों की परम्परा में अपभ्रंश भाषा में भी कई महत्वपूर्ण महाकाव्यों का निर्माण हुआ है। जो महाकाव्य अपभ्रंश भाषा में समुपलब्ध हैं उनमें से महत्वपूर्ण महाकाव्यों का परिचय अधोलिखित है–

पउमचरिअ – श्रीराम के चरित (अर्थात् रामकथा) को आधार बना कर इस नाम के तीन महाकाव्य लिखे गये। 'रविषेण' नामक जैनाचार्य ने संस्कृत भाषा में 'पद्मपुराण' नाम से रामचरितात्मक महाकाव्य की रचना की (यह महाकाव्य संस्कृत का पद्मचरित् – पइमचारेअ ही है) । आचार्य – महाकवि विमलसूरि ने प्राकृतभाषा में 'पउमचरिअ' महाकाव्य की रचना की। महाकवि स्वयम्भू ने अपभ्रंश भाषा में 'पद्मचरिअ' की रचना की । अपभ्रंशभाषा में निबद्ध 'पउमचरिअ' महाकाव्य पॉच काण्डों में विभक्त है – विद्याधर काण्ड, अयोध्या काण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड । पहले काण्ड में बीस, दूसरे काण्ड में बाईस, तीसरे काण्ड में चौदह, चौथे काण्ड में इक्कीस और पॉचवे काण्ड में तेरह सन्धियॉ हैं । कुल मिलाकर नब्बे सन्धियॉ हैं । 'सन्धि' का अभिप्राय 'सर्ग' से है। अपभ्रंश भाषा का यह 'पउमचरिअ' महाकाव्य प्राकृत भाषा के पउमचरिअ और संस्कृत के पद्मपुराण (रविषेणकृत) से पर्याप्त प्रभावित है।

आदिकाव्य की जो मूल रामकथा है, उसे अपने सम्प्रदाय और मत के ढांचे में ढालकर पउमचरिअ में प्रयुक्त किया है। अतः सिद्धान्तों (प्रतिपाद्य प्रयोजन), चरित्रों और घटनाओं में वैभिन्न्य और वैचित्र्य है।

रिट्ठणेमिचरिअ अथवा हरिवंशपुराण – इस महाकाव्य के कर्ता भी स्वयंम्भू ही माने जाते हैं। यद्यपि विद्वानों में मतभेद है कि इसकी रचना पूर्णतया स्वयंभू ने ही की है। अथवा नहीं।

तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार या महापुराण – यह महाकाव्य पुष्पदन्त के द्वारा विरचित है। महाकवि पुष्पदन्त, पण्डितराज जगन्नाथ की ही तरह स्वाभिमानी थे। इन्होंने स्वयं को कव्वपिसल्ल, अभिमानमेरू, कविकुलतिलक, सरस्वतीनिलय और काव्यरत्नाकर जैसी उपाधियों से महिमामण्डित किया है। इनका स्थितिकाल दशम शताब्दी ई. है।

यह महाकाव्य मूलतः दो भागों में विभक्त है –आदिपुराण और उत्तर पुराण। उत्तर पुराण के भी दो भाग हैं – प्रथमार्ध और द्वितीयार्ध । पूरे महाकाव्य में कुल मिलाकर 102 सन्धियॉ हैं । प्रथम भाग आदि पुराण में प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती भारत के जीवन का वर्णन है। उत्तर पुराण के प्रथमार्ध में बीस तीर्थंकरों, आठ बलदेवों, आठ वासुदेवों और आठ प्रतिवासुदेवों का तथा दस चक्रवर्तियों का वर्णन है। अन्तिम बारह सन्धियों में जैन सम्प्रदायानुसार, रामकथा का वर्णन है।

उत्तरपुराण के द्वितीयार्ध में 81 से 102 तक सन्धियॉ है। आरम्भ की 12 सन्धियों में महाभारत की कथा वर्णित है। अन्तिम 102वीं सन्धि को छोड़कर शेष में क्रमशः (अर्थात् 93 से 101 में) पार्श्वनाथ, महावीर, जम्बूस्वामी और प्रीतिकर के वृत्तान्त हैं। 102वीं सन्धि में महावीरस्वामी के निर्वाण का वर्णन है।

उपर्युक्त महाकाव्यों के अतिरिक्त, धनपालकृत भविसयत्तकहा, रइधूकृत पद्मपुराण (या बलभद्रपुराण), यशः कीर्तिकृत पाण्डवपुराण तथा हरिवंश पुराण, श्रुतकीर्तिकृत हरिवंशपुराण, धवलकीर्तिकृत हरिवंशपुराण प्रमुख हैं। अपभ्रंश भाषा में 'रासो' महाकाव्यों की भी एक महत्वपूर्ण परम्परा है जिसमें चन्दवरदायी कृत पृथ्वीराजरासो अतिप्रसिद्ध है।

खण्डकाव्य – अपभ्रंश भाषा में अनेक उत्तम और महत्वपूर्ण खण्ड काव्य उपलब्ध हैं। कुछ खण्ड काव्यों में धार्मिक अभिव्यक्ति है और कुछ में लोकजीवन अभिव्यक्त हुआ है। लौकिक जीवन से सम्बद्ध खण्ड काव्यों की भी दो धारायें हैं – एक तो ऐतिहासिक चरितों को महत्त्व देता है और दूसरा स्पष्टतः लोक और कल्पना के समन्वय से निर्मित हुआ, इतिहास को गौण बना देता है। धार्मिक खण्ड काव्यों में महाकविपुष्पदन्त द्वारा विरचित 'णायकुमार

चरिउ' (नागकुमारचरितम्) विशेष प्रसिद्ध हैं । इस खण्डकाव्य का कलेवर नौ सन्धियों वाला है। सरस्वतीवन्दना से यह काव्य आरम्भ होता है और इसमें राजगृह के शासक श्रेणिक द्वारा पूछे जाने पर तीर्थंकर महावीर द्वारा श्रीपंचमीव्रत के महात्त्म्य का निरूपण किया गया है।

महाकवि पुष्पदन्त द्वारा 'जसहरचरिउ' भी एक उत्तम खण्ड काव्य है। जैन साहित्य में अतिप्रसिद्ध कथा के नायक 'यशोधर' हैं। उन्हीं के चरित का वर्णन इस मनोहर खण्डकाव्य में किया गया है। 'जसहरचरिउ' में महाकवि ने निर्वेद की तीव्र व्यञ्जना के साथ संसार की क्षणमङ्गुरता और असारता का वर्णन किया है।

अपभ्रंश भाषा में धार्मिक खण्ड काव्योंकी एक लम्बी परम्परा है। अम्बुसामिचरिउ, सुदेसणचरिउ, करकंडचरिउ, पउमसिरीचरिउ, पासचरिउ, पासणाहचरिउ, भविसयत्तचरिउ, पज्जुण्णचरिउ, जिणदत्तचरिउ, चन्दप्पहचरिउ, सरत्कुमारचरिउ आदि महत्त्वपूर्ण खण्डकाव्य हैं।

सन्देशरासक – इस खण्डकाव्य के कर्ता मुसलमान कवि अद्दहमाण (अब्दुर्रहमान) है। इसमें तीन प्रक्रम है। और तीनों में कुल मिलाकर 223 पद्य हैं । इस खण्ड काव्य में लौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। और विप्रलम्भ श्रृंगार का सुन्दर परिपाक हुआ है। 'सन्देशरासक' का स्थान अपभ्रंश साहित्य में महत्वपूर्ण है। अद्दहमाण के पिता का नाम मीरसेन था जो पेशे से जुलाहा (तन्तुवाय – बुनकर) थे।

'सन्देशरासक' एक सन्देश काव्य हैं । इसका रचनाकाल सुनिश्चित नहीं है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, इसका रचना काल ग्यारहवीं ई. शताब्दी मानते हैं जबकि डॉ. कत्रे ने इसे ग्यारहवीं और चौदहवीं ई. के बीच माना है। श्री अगरचन्द नाहटा ने इस काव्य का रचनाकाल चौदह सौ (1400) वि. सं. (लगभग) माना है।

सन्देशरासक का प्रथम प्रक्रम प्रस्तावना के रूप में है। द्वितीय प्रक्रम में षड्ऋतु वर्णन के साथ कथ्य का समापन है। इसमें मुल्तान प्रदेश और खम्भात शहर का जिक्र किया गया है। काव्य में विविध छन्दों का प्रयोग और अलंकारों की सुन्दर योजना सहृदय को आह्लादित करती है।

कीर्तिलता – 'कीर्तिलता' खण्डकाव्य के कर्ता सिद्धकवि विद्यापति हैं। यह एक ऐतिहासिक चरित काव्य हैं। इसमें कवि ने अपने प्रथम आश्रयदाता राजा कीर्तिसिंह के यश का काव्यात्मक वर्णन किया है। महत्वपूर्ण यह है कि अपभ्रंश भाषा में विरचित कीर्तिलता, अपनी शैली का एकमात्र काव्य है। 'कीर्तिलता' में चार विभाग हैं जिन्हें 'पल्लव' कहा गया है। विद्यापति ने बीस वर्ष की आयु में ही इस सुन्दर काव्य की रचना की थी। विद्यपति मिथिला

प्रान्त के रहने वाले थे और इनका स्थिति काल 1350 ई. से 1447 ई. तक माना जाता है।

मुक्तककाव्य –

अपभ्रंश में दो प्रकार के मुक्तक काल उपलब्ध होते हैं – धर्म सम्बन्धी और विशुद्ध साहित्यिक । जैन सम्प्रदाय के आचार्य कवियों द्वारा विरचित धर्म सम्बन्धी मुक्तक काव्यों में आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों प्रकार के ग्रन्थ मिलते हैं। इनमें आन्तरिक शुद्धि और सदाचार पर ही बल दिया गया है। योगीन्दु या योगीन्द्राचार्य द्वारा लिखित 'परम्पयासु' (परमात्मप्रकाश) और 'योगसार' प्रसिद्ध मुक्तक काव्य है। मुनि रामसिंह कृत पाहुडदोहा, सुप्रभाचार्यकृत वैराग्यसार, मुनि महचन्दकृत दोहापहुउ आदि उल्लेख्य ग्रन्थ हैं।

सर्वसाधारण के लिए नीति, सदाचारादि विषयक धर्मोपदेशों का प्रतिपादन करने वाली अधिभौतिक रचनायें भी जैन सम्प्रदाय में मुक्तक काव्य के रूप में मिलती है। देवसेन विरचित साक्यधम्मदोहा, जिनदत्तसूरिकृत उपदेससायहरास, जयदेवमुनिकृत भावना सन्धिप्रकरण, सोमप्रभाचार्यकृत द्वादशभावना, महेश्वरसूरिकृत संयममञ्जरी, भट्टारकविजयचन्द्रमुनि विरचित चूनड़ी आदि इसी कोटि के मुक्तक काव्य हैं।

बौद्ध सम्प्रदाय के वज्रपानी और सहजयानी– सिद्धों ने भी अपभ्रंश में मुक्तक काव्य रचनाएं की हैं। भ. म. हर प्रसाद शास्त्री ने इनकी रचनाओं का एक संग्रह, 'हाजारबजरे पुराण बांगला भाषाय बौद्धगान ओ दोहा' नाम से बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता से 1916 ई. में प्रकाशित कराया है। इसी प्रकार, चौरासी सिद्धों में सरह, सबर, लूई, दारिका, शान्ति, कण्हया आदि प्रमुख सिद्धों की अधिकांश रचनाएं 'होहाकोश संग्रह' में संकलित है।

अपभ्रंश की मुक्तक काव्य परम्परा में वे भी मुक्तक काव्य आते हैं। जो संस्कृत और प्राकृत के काव्य शास्त्र विषयक ग्रन्थों में उदाहरण के रूप में बिखरे हुए प्राप्त होते हैं। इनके वर्ण्यविषय सामान्यजीवन से सम्बद्ध हैं।

अपभ्रंश भाषा में कुछेक रूपक भी मिलते हैं। हरदेवकृत 'मयणपराजयचरिउ' , बुच्चरायकृत 'मयणजुज्झ' आदि रूपक उल्लेखनीय हैं। सोमप्रभा चार्य कृत प्राकृतभाषा के रूपक 'कुमारपालप्रतिबोध' में 'जीवमनःकरणसंल्लापकथा' अपभ्रंशात्मक अंश हैं।

अपभ्रंश के गद्यकाव्यों में उद्योतनसूरिकृत 'कुवलयमालाकथा' उल्लेख्य हैं। विद्यपति कृत 'कीर्तिलता' में भी सुन्दर अपभ्रंश गद्य मिलता है।

5.4 अपभ्रंश का संक्षिप्त व्याकरण

अपभ्रंश भाषा में प्राप्त होने वाली ध्वनियॉं (स्वर–व्यंजन) प्रायः प्राकृतभाषा की ध्वनियों के समान हैं । अपभ्रंश में अनुस्वार (अं) को स्वर न मानकर व्यंजन माना गया है। और विसर्ग (अः) का पूर्णतः लोप है। मूर्धन्यय और तालव्य 'ष' तथा 'श' ध्वनियॉं लुप्त हैं । केवल दन्त्य 'स' ध्वनि ही अवशिष्ट और प्रयोग में है। अपभ्रंश की कुछ प्रमुख ध्वनि सम्बन्धी विशेषताएं संस्कृत भाषा के सापेक्ष अधोलिखित हैं –

विशेषताएं (संस्कृतभाषा के सापेक्ष) अधोलिखित हैं –

1. 'ऋ' के लिए 'अ', 'आ' और 'इ' । यथा – कृत्य – कच्च, काव्य।
पृष्ठ – पिट्ठ, पिट्ठि ।

2. 'अ' के लिए 'इ', 'ई' और 'ए' । यथा – पृष्ठ – पिट्ठि, वचन – वेण, वीण।

3. यद्यपि 'उ' ध्वनि का अपभ्रंश में दकाचित् प्रयोग मिलता है। (यथा – बाहु) किन्तु इस ध्वनि के लिए 'अ' और 'आ' ध्वनि। यथा – बाहु – बाह, बाहा।

4. इसी प्रकार 'ए' ध्वनि भी कदाचित् प्रयुक्त है। तथापि 'ए' के लिए 'इ' और 'ई' +यथा –लेखा – लिह, लीह और लेह ।

5. स्वरों के बीच में आने वाली असंयुक्त 'क', 'ख', 'त', 'थ', 'प' और 'फ' ध्वनियों के स्थान पर क्रमशः 'ग', 'घ', 'द', 'ध', 'ब' और 'भ' ध्वनियों का प्रयोग। यथा – शपथ – सबथ, विक्षोमकर – विच्छोहगर । कथितं – कधिदु, सफलं – सभलउं ।

6. कदाचित् अनादि और असंयुक्त 'म' के लिए 'वॅं; । यथा – कमलं – कवॅंलु, भ्रमर – भवॅंरू, जेम – जेवं ।

7. व्यञ्जन के पश्चात् प्रयुक्त 'र' का लोप। यथा – प्रिय – पिउ, चन्द्र – चन्द,

8. कदाचित् 'र' का आगम (प्रायः 'य' के स्थान पर) । यथा – व्यास – व्रास– व्रासु, व्याकरण– व्रागरण, वागरण ।

9. आपद, विपद् और संपद् की 'द' ध्वनि के लिए 'इ'। यथा – आपद्– आपइ, विपद्– विपइ , संपद् – संपइ ।

10. महाराष्ट्री प्राकृत की 'म्ह' ध्वनि के लिए 'म्भ' । यथा – गिम्ह (ग्रीष्म) गिम्भो, सिम्ह (श्लेष्म) – सिम्भो ।

शब्द रूप

अकारान्त पुल्लिंग शब्द – पुत्त (पुत्रः)

विभक्ति	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	पुत्त,पुत्तउ, पुत्ता, पुत्तु, पुत्तो	पुत्त, पुत्ता
द्वितीया	" " " " "	" "
तृतीया	पुत्तेण, पुत्तें, पुत्ते, पुत्ति, पुत्तिणि	पुत्तेहिं, पुत्तेहि, पुत्तेंहि, पुत्तेहहिं पुत्तिर्तिं, पुंत्तहि, पुत्तहि, पुत्तहिं
चतुर्थी एवं षष्ठी	पुत्तसु, पुत्तस्सु, पुत्तहो, पुत्तहों	पुत्तहं, पुत्ताहं, पुत्ताणं
पञ्चमी	पुत्तहे, पुत्तहें, पुत्तहु	पुत्तहु, पुत्तहुँ
सप्तमी	पुत्ति, पुत्तइ, पुत्ते, पुत्तें पुत्तए, पुत्तएँ, पुत्तहि, पुत्तहिं	पुत्तहिं, पुत्तेहिं, पुत्तिहिं
आमन्त्रण	पुत्त, पुत्ता	पुत्तहो

अकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द

कमल

प्रथमा	कमल, कमलु	कमलइं, कमलइँ
द्वितीया	कमल, कमलु	कमलइं, कमलइँ

शेष रूप 'पुत्त' के समान

आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द

बाला

प्रथमा	बाला	बाला, बालउ, बालाउ
द्वितीया	बाला	बाला, बालउ, बालाउ
तृतीया	बालाए, बालाएँ	बालहिँ,बालहिं
चतुर्थी एवं षष्ठी	बालहें	बालहु, बालहं, बालहँ
पञ्चमी	बालेहँ	बालहु
सप्तमी	बालहिं, बालहिँ	बालहिं, बालहिँ, बालहुं
आमन्त्रण	बाल, बाला	बाला, बालउ, बालाउ

इकारान्त पुल्लिंग शब्द

अग्नि

प्रथमा	अग्गि, अग्गी	अग्गी, अग्गिहो

द्वितीया	अग्गिं, अग्गी	'' ''
तृतीया	अग्गिण, अग्गिं, अग्गीएं	अग्गीहि
चतुर्थी एवं षष्ठी	अग्गिहें	अग्गि, अग्गिहिं, अग्गिहुँ
पञ्चमी	अग्गिहे, अग्गिहिन्तो	अग्गिहुँ, अग्गीहिंतो
सप्तमी	अग्गिहिं	अग्गिहिं, अग्गिहुँ
आमन्त्रण	अग्गि, अग्गी	अग्गिहों

ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द

णदी (नदी)

प्रथमा	णदि, णदी	णदी, णदिउ
द्वितीया	'' ''	'' ''
तृतीया	णदिए, णदिएँ	णदीहि, णदीहिं
चतुर्थी	णदिएँ, णदिहें	णदिसु, णदीणं
पञ्चमी	'' ''	णदिहु
षष्ठी	'' ''	णदिहु, णदीणं
सप्तमी	णदि, णदी, णदिहिं	णदीहि, णदिहिं, णदिहुँ
आमन्त्रण	णदि	णदिहों

उकारान्त नपुंसक शब्द

महु (मधु)

प्रथमा	महु, महू	महूइं, महूइँ
द्वितीया	'' ''	'' ''
आमन्त्रण	'' ''	'' ''

शेष रूप 'वाऊ' शब्द के समान

ऊ कारान्त पुल्लिंग शब्द

वाऊ (वायु)

प्रथमा	वाऊ, वाउ	वाऊ, वाउ
द्वितीया	'' ''	'' ''
तृतीया	वाऊण, वाउ (वाएँ)	वाऊहि, वाऊहिं, वाऊहिँ
चतुर्थी	वाऊहें	वाउ, वाऊहिं, वाउहुँ
पञ्चमी	वाउहें, वाउहिन्तो	वाउहुँ, वाऊहिन्तो

षष्ठी	वाउहे	वाउहिँ, वाउहुँ, वाउ
सप्तमी	वाउहि	वाउहिं, वाउहुँ
आमन्त्रण	वाउ, वाऊ	वाउहों

सर्वनाम शब्दों के रूप

अस्मद् (मैं)

प्रथमा	हउँ, हउं	अम्हे, अम्हइँ, अम्हइं
द्वितीया	मइँ, मइं	” ” ”
तृतीया	मइँ, मइं	अम्हेहिँ, अम्हेहिं
चतुर्थी	महु, मज्झ, मज्झु	अम्हहँ, अम्हहं
पञ्चमी	” ” ”	” ”
षष्ठी	” ” ”	” ”
सप्तमी	मइं, मइं	अम्हासु

युष्मद (तुम)

प्रथमा	तुहुँ, तुहुं	तुम्हे, तुम्हइँ, तुम्हइं
द्वितीया	तइँ, तइं, पइँ, पइं	” ” ”
तृतीया	” ” ” ”	तुम्हेहिँ, तुम्हेहिं
चतुर्थी	तउ, तुज्झ,तुज्झु, तुज्झह, तुध्र, तुह	तुम्हहँ, तुम्हहं
पंचमी	तउ, तुज्झ, तुध्र	” ”
षष्ठी	तउ, तुज्झ, तुज्झु तुज्झह, तुध्र, तुह	” ”
सप्तमी	तइँ, तइं, पइँ, पइं	तुम्हासु

पुल्लिंग 'यत' (जो)

प्रथमा	जु, ध्रं
द्वितीया	” ”
पंचमी	जहाँ
षष्ठी	जासु
सप्तमी	जहिं

'यत' के शेष सभी रूप अकारान्त पुल्लिंग शब्दों के समान । 'यत्' के ही

समान् 'तत्' और 'किम्' के रूप भी बनते हैं। कहीं–कहीं तनिक अन्तर होता है।

पुल्लिंग 'एतत्' (यह)

प्र.	एहो	एइ
द्वि.	एहो	एइ

शेष रूप 'पुत्त' शब्द के रूपों के समान

नपुंसकलिंग 'एतत्'

प्र.	एहु	एइ
द्वि.	एहु	एइ

शेष रूप 'पुत्त' के समान

स्त्रीलिंग 'एतत्'

प्र.	एहु	एह
द्वि.	एहु	एइ

शेष रूप 'पुत्त' के समान ।

धातु रूप

अपभ्रंश भाषा में धातु रूपों के लिए अधोलिखित लकारों में लगने वाले प्रत्यय इस प्रकार हैं –

वर्तमानकाल (लट् लकार) परस्मैपद

प्रथम पुरूष	इ	न्ति, हिं, हिँ
मध्यम पुरूष	सि, हि, हिं, हिँ	हु
उत्तम पुरूष	उं, उँ, आमि, एमि	हु, हुं, मु

आज्ञार्थक (लोट् लकार) पर. प.

म.पु.	इ, उ, ए, ह, हि, हिं	ह, हिं, हु

भविष्यत्काल में भी वर्तमानकाल केही समान रूप बनते हैं। केवल धातु और प्रत्यय के बीच 'स' का आगम हो जाता है। उदाहणार्थ कुछ रूप इस प्रकार हैं।

धातु कृ (कर), लकार 'लट्'

प्र.पु.	करइ, करदि	करन्ति, करहिं, करहिँ
म.पु.	करसि, करहि, करहिं, करहिँ	करहु
उ.पु.	करउं, करउँ, करामि, करेमि	करिमु, करहुँ, करहुं

आज्ञार्थक – लकार 'लोट्'

म.पु.	करि, करइ, करे, करू, करहि, करहिं	करह, करहु, करहि

भविष्यत्काल – लिट् लकार

प्र.पु.	करिसइ, करिहइ	करिसहि, करिहहि
म.पु.	करीहिसि, करिसहि	करिसहु, करिहहु
उ.पु.	करीसु, कीसु	करिसहुं, करिसउँ

तद्धित प्रत्यय

अपभ्रंश भाषा में अधोलिखित तद्धित प्रत्यय होते हैं –

1. संज्ञा शब्दों से स्वार्थ में 'अ', 'डड' और 'डुल्ल' प्रत्यय होते हैं, यथा– अग्गिट्ठ +अ– अग्गिट्ठअ, दोस+डउ–दोसड, कुड+डुल्ल– कुडुल्ली
2. 'एक्कस' (एकशः) शब्द से स्वार्थ में 'डि' प्रत्यय होता है।
   एक्कस + डि– एक्कसि ।
3. 'अक्स' से स्वार्थ में 'इ' और डें' प्रत्यय होता है।
   अवस +ड –अवस, अवस + डें – अवसें ।
4. 'पुनः' और 'बिना' शब्दों से स्वार्थ में 'डु' प्रत्यय होता है।
   पुन + डु – पुणु, विना + डु – विणु। (डु – उ) ।
5. अस्मद्, युष्मद्आदि शब्दों से संस्कृत के 'ईय' प्रत्यय के अर्थ में अपभ्रंश में 'डार' प्रत्यय होता है।
   अस्मद् (अम्ह) +डार– अम्हार, युष्मद् (तुहं) +डार– तुहार।
6. इदम्, किम्, यत्, तत् आदि शब्दों से 'डेत्तुल' प्रत्यय होता है।
   इद्म + डेत्तुल –एत्तुलो (इतना), किम्+डेत्तुल–केत्तुल (कितना), यत्+डेत्तुल–जेत्तुल (जितना), तत्+डेत्तुल–तेचुल (उतना)।
7. सप्तमी विभक्ति के अर्थ में सब्ब, यत्, तत् आदि शब्दों से 'डेत्तहे' प्रत्यय होता है । यत् +डेत्तहे–जेत्त्हे (जितने में), इत्यादि।
8. संस्कृत के 'त्व' और 'तल्' प्रत्ययों के अर्थ में 'पण्ण' प्रत्यय होता है। वडु + प्पण – वडुप्पण ।

उपर्युक्त तद्धित प्रत्ययों के अतिरिक्त भी अनेक तद्धितप्रत्यय अप्रभ्रंश में होते हैं।

कृदन्त प्रत्यय

अपभ्रंश भाषा में प्रयुक्त कुछ मुख्य 'कृत्' प्रत्यय अधोलिखित हैं–

1. 'क्त्वा' के अर्थ में (पूर्वकालिक क्रिया) 'इ', 'इउ', 'इवि' और 'अवि' प्रत्यय होते हैं। कर (कृ) +इ–करि, कर+इउ–करिअ (य), कर+इवि –करिवि, कर+अति–करवि।

2. 'क्त्वा' के ही अर्थ में एप्पि, एप्पिणु, एवि, एविणु – ये चार प्रत्यय भी होते हैं । कर+एप्पि–करेप्पि, कर+एप्पिणु – करेप्पिणु, कर+एवि–करेवि, कर+एविणु–करेविणु ।

3. संस्कृत के 'तव्य' प्रत्यय (भाव एवं कर्म) के अर्थ में 'इएव्वउ', 'एव्वउं' और 'एवा' प्रत्यय होते हैं। कर+इएव्वउं – करिएव्वउं (कर्तव्यम्)

कर+एव्वउं – करेव्वउं, कर + एवा – करेवा

4. 'तुमुन्' अर्थ में 'एवं' , 'अण', 'अणहं', 'अणहिं' प्रत्यय होते हैं।

कर+एवं – करेवं, कर +अण – करण, कर+अणहं – करणहं, कर+अणहिं – करणहिं ।

5. शील आदि अर्थ में धातु से 'अणअ' प्रत्यय लगता है ।

कर+अणअ – करणअ, मार+अणअ –मारणअ ।

5.5 पाठ संचय

5.5.1 अपभ्रंशमुक्तसंग्रहः

जेमहुदिण्णा दिअहडा दइएँ पवसन्तेण ।
ताण गणन्तिएँ अंगलिउ जज्जरिआउ नहेण ।।1।।
सायरु उप्परि तणु धरइ तलि घल्लइ रयणाइं ।
सामि सुभिच्चु वि परिहरइ संकाणेइ खलाइं ।।2।।
जो गुण गोवइ अप्पणा पयदा करइ परस्सु ।
तसु हउँ कलिजुगि दुल्लहो बलिकिज्जउँ सुअणस्सु ।।3।।

संस्कृत रूपान्तर

ये मम दत्ताः दिवसाः दयितेन प्रवसता।
तान् गणयन्त्याः अङ्गुल्यो जर्जरिताःनखेन ।।1।।
सागर उपरि तृणानि धरति तले क्षिपति रत्नानि ।
स्वामी सुमृत्यमपि परिहरति सम्मानयति खलान् ।।2।।
यो गुणान्गोपयत्यात्मीयान् प्रकरान् करोति परस्प।
तस्याहं कलियुगे दुर्लभस्य बलिं करोमि सुजनस्य।।3।।

हिन्दी अनुवाद

प्रवास जाते हुए (मेरे) प्रियतम ने मुझे जितने दिनों (की अवधि) को दिया था, उन्हें गिनते हुए नखों से मेरी अंगुलियाँ जर्जरित (चोटिल) हो गयीं।।1।।

समुद्र अपने ऊपर तृणों (घास फूस) को धारण करता है और रत्नों को तल में डाल देता है। (सच है) स्वामी अच्छे सेवक को त्यागता है। (उपेक्षा करता है) और दुष्टों (सेवकों) का सम्मान करता है।।2।।

जो अपने गुणों को छिपाता है और दूसरों के गुणों को प्रकाशित करता है, कलियुग में दुर्लभ उस सुजन पर मैं न्यौछावर हो जाता हूँ।।3।।

अग्गिएं उण्हउ होइ जगु वाएँ सीअनुतेवं ।
जो पुणु अग्गिं सोअला तसु उण्हत्तणु के वँ ।।4।।

जिवँ जिवँ मंकिम लोअणहिं णिरु सामलि सिक्खेइ।
तिवँ तिवँ वम्मडु निअय–सर खर–पत्थरि तिक्खेइ ।।5।।

भल्ला हुआ जु मारिआ बहिणि महारा कन्तु ।
लज्जेज्जन्तु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एन्तु ।।6।।

वायसु उड्डावन्तिअए पिउ दिठ्टउ सहसत्ति।
अद्धा वलया महिहि गय अद्धा फुट्टतडत्ति।।7।।

संस्कृत रूपान्तर

अग्निनोष्णं भवति जगत् वातेन शीतलं तथा।
यः पुनरग्निना शीतलःतस्योष्णत्वं कथम्।।4।।

यथा यथा वक्रिमाणं लोचनयोःनितरांश्यामला शिक्षते।
तथा तथा मन्मथो निजकशरान् खरप्रस्तरे तीक्ष्णयति ।।5।।

भद्रं भूतं यन्मारितो भगिनि ! मदीयः कान्तः ।
अलज्जिष्यं वयस्याभ्यो यदि भग्नो गृहमैष्यत् ।।6।।

वायसमुड्डायन्त्याः प्रियो दृष्टः सहसेति ।
अर्धानि वलयानि मह्यां गतान्थर्धानि स्फुटितानि तटिति।।7।।

हिन्दी अनुवाद

अग्नि से यह संसार उष्ण होता है और हवा से शीतल होता है, किन्तु जो अग्नि से (भी) शीतल होता है उसके लिए उष्णता कैसी? ।।4।।

साँवरी जैसे जैसे अपने नयनोंमें बाँकपन लाना सीखती है, वैसे वैसे कामदेव अपने बाणों को कठोर पत्थर पर तेज करता है।।5।।

हे बहन! यह अच्छा ही हुआ कि मेरा प्रियतम (पति) (युद्ध) में मारा

गया। क्यों कि यदि वह घायल होकर घर भाग आता तो मैं सखियों से लजवायी जाती।(अथवा सखियों के सामने मुँह दिखाने लायक न रहती)।।6।।

कौवा उड़ाती हुई (नायिका)ने सहसा (परदेस से आते हुए) प्रियतम पति को देख लिया।फलतः (हाथोंकी) आधी चूड़ियॉ जमीन पर गिर गयीं और आधी तड़ तड़ कर टूट गयी।।7।।

एक्कहिं अक्खहिं सावणु अन्नहिं भद्दवउ,
माहउ महिअल–सत्थरि गण्डत्थलें सरउ।
अङ्गहिं गिम्ह सुहच्छीतिल वणिमग्गसिरु,
तहें मुद्धहें मुह–पङ्कइ आवासिउ सिसिर ।।8।।
जह पुच्छह घर वड्डाइं तो वड्डा घर ओइ ।
विहलिअ–जण–अब्भुद्धरणु कन्तुकुडीरइ जोइ ।।9।।
अम्बणु लाइवि जे गया परिअ पराया केवि ।
अवस न सुअहिं सुहच्छिअहिं जिवँ अम्हइं तिवँ तेवि ।।10।।

संस्कृत रूपान्तर

एकस्मिन्नक्षिण श्रावणोऽन्यस्मिन् भाद्रपदः
माधवो महीतलस्रस्तरे गण्डस्थले शरत् ।
अङ्गेषु ग्रीष्मः सुखासिकातिलवने मार्गशीर्षः
तस्याः मुग्धायाः मुखपङ्कजे आवासितः शिशिरः ।।8।।
यदि पृच्छथ गृहाणि महान्ति तन्महान्ति गृहाण्यमूनि ।
विह्वलितजनाभ्युद्धरणं कान्तं कुटीरके पश्य ।।9।।
अम्लत्वं लागयित्वा ये गताः पथिकाः परकीयाः केऽपि।
अवश्यं न स्वपन्ति सुखासिकायां यथा वयं तथा तेऽपि ।।10।।

हिन्दी अनुवाद

उस नायिका की एक ऑख में सावन है तो दूसरी में भादों। जमीन के बिछौने पर माघ है तो गालों पर शरद्ऋतु। अंगों में निदाध है तो पलंग के तिलवन में अगहन। उस मुग्धा (नायिका) के मुख कमल में शिशिरऋतु ने डेरा जमा लिया है।।8।।

यदि बड़े घर पूछते हो तो देखो वे बड़े धर हैं। किन्तु दुःख कातर लोगों का उद्धार करने वाले मेरे प्रिय पति को इस कुटिया में देखो।।9।।

ललक लगाकर जो बटोही परकीय होकर (दूसरी नायिकाओं के होकर) चले गये, वे भी निश्चय ही हमारी तरह ही पलंग पर सुखपूर्वक नहीं

सोते होंगे।।10।।

महुकन्तहों बे दोसडा हेल्लि म जङ्खुहि आलु ।
देन्तहों हउँ पर उव्वरिअ जुज्झन्तहोंकरवालु ।।11।।
जइ भग्गा पारक्कडा तो सहि मज्झु पिएण ।
अह भग्गा अम्हइं तणा तो तें मारिअडेण ।।12।।
बप्पीहा पिउ पिउ भणवि कित्तिउ रूअहि हयास ।
तुह जलि महु पुणुवल्लहइ बिहुँ वि न पूरिअ आस ।।13।।
बलि अब्भत्थणि महु–महणु लहुईहूआ सोइ ।
जइ इच्छहु वड्डत्तणउँ देहु म मग्गहु कोई ।।14।।

संस्कृत रूपान्तर

मम कान्तस्य द्वौ दोषौ हले !मा यन्त्रयस्वालीकम् ।
ददतोऽहं परमुर्वरिता युध्यमानस्य करवालः ।।11।।
यदि भग्नाः परकीयाः तत्सखि ! मम प्रियेण ।
अथ भग्नाः अस्मदीयाः तत्तेन मारितेन ।।12।।
चातक! 'प्रिय–प्रिय' भणित्वा कियद् रोदिषि हताशः ।
तव जले मम पुनर्वल्लभे द्वयोरपि न पूरिताऽऽशा ।।13।।
बल्यभ्यर्थने मधुमथनो लघुकीभूतः सोऽपि ।
यदिच्छ सि महत्त्वं, देहि मा मार्गय कमपि ।।14।।

हिन्दी अनुवाद

अरी (सखि) ! झूठ को छिपाओ नहीं, मेरे पति के दो दोष (हैं)। दान करते हुए मैं बच गयी (शेष रह गयी) और युद्ध करते हुए तलवार (ही बची रही) ।। 11।।

हे सखि!यदि शत्रु मारे गये हैं तो निश्चय ही मेरे प्रिय के द्वारा (वे मारे गये हैं) और यदि हमारे पक्ष के लोग मारे गये हैं तो निश्चय ही मेरे प्रिय के मारे जाने केबाद ही ।।12।।

अरे पपीहा ! 'पी–पी' रटते हुए हताश होकर कितना रोओगे? न जल के सम्बन्ध में तुम्हारी और न प्रिय के सम्बन्ध मेंरी – (इस प्रकार) दोनों की ही आशा पूरी नहीं हुई ।।13।।

बलि से याचना करने में वे विष्णु भी छोटे (वामन) हो गये थे। अतः यदि बड़प्पन चाहते हो तो दान दो, किसी से माँगो मत।।14।।

सन्ता भोग जु परिहरइ तसु कन्तहों बलि कीसु।

जसु दइवेण वि मुण्डियउँ जसु खल्लिहडउँ सीसु ।।15।।

पुत्तें जाएँ कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण ।

जा बप्पी की भुंहडी चम्पिज्जइ अवरेण ।।16।।

जइ केवँइ पावीसु पिउ अकिआ कुड्ड करीसु ।

पाणिउ नवइ सरावि जिवँ सव्वङ्गे पइसीसु ।।17।।

बिप्पिअ– आरउ जइ विपिउ तो वितं आणहि अज्जु ।

अग्गिण दड्ढा जइ वि धरु तो तें अग्गिं कज्जु ।।18।।

संस्कृत रूपान्तर

सतो भोगान् यः परिहरति तस्य कान्तस्य बलिं क्रिये ।

तस्य दैवेनैव मुण्डितं यस्य खल्वाटं शीर्षम् ।।15।।

पुत्रेण जातेन को गुणोऽवगुणः कः मृतेन ?

यत्पैतृकी भूमिः आक्रम्यतेऽपरेण ।।16।।

यदि कथञ्चित्प्राप्स्यामि प्रियमकृतं कौतुकं करिष्यामि ।

पानीयं नवे शरावे यथा सर्वाङ्गे प्रवेक्ष्यामि ।।17।।

विप्रियकारको यद्यपि प्रियः तदपि तमानयाद्य ।

अग्निना दग्धं यद्यपि गृहं तदपि तेनाग्निना कार्यम् ।।18।।

हिन्दी अनुवाद

मैं उस प्रियतम की बलिहारी जो (मोगों के) रहते हुए भी मोगों को छोड़ देता है। जिसका सिर खल्वाट है, उसे तो दैव ने पहले से ही मूँड़ दिया है।।15।।

उस पुत्र के होने से क्या गुण (लाभ) और मरने (न होने) से क्या अवगुण (हानि) ? यदि पैतृक भूमि दूसरों के द्वारा कब्जा कर ली जाती है।।16।।

यदि किसी तरह प्रिय को पा जाऊँ तो अपूर्व (न किया हुआ) कौतुक करूँगी। जैसे नये मिट्टी के कसौरे में जल व्याप्त हो जाता है, वैसे ही मैं उसके सारे अंग में व्याप्त हो जाऊँगी।।17।।

प्रियतम यद्यपि अप्रिय कार्य करने वाले हैं तो भी उन्हें आज ले आओ। यद्यपि घर आग से जल गया है तथापि उस आग से काम पड़ता ही है।।18।।

टिप्पणी

दिण्णा 'दत्ताः । दा+क्त, बहुवचन । प्रियतमा को अपने प्रवास के दिन दिये

प्रियतम ने अर्थात् अवधि बताकर गया था कि इतने दिनों बाद आऊँगा। **जज्जरि–आउ** – जर्जरिताः । कट–पिट गयीं । नाखून बड़े और तीक्ष्ण होने के कारण, गिनने के लिए अंगुलियों पर बार–बार फिराने से, उस नाखून ने अंगुलियों को तार–तार कर दिया। **दुल्लहो** – दुर्लभः । दुःखेन लाभः प्राप्तिर्यस्य स दुर्लभः । कलियुग में वैसे ही सुजन दुर्लभ हैं और अपने गुणों को छिपाकर दूसरों के गुण प्रकट करने वाले सुजन तो दुर्लभतर है। **बलिं किज्जउँ** – बलिं करोमि.। लोक में 'वारी जाऊँ', 'बलिहारी जाऊँ' ऐसे प्रयोग बहुलतया मिलते हैं । यह प्रशंसात्मक प्रयोग है और व्यक्ति के गुणों, उसके कर्तृत्व आदि के लिए सर्वथा समर्पण का भाव इसमें निहित है। **भल्ला हुआ** –भद्रं भूतम् । कहीं कहीं 'भद्रं' के स्थान पर 'भल्ला' का संस्कृत रूपान्तर 'भव्यं' किया गया है। 'भव्यं' की अपेक्षा 'भद्रं' अधिक उपयुक्त है। हिन्दी में तो एकदम समान प्रयोग है। भला हुआ (अच्छा हुआ) । इस गाथा में एक वीर क्षत्राणी का वीरोचित हार्दिक भाव अत्यन्त मार्मिक रूप में अभिव्यक्त हुआ है। **वायसु उड्डावन्तिए** –वायसम् उड्डापयन्त्या । कौवे को उड़ाती हुई। कौवे से उड़ने के लिए कह कर प्रिय जन के आगमन का शकुन जानने की परम्परा लोक में पूर्वतः प्रचलित हैं । यहाँ इस गाथा में प्रिय के सहसा दिखाई दे जाने पर विरहिणी गायिका के साध्वस भाव का अत्यन्त सटीक वर्णन है। **अम्बणुलाइव** – अम्लत्वं लागयित्वा । यह इसका उचित संस्कृत रूपान्तर प्रतीत नहीं होता। यहाँ भाव ललचाने का है। जैसे दूसरे को अम्लीय व्यंजन (खआई, अचार) खाते देख दूसरे के मूँह में भी पानी आ जाता है। वैसा ही कुछ भाव यहाँ है। पथिक (नायक) के प्रति नायिका की यह उक्ति है । **बलि–अब्मत्थणि** – बलि–अभ्यर्थने । बलि से याचना करने में । इस गाथा में एक पौराणिक कथा का संकेत है। जिसमें दानवराज बाली से भूमि माँगने के लिए भगवान विष्णु को वामन बनना पड़ा था। इस दृष्टान्त से कवि शिक्षा देता है कि यदि बड़प्पन चाहते हो तो माँगों मत, कुछ दो ही ।

5.5.2 सन्देशरासकम्

(क)

जइ अत्थि णई गंगा तियलोए णिच्च–पयडिय–पहावा।
बच्चइ सायस्समुहा ता सेस–सरी म वच्चन्तु ।।1।।
जइ सरवरम्मि विमले सूरे उइयम्मि विअसिआ नलिणी।
ता किं वाडि विलग्गा मा बिअसउ तुंबिणी कह वि ।।2।।
जइ भरहभावछन्दे णच्चइ णवरंग–चंगिमा तरूणी ।

ता किं गाम–गहिल्ली वाली–सद्देण णच्चेई ।।3।।

जइ बहुल–दुद्धे संमीलिआ य उल्ललइ तण्दुलाखीरी।

ता कण–कुक्कससहिआ रब्बडिआ मा दडब्बडउ ।।4।।

संस्कृत रूपान्तर (क)

यद्यस्ति नदी गंगा त्र्यैलोक्ये नित्यप्रकटितप्रभावा ।

व्रजति सागरसम्मुखं तत् शेषसरितो मा ब्रजन्नु ।।1।।

यदि सरोवरे विमले सूर्ये उदिते विकसिता नलिनी ।

तत्किं वाटिका विलग्नामा किवसतु तुम्बिनी कथमपि ।।2।।

यदि भरतभावछन्दसि नृत्पति नवरङ्ग चङ्गिमा तरुणी।

तत्किं ग्रामगर्दभिल्ली ताली शब्दे न नर्तयति ।।3।।

यदि बहुलदुग्धे सम्मिलिताश्चोल्लसन्ति तण्डुलाःक्षीरिणः ।

तत्कणतुष (कर्कश) सहिता रब्बडिका मा दडबडायतु।।4।।

हिन्दी अनुवाद (क)

यदि तीनों लोकों में नित्य प्रकटित प्रभाव वाली गंगा नदी समुद्र में जाती है तो अन्य नदियॉ चाहे जायें या न जायें।।1।।

यदि सूर्य के उदित होने पर निर्मल सरोवर में कमलिनी खिलती है, तो बाड़ी में लगायी गयी तुम्बिनी (तुमड़ी – लौकी) फुले या न फूले ।।2।।

यदि भरतमुनि प्रणीत भाव और छन्द (ताल और मात्रा) के अनुसार नूतन रंगमञ्च पर कलाचतुर (नर्तकी) तरूणी नृत्य करती है तो गॉव की गदहियॉ (गॅवार स्त्रियॉ) ताली बजाकर नाचें या न नाचें ।।3।।

यदि पर्याप्त दूध में मिलाये गये खीर के चावल उबाल खाते हैं तो किनकी और भूसी सहित रबड़ी (बर्तन मे) डबडबाये या यन डबडबाये।।4।।

जा जस्स कव्वसत्ती सातेण अलज्जिरेण भणियव्वा ।

जइ चउमुहेण भणियं ता सेस–कई मा भणिज्जन्तु ।।5।।

(ख)

तवण–तित्थु चाउद्दिसी मियच्छि बखाणिअइ

मूलथाणु सुपसिद्धउ महियलि जाणियइ।

तिहँ हुन्तउ हउँ इक्किण लेहउ पेसियउ ,

खम्भाइत्तई वच्चउँ पहु – आएसियउ ।।1।।

एय वयण अयन्निवि सिन्धुब्भव–वयणि

सिसिउ सासु दीरूहुन्हउ सलिलब्भव–नयणि।
तोडि करंगुलि करूण सगग्गिर गिर पसरू
जालन्धरि समीरिण मुद्ध थरहरिअ चिरू ।।2।।

संस्कृत रूपान्तर

या यस्य काव्यशक्तिः सा तेनालज्जिरेण भणितव्या ।
यदि चतुर्मुखेण भणितं तत् शेषकवयोमा भण्यताम् ।।5।।

(ख)

तपनतीर्थं चतुर्दिक्षु मृगाक्षि व्याख्यानीयते
मूलस्थानं सुप्रसिद्धकं महीतले ज्ञायते ।
तस्माद्भावत्कः अहमेकेन लेखःप्रेषितः
स्कम्भादित्ये व्रजामि प्रभ्वादेशिकः ।।1।।
एतद्वचनमाकर्ण्य सिन्धूद्भववदनी
श्वसित्वा श्वासं दीर्घोष्णकं सलिलोद्भवनयनी ।
त्रोटपित्वा करांगुलिं करूणां सगद्गदं गिरं प्रसृता ।
जालन्धरी समीरेण मुग्धा थरथरिता चिरम् ।।2।।

हिन्दी अनुवाद

जो जिसकी काव्यशक्ति हो उसे बेझिझक (स्पष्टतः) कहना चाहिए। यदि ब्रह्मा के द्वारा सुभाषित हो चुका है, तो शेष कवि उसे कहें या न कहें ।।5।।

(ख)

हे मृगनयनी ! चारों दिशाओं में जिसकी व्याख्या 'तपनतीर्थ' के रूप में की जाती है, उसे ही पृथ्वी पर सुप्रसिद्ध 'मुल्तान' नाम से जाना जाता है। अतः मैने एक जन के द्वारा आपका लेख 'खम्भात' भिजवा दिया है और अब मैं, स्वामी का आदेशपालक (स्वयं) आ रहा हूँ।।1।।

यह बात सुनकर वह चन्द्रमुखी कमलनयनी लम्बी–गरम सांसे छोड़कर हाथ की अंगुलियों को चटकाती हुई, गद्गद कण्ठ से करूण वाणी में बोली और कदलीवात से वह मुग्धा (नायिका) देर तक कॉपती रही।।2।।

रुइवि खण्द्धउ फुसवि नयत पुण वज्जरिउ
खम्भाइत्तह णामि पहिय तणु जज्जरिउ ।
तह महु अच्छइ णाहु विरह–उल्लावयरु
अहिअ–कालु गम्मियउ ण आयउ णिद्धयरु ।।3।।

पाउ मोडिवि निमिसिद्दु पहिय जइ दय करि,
कहउं किम्पि सन्देसउ पिअ तुच्छक्खरिहि ।
पहिअ भणइ कणयङ्गि कहह किं रुन्नयण ।
धिज्जन्ति णिरु दीसहि उव्विन्नमिय हयण ।।4।।

संस्कृत रूपान्तर

रूदित्वा क्षणार्धकं स्पृष्ट्वा नयनं पुनरूक्तवती
स्कम्भादित्यस्य नाम्ना पथिक! तनुर्जर्जरिता ।
तत्र ममास्ते नाथो विरह उल्लासकरः
अधिकं कालं गत्वा नागतो निर्दयालुः ।।3।।
पादं मोटयित्वा निमिषार्धकं पथिक ! यदि दयां कुरु
कथयामि किमपि सन्देशकं प्रियं तुच्छाक्षरैः ।
पथिको भणति कनकाङ्गि! कथय किं रूदितेन
क्षीयमाणा नीरं दृश्यसे उद्विग्नमृगहायना ।।4।।

हिन्दी अनुवाद

आधा क्षण रोकर, ऑख पोंछ कर उसने फिर कहा – "हे पथिक! खम्भात के नाम से ही मेरा शरीर जर्जर हो गया है। वहॉ मेरा प्रिय, जो विरह को शान्त करके उल्लसित करने वाला है, बहुत दिन हो गये, जाकर (वहॉ से) वह निर्दयी लौटकर आया नहीं ।।3।।

हे पथिक ! मैं तुम्हारे पैर पड़कर विनती करती हूँ कि यदि तुम तनिक देर दया करो तो मैं अपने टूटे फूटे अक्षरों से कुछ प्रिय सन्देश (उसके लिए) कहूँ।" (इस पर) पथिक कहता है – "हे सुवर्णाङ्गी ! तुम व्याकुल मृगछौने की तरह क्षीण होती हुई ऑसू दिखा (बहा) रही हो। बोलो, भला रोने से क्या (लाभ) ? ।।4।।

जसु णिग्गमि रेणुक्करडि किअण विरह दवेण ।
किव दिज्जइ सन्नेहडउ तसु निट्ठुरय मणेण ।।5।।
जसु पवसन्त ण पवसिआ मुहअ विओइ ण जसु ।
लज्जिज्जउ सन्देसडउ दिन्ती पहिय पिआसु ।।6।।
लज्जिवि पथिअ जइ रहउ हदयं न धरणउ जाइ।
गाह पढिज्जसु इक्क पिय कर लेविण मण्णाइ ।।7।।
तुह विरह–पहर–संचूरिआइ विहडन्ति जं न अंगाइं ।
तं अज्ज कल्ल–संघडउसहे णाह तग्गन्ति ।।8।।

संस्कृत रूपान्तर

यस्य निर्गमे रेणूत्करटिकाकृता न विरहदवेन ।
कथमिव दीयते सन्देशटकः तस्य निष्ठुरकमनसा ।।5।।
यस्य प्रवसित न प्रोषिता मृतका वियोगे न यस्य ।
लज्जे सन्देशकं ददती पथिक ! प्रियस्य (प्रियाय) ।।6।।
लज्जित्वा पथिक यदिरमे हृदयं न धरणकं यति ।
गाथा पठ्यस्वैका प्रियं कृत्वा नीतं मानयित्वा ।।7।।
तव विरहप्रहाऱसञ्चूर्णितानि विघटन्ते यन्न अंगानि ।
तदघकल्यसंघाटनोत्साहे नाथ ! स्थगन्ति ।।8।।

हिन्दी अनुवाद

(तब वह बोली) जिसके चले जाने पर विरह की आग से मैं धूल (राख) की ढेर न बन गयी (फिर ऐसे) निष्ठुर मन से उसके लिए मैं क्या सन्देश भेजूँ? ।।5।।

जिसके परदेश चले जाने पर मैं भी प्रवसित नहीं हुई और जिसंके विरह में मैं मर न गयी, हे पथिक!उस प्रिय को सन्देश देते हुए मैं बहुत लज्जित हूँ ।।6।।

हे पथिक ! यदि मैं शरम के मारे – चुप भी बैठ जाऊँ तो अपने हृदय को सम्भाल नहीं पाऊँगी । (इसलिए) यह गाथा (उनके पास जाकर) पढ़ दीजिए और उन्हें प्रसन्न करके मना लीजि (मेरे अनुकूल कर दीजिए) ।।7।।

हे स्वामी ! तुम्हारे विरह के प्रहार से चूर–चूर होकर जो ये (मेरे) अङ्ग तितर–बितर नहीं होते, वस्तुतः अभी वे आपसे मिलने के उत्साह में ही टंगे (रूके) हुए हैं।।8।।

टिप्पणी

यह पाठ इसी नाम के खण्डकाव्य का प्रारम्भिक अंश है। 'सन्देशरासकम्' दो शब्दों से मिलकर बना है – सन्देश + रासकम। सन्देश का अर्थ है किसी दूतादि के माध्यम से भेजी गयी अपनी बात। 'रासक' अभिनयात्मक शैली में लिखा गया लघु काव्य या रूपक है। 'सन्देशरासक' भी ऐसी ही एक रचना है जिसमें संवाद शैली में एक विरहिणी नायिका, परदेश (खम्भात) गये अपने प्रियतम पति को उधर जाने वाले एक पथिक से सन्देश भेजती है। इसमे विप्रलम्भ श्रृंगार में रचे बसे ललित पद्य हैं।

प्रस्तुत पाठ के खण्ड 'क' में उत्तम पदार्थ, गुण अथवा क्रिया की

ग्राह्यता (सराहना) की गयी है। और उसी श्रेणी की अन्य वस्तुओं, गुणों या क्रियाओं की उपेक्षा की गयी है। जो हीनस्तर के हैं। नवरङ्ग चङ्गिमा– नवरंग–चंगिमा । सजे हुए आकर्षक रंगमंच पर कला प्रवीण । 'तरूर्णा' (–नवयौवना नर्तकी) का विशेषण । संस्कृत कोश में 'चङ्ग' या 'चङ्गिमा' शब्द उपलब्ध नहीं हैं। 'चङ्गिमा' की संस्कृतच्छाया किसी ने 'लीलावती' की है किन्तु यह उपयुक्त नहीं है। लोक भाषा हिन्दी में 'चंग' और 'चंगा' शब्द प्राप्त होता है। 'चंग' एक प्रकार का आनद्ध वाद्य (मढ़ा हुआ बाजा) है। 'चंगा' शब्द 'स्वस्थ' के अर्थ में प्रयुक्त है। यहॉ 'चंगिमा' का आशय 'आह्लादपूर्ण कला चातुर्य' से है। गामगहिल्ली' ग्रामगर्द मिल्ली। गॉव की गदही 'गदिहिली' शब्द आज भी लोक प्रचलित है। यह एक लाक्षणिक प्रयोग है। यहॉ यह शब्द गॉव की नितान्त सामान्य (गॅवार), फूहड़ और नृत्य कला का रञ्चमात्र भी ज्ञान न रखने वाली स्त्री के लिए प्रयुक्त है।

अलज्जिरेण – अलज्जिरेण । बिना लजाये हुए या बिना झिझक य संकोच के खुलकर । लज्ज् + इरच् – लज्जी, लज्जी + र (स्वार्थे) – लज्जिरः लज्जी एव लज्जिरः , तेन लज्जिरेण। न लज्जिरेण इति अलज्जिरेण। इस पाठ में अपभ्रंश से ध्वनि अनुकार से अनेक संस्कृतरूप अपभ्रंश से बनाये गये हैं । यथा तुम्बिनी, रब्बडिका, दडबड़ायताम्, जालन्धरी, थरथरिता, निर्दयाल, इत्यादि ।

सारांश

अपभ्रंश साहित्य में जो मुक्तक रचनायें मिलती हैं। उन्हीं में से अट्ठारह मुक्तक गाथाओं (पद्यों) का संकलन यहॉ पाठ – 1 में किया गया है। इन गाथाओं (मुक्तक पद्यों) के विषय स्वतंन्त्र और पृथक–पृथक हैं। इसमें नीतिवचन भी हैं, जगद्व्यवहार भी है, क्षत्राणी का स्वाभिमान भी है और श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति भी है।

पाठ – 2 में अद्दहमाण (अब्दुर्रहमान) नामक कवि द्वारा विरचित 'सन्देश रासक' खण्ड काव्य से दो भागों में कुल तेरह पद्य संकलित हैं। इन पद्यों में एक विरहिणी द्वारा 'खम्भात' गये हुए अपने प्रियतम के प्रति एक पार्थक द्वारा सन्देश भेजने का उपक्रम अत्यन्त मार्मिक रीति से निबद्ध हुआ है। जिसमें उत्कट प्रेमभाव अभिव्यन्जित हुआ है।

प्रश्न – **खण्ड – क व्याख्यात्मक एवं निबन्धात्मक प्रश्न**

1. 'अपभ्रंश' का अर्थ स्पष्ट करते हुए इस भाषा के विकास को रेखांकित कीजिए।
2. अपभ्रंश के उपलब्ध साहित्य का परिचय प्रस्तुत कीजिए।
3. अधोलिखित का हिन्दी अनुवाद कीजिए –

क– जे महु दिण्णा ——————————— नहेण ।।

ख– भल्ला हुआ जु मारिआ ———————— घरु एन्तु ।।

ग– जा जस्स कव्वसत्ती ——————————— भणिज्जन्तु ।।

4. अधोलिखित का संस्कृत रूपान्तर प्रस्तुत कीजिए।

क– जइ भग्गा पारक्कडा ——————————— मारिअडेण ।।

ख– विप्पिअ आरउ ——————————————— अग्गिं कज्जु ।।

ग– तुह विरह–पहर ——————————————— तग्गन्ति ।।

खण्ड – ख टिप्पण्यात्मक प्रश्न

1. अपभ्रंश साहित्य में खण्ड काव्य ।
2. पउमचरिअ
3. सन्देशरासक के पठित अंश का सारांश
4. अपभ्रंश के मुक्तक काव्यों की विशेषताएँ ।

खण्ड – ग वस्तुनिष्ठात्मक प्रश्न

1. आधुनिक भारतीय भाषाओं का स्रोत है –

क– संस्कृत ख– प्राकृत

ग– अपभ्रंश घ– पालि

2. 'सन्देशरासक' खण्डकाव्य के प्रणेता हैं–

क– विद्यापति ख– अद्दहमाण

ग– मीरसेन घ– यशोधर

3. अपभ्रंश भाषा में विरचित 'पउमचरिउ' में काण्डों की संख्या है

क– पॉच ख– सात

ग– छः घ– नौ

4. 'तपनतीर्थ ' के नाम से विख्यात स्थान है –

क– हिन्दुस्तान ख– मुल्तान

ग– तुर्किस्तान घ– अफगानिस्तान

'खण्ड – ग' के प्रश्नों के सही उत्तर –

1. ग 2. ख

3. क 4. ख ।

Notes

Notes

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon Open University

MAST-102

पाली, प्राकृत अपभ्रंश तथा भाषा-विज्ञान

खण्ड

3

भाषा विज्ञान

इकाई -6 191

भाषा : उत्पत्ति, विकास

इकाई -7 211

(क) ध्वनि विज्ञान

(ख) पद विज्ञान

इकाई -8 234

(क) वाक्य विज्ञान

(ख) अर्थ विज्ञान

इकाई -9 251

प्रमुख भाषाशास्त्रियों का परिचय - यास्क, पाणिनि, पतञ्जलि एवं भर्तृहरि

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

पाठ्य-सामग्री निर्धारण समिति

प्रो. पी0डी0 सिंह	आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रो. जी0 आर0 पाण्डे	आचार्य, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ
प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी	आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रो. सोमनाथ नेने	आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रो. यू0 पी0 सिंह	आचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रो. आर0 सी0 पाण्डा	आचार्य, विद्याधर्म विज्ञान संकाय (बी0एच0यू0)
डॉ0 राममूर्ति चतुर्वेदी	रीडर, काशी विद्यापीठ
डॉ0 अच्छे लाल	प्रवक्ता, संस्कृत, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

सम्पादक

प्रो0 मुरली मनोहर पाठक	आचार्य, संस्कृत विभाग, पं0 दीनदयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर
डॉ0 राजेश्वर शास्त्री मुसलगांवकर	विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

लेखक

प्रो. आर0 सी0 पाण्डा	आचार्य, विद्याधर्म विज्ञान संकाय (बी0एच0यू0)

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नही है।

प्रकाशक- उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से विनय कुमार , कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित वर्ष - 2023.

मुद्रक - के0 सी0 प्रिटिंग एण्ड एलाइड वर्क्स , पंचवटी , मथुरा - 281003.

खण्ड–3 परिचय

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहने के कारण उसे परस्पर विचार–विनिमय करना पड़ता है। मानव अपने भावों को व्यक्त करने के लिए जिस सार्थक मौखिक साधन को अपनाता है, वह भाषा है। इससे स्पष्ट है कि व्यावहारिक दृष्टि से भाषा की कितनी उपयोगिता है। भाषा का महत्त्व स्वीकार करते ही भाषा–विषयक अनेक जिज्ञासाएँ प्रारम्भ हो जाती हैं। प्रस्तुत खण्ड इन्हीं जिज्ञासाओं के समाधान का संक्षिप्तरूप प्रस्तुत करता है।

इस खण्ड में भाषा एवं भाषा–विज्ञान के सम्बन्ध में विवेचन किया गया है। यह खण्ड चार (6 से 9) इकाईयों में विभक्त हैं । इकाई–6 मे भाषा की उत्पत्ति, तद्विषयक विविध मत, भाषाविकास के चरण, भाषाविज्ञान की परिभाषा, भाषाविज्ञान के विविधरूप, भाषाविज्ञान की शाखाओं इत्यादि का विवेचन है।

इकाई–7 में ध्वनिविज्ञान, ध्वनिपरिवर्तन, उसके कारण तथा दिशाओं, ध्वनिनियमों, पदविज्ञान, व्याकरण कोटियों तथा पदपरिवर्तन के कारणों का विश्लेषण किया गया है।

इकाई–8 में वाक्यविज्ञान की परिभाषा, वाक्यपरिवर्तन की दिशाओं तथा कारणों, अर्थविज्ञान, शब्दार्थ–सम्बन्ध, अर्थपरिवर्तन के कारणों इत्यादि का विवेचन प्रस्तुत है।

इकाई–9 में प्रमुख भाषाशास्त्रियों यास्क, पाणिनि, पतञ्जलि तथा भर्तृहरि के व्यक्तित्व तथा कृतित्व का विवरण है।

इस प्रकार इस खण्ड में भाषा विज्ञान का एक परिचयात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक इकाई के अन्त में कुछ प्रश्न और उनके यथासम्भव उत्तर दिए गए हैं। अतिरिक्त अध्ययन सामग्री की दृष्टि से कुछ पुस्तकों के नाम भी सुझाए गए हैं।

खण्ड – 03

भाषाविज्ञान

इकाई –06

(क) भाषा : उत्पत्ति, विकास

(ख) भाषाविज्ञान : परिभाषा, विविधरूप

इकाई–07

(क) ध्वनिविज्ञान

(ख) पदविज्ञान

इकाई–08

(क) वाक्यविज्ञान

(ख) अर्थविज्ञान

इकाई–09

प्रमुख भाषाशास्त्रियों का परिचय :– यास्क, पाणिनि, पतञ्जलि एवं भर्तृहरि

इकाई–06 (क) भाषा : उत्पत्ति, विकास
(ख) भाषाविज्ञान : परिभाषा, विविधरूप

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 भाषा की उत्पत्ति

6.3 भाषोत्पत्तिविषयक विविध सिद्धान्त

6.3.1 दैवी उत्पत्ति का सिद्धान्त

6.3.2 धातु सिद्धान्त

6.3.3 ध्वन्यनुकरण सिद्धान्त

6.3.4 आवेशसिद्धान्त

6.3.5 इंगितसिद्धान्त

6.3.6 सम्पर्कसिद्धान्त

6.3.7 समन्वयसिद्धान्त

6.3.8 प्रतिभासिद्धान्त

6.3.9 वैदिकसंकेत

6.4 भाषाविकास के चरण

6.5 भाषाविज्ञान

6.6 भाषाविज्ञान की परिभाषा

6.7 भाषाविज्ञान के विविध रूप

6.7.1 सामान्य भाषाविज्ञान

6.7.2 वर्णनात्मक भाषाविज्ञान

6.7.3 ऐतिहासिक भाषाविज्ञान

6.7.4 तुलनात्मक भाषाविज्ञान

6.7.5 अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

6.8 भाषाविज्ञान की शाखाएँ

6.8.1 ध्वनिविज्ञान

6.8.2 पदविज्ञान

6.8.3 वाक्यविज्ञान

6.8.4 अर्थविज्ञान

6.8.5 शब्दविज्ञान

6.9 सम्बन्धित प्रश्न

6.0 उद्देश्य

- 'भाषा का प्रारम्भ कहाँ से हुआ' इस विषय में जानेंगे ।
- भाषा की उत्पत्ति के विषय में विविध विचारकों का मत जान सकेंगे।
- उक्त मतों के गुण–दोषों का समीक्षा का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- भाषा के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- भाषाविज्ञान का स्वरूप क्या है? इसे समझ सकेंगे।
- भाषाविज्ञान के विविधरूपों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्राचीनतम विचार यूनानियों द्वारा व्यक्त किये गए हैं 'ऐसा डॉ. भोलानाथ तिवारी' का मत है। इनके अनुसार ''ओल्डटेस्टामेन्ट'' में भी इस सम्बन्ध में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से कुछ बातें कही गई हैं। भाषा का मूल रूप अप्राप्य है, अतः भाषा–विज्ञान इस दिशा में अपनी असमर्थता प्रकट करता है। यह दर्शन, मानवविज्ञान या सामाजिक–विज्ञान का विषय हो सकता है। भाषा सम्बन्धी अनेकानेक जिज्ञासाओं पर शताब्दियों से चिन्तन चल रहा था। लगभग 200 वर्षों से पाश्चात्य देशों में भी इस विषय पर गम्भीर मनन और चिन्तन हुआ है। सर विलियम जोन्स ने 1786 ई. में संस्कृत भाषा का अध्ययन करते समय

संस्कृत की लैटिन और ग्रीक से अनेक अंशों में समानता प्राप्त की और इनके तुलनात्मक अध्ययन पर बल दिया। इस प्रकार संस्कृत भाषा तुलनात्मक भाषा–विज्ञान की मूल बनी। सर विलियम जोन्स द्वारा डाली हुई नींव ही आज विकसित, पुष्पित और पल्लवित होकर भाषा–विज्ञान के रूप में प्रसिद्ध है।

6.2 भाषा की उत्पत्ति

भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस विषय पर विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विचार अपूर्ण एवं अनिर्णयात्मक हैं। इनसे किसी अन्तिम निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता । अधिकांश विचार एकांगी हैं। केवल एक मत को मानने से भाषा की उत्पत्ति की समस्या हल नहीं हो सकती।

भाषोत्पत्ति विषयक अनेक सिद्धान्तों के प्रचलन के बाद भी भाषा की उत्पत्ति का निश्चित और निर्णायक उत्तर प्राप्त न होने के कारण भाषा–वैज्ञानिकों ने इस विषय को भाषा–विज्ञान के क्षेत्र से बाहर घोषित किया है।

6.3 भाषोत्पत्तिविषयक विविध सिद्धान्त

भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई प्रकार के सिद्धान्त, मतवाद या वाद विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं। यहाँ कुछ प्रमुख मत दिए जा रहे हैं –

6.3.1 दैवी उत्पत्ति का सिद्धान्त

भाषाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यह सबसे प्राचीन मत है। इस मत में प्रत्येक कार्य के मूल में दैवीशक्ति की सत्ता मानी जाती है। उस दैवीशक्ति ने ही सृष्टि के प्रारम्भ में वेदों का ज्ञान दिया, जिससे मानव कार्यकलाप सुचारू रूप से चल सका। इस प्रकार वैदिक संस्कृत भाषा मूलभाषा के रूप में प्राप्त हुई । वेद, उपनिषद्, दर्शन, ग्रन्थ और स्मृतियों मे इस विषय के अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं कि ईश्वर से ही वेदों की उत्पत्ति हुई।

'देवीं वाचमजनयत देवास्तां विश्वरूपां पशवो वदन्ति' ।

(ऋग्वेद 8.100.11)

एक जर्मन विद्वान् सुसमिल्श (Sussmilsh) ने भाषा की दैवी उत्पत्ति

का समर्थन करते हुए कहा है कि 'भाषा मानवकृत नहीं' है अपितु परमात्मा से साक्षात् उपहारस्वरूप प्राप्त हुई।

"Language could not have been invented by man but was direct gift from God."

जर्मन लोग भाषा को आदिभाषा एवं देवभाषा कहते हैं। इसी प्रकार ग्रीस के विद्वानों में 'फूसेई थेसेई' का विवाद शताब्दियों तक चला कि भाषा ईश्वरीय देन है या मानवकृत ।

विभिन्न भारतीय विद्वान् अनेक कारणों को इसकी उत्पत्ति का कारण मानते हैं। 'पाणिनि' ने 14 माहेश्वरसूत्रों को शिव के डमरूनिनाद से प्राप्त किया। 'यास्क' के अनुसार 'प्रवरों' ने यह ज्ञान अवरों को दिया था। 'पतञ्जलि' देववाणी को सर्वप्रथम भाषा मानते हैं। जैन लोग अर्धमागधी को सभी जीवों की मूल भाषा मानते हैं। उनके अनुसार महावीर स्वामी ने अर्द्धमागधी में ही उपदेश दिया था। जिसमें मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी ने उसे समझा था। अधिकतर लोग संस्कृत को ही देववाणी मानते हैं। मुसलमान लोग कुरानशरीफ को ईश्वर कृत मानते हैं। ईसाई हिब्रू भाषा को सभी भाषाओं का मूल मानते हैं। प्लेटो के अनुसार सभी वस्तुओं को प्रकृति प्रदत्त मानने में 'दैवी उत्पत्ति सिद्धान्त'की ध्वनि निकलती है।

वस्तुतः इन देशी। विदेशी मतों में आस्था और विश्वास के अतिरिक्त कोई तथ्य नहीं है।

समीक्षा –

इस मत पर कुछ महत्वपूर्ण आक्षेप लगाए जाते हैं –

1. यह सिद्धान्त केवल आस्था पर निर्भर है। अपनी भाषा को प्रमुखता देने के लिए सबने उसे आदिभाषा या देवभाषा कहा है।

2. यदि भाषा ईश्वर प्रदत्त होती तो सृष्टि में भाषा–भेद नहीं होता। पशु–पक्षियों की भाषा के तुल्य मानवमात्र की एक भाषा होती ।

3. यदि भाषा ईश्वर प्रदत्त होती तो उसमें विकास के लिए अवकाश न होता किन्तु इतिहास भाषा के विकास का साक्षी है।

4. यदि भाषा ईश्वरीय होती तो वह जन्म से ही मनुष्य को प्राप्त हो जाती। उसे समाज से सीखने की आवश्यकता नहीं होती।

प्रायः सभी विद्वान् इस विचार से सहमत हैं कि किसी भाषा की उत्पत्ति ईश्वरीय है या नहीं परन्तु इतना तो सत्य है कि सार्थक एवं स्पष्ट उच्चारण के योग्य ध्वनियन्त्र और उनको संचालित करने वाली बुद्धि मनुष्य को ईश्वरीय देन है।

6.3.2 धातु सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का आधार भाषा की उत्पत्ति का कारण कुछ धातुएँ हैं। इसके अनुसार कुछ धातुओं से भाषा का विकास हुआ। इस ओर संकेत प्लेटो (Plato) ने किया था। किन्तु इसे व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का श्रेय जर्मन विद्वान् हेस (Heyse) को है। इन्होंने कभी अपने व्याख्यान में इसका उल्लेख किया था, जिसे बाद में उनके शिष्य डॉ. स्टाइन्थाल ने मुद्रित रूप में विद्वानों के समक्ष रखा। मैक्समूलर ने भी पहले इसे स्वीकार किया किन्तु बाद में इसे निरर्थक कहकर छोड़ दिया।

इसे ही अनुकरणनसिद्धान्त, अनुकरणनमूलकतावाद, अनुरणात्मक अनुकरण, डिंग–डांगवाद (Ding dong theory) आदि नामों से निर्दिष्ट किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार संसार की हर चीज की अपनी ध्वनि होती है। इस मत का कथन है कि प्रकृति में एक सामान्य नियम है कि किसी भी वस्तु पर चोट मारने पर एक विशेष ध्वनि होती है। यह विशेष ध्वनि ही उसकी विशेषता है। इसे ही रणन कहा जाता है। यही उस वस्तु की पहचान है। इसी रणन के आधार पर लोहा, लकड़ी और काँच आदि में अन्तर किया जाता है।

इस सिद्धान्त के समर्थकों का मत है कि किसी वस्तु के सम्पर्क में आने से मनुष्य के मुख से उस वस्तु के लिए विशेष ध्वनि निकल जाती है। विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की ये ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति धातुओं से थी। इन धातुओं एवं उनके अर्थ में एक प्रकार का रहस्यात्मक सम्बन्ध था। प्रारम्भ में मनुष्य में इस प्रकार की शक्ति की कल्पना इस सिद्धान्त को मानने वाले करते थे, किन्तु अब आवश्यकता न होने पर वह शक्ति प्रायःमनुष्य में नहीं रह गयी। आरम्भ में उक्त प्रकार के धातुओं की संख्या बहुत बड़ी थी, किन्तु उनमें बहुत सी धीरे–धीरे लुप्त हो गयीं और केवल अर्द्धसहस्र धातुएँ ही शेष रहीं। इन्हीं से भाषा की उत्पत्ति हुई । इस सिद्धान्त को कुछ दार्शनिकों ने भी कभी किसी रूप में माना था और इसे नेटिविस्टिक थ्यूरी (Nativestic Theory) की संज्ञा दी थी।

समीक्षा :–

1. 'डिंग–डांग' घण्टे की ध्वनि को कहते हैं। घण्टे की झंकार के आधार पर इसका नाम पड़ा। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि किसी वस्तु को देखकर क्या ध्वनि मस्तिष्क में झंकृत होती है। प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में पृथक्–पृथक् ध्वनियाँ झंकृत हो सकती है और एक वस्तु के अनेक नाम पड़ेंगे ।

2. यह सिद्धान्त शब्द और अर्थ में रहस्यात्मक स्वाभाविक सम्बन्ध मानता है। किन्तु शब्द और अर्थ का सांकेतिक सम्बन्ध है न कि स्वाभाविक।

3. घण्टे आदि में यह ध्वनि है परन्तु सभी पदार्थों में यह ध्वनि नहीं है। अतः उनका नामकरण सम्भव नहीं है।

4. आदिमानव में शब्द या धातु निर्माण की शक्ति थी । वह बाद में नष्ट हो गई। यह अत्यन्त अवैज्ञानिक कल्पना है।

5. कुछ सीमित धातुओं की कल्पना नितान्त त्रुटिपूर्ण है।

यह मत अस्वीकृत होने पर भी रोचकता के लिए प्रचलित है।

6.3.3 ध्वन्यनुकरण सिद्धान्त (Bowwow Theory) :-

इसके अन्य नाम अनुकरणसिद्धान्त, भों–भोंवाद, अनुकरणमूलकतावाद, शब्दानुकरणवाद आदि हैं। इसके अनुसार मनुष्य ने अपने आस–पास के पशु–पक्षियों आदि से होने वाली ध्वनियों के अनुसरण पर अपने लिए शब्द बनाएँ और फिर उसी आधार पर पूरी भाषा खड़ी हुई।

समीक्षा :–

इस सिद्धान्त के विरुद्ध कई बातें कही गयीं हैं।

1. विश्व की भाषाओं में ध्वन्यनुकरण वाले शब्दों की संख्या एक प्रतिशत भी नहीं है, अतः यह भाषा की उत्पत्ति की समस्या का समाधान नहीं है।

2. कुछ भाषाओं में ध्वन्यनुकरण –शब्द हैं ही नहीं । जैसे –उत्तरी अमेरिका की अथवस्थन भाषा । इसमें ऐसे शब्दों का अभाव है।

3. यदि ध्वन्यनुकरण ही आधार होता तो सभी भाषाओं में उन अर्थों के लिए शब्द होते ।

4. यह मत अधिक से अधिक एक प्रतिशत शब्दों का समाधान प्रस्तुत करता है, 99 प्रतिशत शब्दों के लिए यह मत मौन है।

6.3.4 आवेशसिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार आदिकाल में मनुष्य ने अपने हर्ष, शोक, विस्मय, भय, घृणा, क्रोध आदि भावावेश को प्रगट करने वाले शब्दों या ध्वनियों का उच्चारण किया। इन ध्वनियों से ही बाद में भाषा बन गई। दुःख, सुख, हास्य, विस्मय, आदि के लिए मनुष्य के मुख से आह, ओह, पूह, फई आदि निकल जाता था जो बाद में विकसित होकर भाषा बन गई ।

विकासवाद के जन्मदाता डार्विन ने आवेग ध्वनियों का कारण शारीरिक माना है ।

समीक्षा :–

इस सिद्धान्त में निम्नलिखित दोष हैं :–

1. आवेग शब्द आवेगात्मकता को प्रकट करते हैं, सामान्य भावार्थ अभिव्यक्ति को नहीं। अत एव इनका सम्बन्ध भाषा के मुख्य अंग से नहीं है।

2. ये शब्द विचार – पूर्वक प्रयुक्त नहीं होते हैं, अपितु आवेग की तीव्रता में अनायास निकल पड़ते हैं।

3. प्रो. बेन्फी ने इस मत का खण्डन किया है कि आवेग ध्वनियाँ भाषा की अक्षमता को सूचित करती हैं। अतः इनसे भाषा की उत्पत्ति नहीं हो सकती है।

4. आवेग ध्वनियाँ सभी भाषाओं में समान नहीं हैं।

6.3.5 इंगित सिद्धान्त (Gesture Theory) :-

इस सिद्धान्त की ओर सर्वप्रथम संकेत करने का श्रेय पालिनेशियन भाषा के विद्वान् डॉ. राये को है। 1930 के लगभग प्रो. रिचर्ड ने अपनी पुस्तक में मौखिक इंगित सिद्धानत नाम से इसे प्रस्तुत किया। आइसलैण्डिक भाषा के विद्वान् जोहान्सन भी भारोपीय भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करके लगभग इसी निष्कर्ष पर पहुँचे। डार्विन ने भी कुछ असम्बद्ध भाषाओं के तुलनात्मक अध यन के आधार पर इस सिद्धान्त की पुष्टि की थी। ये भाषा के विकास की

चार सीढ़ियाँ मानते हैं। ये निम्नलिखित हैं :–

भावव्यञ्जक ध्वनियाँ :– भय, हर्ष, क्रोध आदि की अवस्था में ध्वनियों द्वारा अपने भावों को प्रकट करना।

अनुकरणात्मक शब्द :– पशु–पक्षियों आदि की ध्वनियाँ अनुकरणात्मक शब्द रचना है।

भावसंकेत या इंगित :– अंगों के संकेतों द्वारा भावप्रकाशन। इसे जोहान्सन ने बिना जाने किया हुआ अनुकरण कहा है। भाषा के विकास में वे इसी को महत्वपूर्ण मानते हैं । पर इस तीसरी स्थिति में केवल स्थूल वस्तुओं के लिए शब्द बने होंगे। मानव के विकास के और आगे बढ़ने पर धीरे–धीरे सूक्ष्मभावों आदि के लिए भी शब्द बने। यही चौथी अवस्था है। इस प्रसंग में उन्होंने स्वर–व्यञ्जन आदि के विकास की अवस्था की ओर भी संकेत किया है। ध्वनियों से अर्थ का सम्बन्ध भी वे स्थापित करते हैं। उनके अनुसार आदि मानव ने अपने शरीर में तरह–तरह के कर्म देखे और उनके अनुकरण पर उसने 106 मूल भावों के द्योतक शब्दों का आरम्भ में निर्माण किया। इस मत का कथन है कि प्रारम्भ में मानव ने अपनी आंगिक चेष्टाओं का ही वाणी के द्वारा अनुकरण किया और उससे भाषा बनी । जैसे–पानी पीने के समय होठों के मिलने और सांस अन्दर खींचने पर या जैसी ध्वनि हुई । इसलिए 'पा' का अर्थ 'पीना' हुआ। इसी प्रकार पीने के समय सर या सरब ध्वनि का लेकर 'शरवत' शब्द बना। इसी प्रकार अनेक शब्द बने हैं।

समीक्षा :–

इस सिद्धान्त में भी कई कमियाँ हैं –

1. अपने अनुकरण पर शब्द रचना हास्यास्पद है। दूसरे के अनुकरण पर शब्द रचना मान्य हो सकती है।
2. हाथ पैर, ओष्ठ आदि के आधार पर शब्द रचना की कल्पना निर्मूल है।
3. संकेत से भाषोत्पत्ति मानने पर पशु–पक्षियों की भाषा भी विकसित रूप में होती । उसमें भी विकास दृष्टिगोचर होता।
4. इस सिद्धान्त पर बने शब्दों की संख्या भाषा में बहुत कम है।

6.3.6 सम्पर्क सिद्धान्त (Contact theory)

इस मत के प्रतिपादक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जी. रेवेज हैं। इस मत का कथन है कि मनुष्य सामाजिक जीव है। उसमें पारस्परिक सम्पर्क की सहजात प्रवृत्ति होती है। समाज का निर्माण इसी प्रवृत्ति के कारण हुआ है। प्रारम्भ में भूख आदि की अभिव्यक्ति के लिए इंगित एवं मौखिक अभिव्यक्ति का सहारा लिया गया होगा। उस समय जो मौखिक ध्वनियाँ निकलीं उनसे ही धीरे–धीरे भाषा बनी। पहले ये सम्पर्क भावों के स्तर पर रहा होगा। बाद में विकास होने पर विचार के स्तर पर हुआ होगा। भाषा उसी का विकसित रूप है।

रेवेज द्वारा प्रतिपादित भाषा की परिभाषा विशेष द्रष्टव्य है 'भाषा एक साधन है, जिसके द्वारा आदेश दिए जाते हैं। इच्छाएँ व्यक्त की जाती हैं, वस्तुपरक और व्यक्तिपरक दृष्टिबोधों का संकेत किया जाता है। कथा सम्प्रेषण को उत्तेजित करने के लिए प्रश्न पूदे जाते हैं। इसका उद्‌देश्य पारस्परिक सम्बुध्यता है। भाषा–रूपी साधन उच्चारित ध्वन्यात्मक प्रतीकों के सहारे क्रियाशील होते हैं। सम्पर्कध्वनि का विकास संसूचकध्वनि से होता है, इसमें हल्ला करना, पुकारना आदि सम्मिलित हैं। आरम्भ में ध्वनियाँ अपेक्षा कृत अधिक स्वाभाविक थीं पर धीरे–धीरे मानव आवश्यकतानुसार कृत्रिमता के आधार पर उन्हें विकसित करता गया। विचारों के स्तर पर सम्पर्क बढ़ने से भाषा का विकास हुआ होगा।

समीक्षा –

प्रो. रेवेज मनोविज्ञान के आचार्य हैं। यह मत बालमनोविज्ञान, जीवमनोविज्ञान और आदिमप्राणिमनोविज्ञान पर आश्रित है एवं तर्कसंगत है किन्तु इसमें मनोवैज्ञानिक ढंग से उत्पत्ति और विकास के सामान्य सिद्धान्तों का ही विवेचन है। कुछ भाषाशास्त्री इस मत का सुविस्तृत रूप एवं विवरण चाहते हैं अतएव कासिडी जैसे विद्वान् इस मत को अमान्य न कहते हुए भी भाषोत्पत्ति के प्रश्न को अनिर्णीत मानते हैं।

6.3.7 समन्वय सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के समर्थक एवं प्रवर्तक कोई नया सिद्धान्त प्रस्तुत करने की अपेक्षा सर्व–सिद्धान्त संकलन को अधिक उपयुक्त समझा। इनके अनुसार भाषा प्रारम्भिक रूप में भाव संकेत या इंगित और ध्वनि समवाय दोनों पर आधारित थी। ध्वनिसमवाय के आधार पर ही शब्दों का आगे विकास हुआ। प्रो. स्वीट के अनुसार आरम्भ में शब्दसमूह तीन प्रकार के शब्दों का था –

1. **अनुकरणात्मक** :– जैसे मिश्री, म्याउ, संस्कृत का कारक आदि।

2. **मनोभावाभिव्यञ्जक** :– जैसे – हा, ओह, धिक, छिः आदि ।

3. **प्रतीकात्मक** :– भाषा के प्रारम्भिक शब्द समूह में इस वर्ग के शब्दों की संख्या बहुत बड़ी रही होगी और इसमें अनेक प्रकार के शब्द रहे होंगे। जैसे नर्सरी शब्द, माता–पिता, भाई–बहन आदि से सम्बद्ध शब्द इनमें अधिकांश में प्रारम्भिक ध्वनि ओष्ठ्य होती है। अतः अधिकांश भाषाओं में माता–पिता, भाई–बहन आदि के वाचक शब्द पवर्ग से प्रारम्भ होते हैं।

समीक्षा :–

भाषा की उत्पत्ति समझने के लिए अन्य कोई एकमत शुद्ध न होने से सबका समन्वय उपयुक्त माना गया। यह सिद्धान्त सामान्यतया निर्विरोध रूप से स्वीकार किया जाता है।

6.3.8 प्रतिभा सिद्धान्त

इसके संस्थापक आचार्य भर्तृहरि है। वाक्यपदीय में भर्तृहरि ने प्रतिभा को विश्व की आत्मा माना है और उसे सर्वशक्ति सम्पन्न बताया है–

शब्देष्वेवाश्रिता शक्तिर्विश्वस्यास्य निबन्धनी।

यन्नेत्रः प्रतिभात्मायं भेदरूपः प्रतीययते ।। वाक्य. 109

भर्तृहरि का कथन है कि मनुष्य में प्रतिभा जन्मसिद्ध है। मानव में प्रतिभा आत्मा के रूप में है। ईश्वरीय देन है। विश्व का ऐसा कोई मानव नहीं है, जो प्रतिभा की सत्ता को अस्वीकार करता हो या उसे प्रमाण नहीं मानता है। भर्तृहरि का कथन है कि मानव ही नहीं वरन पशु–पक्षी भी उसी को आधार मानकर बचपन से ही कार्य करते हैं –

प्रमाणत्वेन तां लोकः सर्वः समनुपश्यति।

समारम्भाः प्रतीयन्त तिरश्चामपि तद्वशात् ।। वाक्य, 2.147

प्रतिभा दो प्रकार की होती है – भावचित्री और कारयित्री । भावयित्री प्रतिभा का कार्य है – ज्ञानार्जन, चिन्तन और मनन। कारयित्री प्रतिभा का कार्य – भावों को क्रियात्मक रूप देना। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भावयित्री प्रतिभा ज्ञान का भावपक्ष है और कारयित्री प्रतिभा कलापक्ष है। प्रत्येक ज्ञान में दो पक्ष होते हैं। प्रथम के द्वारा यह निर्णय किया जाता है

कि भावों या विचारों के किस रूप में उपस्थित किया जाए। दूसरा क्रियात्मक पक्ष है। यह भावों का व्यक्त रूप देता है। इसके द्वारा ही व्यक्त वाणी का प्रयोग होता है। विचार सिद्धान्तपक्ष है और वाणी क्रियात्मकपक्ष। भाषा की उत्पत्ति के लिए ये दोनों पक्ष अनिवार्य हैं।

हेलाराज ने वाक्यपदीय (वाक्य. 2.152) की व्याख्या में कहा है कि प्रलयावस्था में सभी शब्दशक्ति के बीज निरूद्ध या अव्यक्त रूप को प्राप्त हो जाते हैं और नवीन सृष्टि के साथ के अव्यक्त रूप में विद्यमान शब्दशक्ति के बीज पुनः अत्यन्त सूक्ष्म रूप में विकसित होते हैं और धीरे–धीरे पनपते हुए व्यक्त भाषा के रूप में प्रकट होते हैं।

अतः भर्तृहरि ने समस्त लौकिक व्यवहार काक आधार शब्द को बताते हुए 'पूर्वाहितसंस्कार' अर्थात पूर्वजन्य के संस्कारों को भाषा की उत्पत्ति का कारण माना है। ये संस्कार कभी नष्ट नहीं होते और ये बालक में शब्दभावना को उत्पन्न करते हैं।

6.3.9 वैदिक संकेत

ऋग्वेद के दशम मण्डलस्थ 71वें सूक्त के प्रारम्भिक तीन मन्त्रों में भाषा की उत्पत्ति के विषय में कुछ उपयोगी संकेत मिलते हैं।

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः ।

यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत, प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः।। (10.71.1)

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।

अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मिर्निहिता धि वाचि।।. 02

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन तामन्वविन्दन् नृषिषु प्रविष्टाम् ।

तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा। तां सप्तरेभा अभि सं नवन्ते (10.71.3)

इसमें निम्न बातों के संकेत हैं –

1. भाषा का आविष्कार हुआ।
2. सर्वप्रथम वस्तुओं के नाम रखे गए।
3. भाषा में से छोड़कर उपयुक्त शब्दों को अपनाया गया
4. चलनी से सत्तू की तरहर छानकर अनुपयोगी शब्दों को हटाया गया।

5. भाषा का स्रोत विद्वानों में पाय गया।

6. भाषा के स्रोत को विविध रूपों में फैलाया गया।

पहले सम्पर्क सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। अर्थात् आदिसृष्टि में मानव एक दूसरे के सम्पर्क में आया। मानवीय भाषा या व्यक्त वाक् जैसी कोई चीज उसे उपलब्ध नहीं थी। 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है' इस सिद्धान्त के अनुसार जब उसकी भावनाएँ तीव्र होती हैं तो वह अपने भावों को इंगित द्वारा प्रकट करता है। अभी तक प्रतिभा अनुदबुद्ध रूप में थी। अब उसकी आवश्यकता पड़ी। आवश्यकता ने बाध्य होकर प्रतिभा पर बल दिया। प्रतिभा पर बल दिया। प्रतिभा सहायक रूप में उपस्थित हुई। इस प्रकार आवश्यकता और प्रतिभा के समन्वय से भाषा की उत्पत्ति हुई ।

6.4 भाषा विकास के चरण

भाषा के विकास के तीन चरणों की ओर भी पर्याप्त निश्चय के साथ संकेत किया जा सकता है। डार्विन ने हमें बताया है कि हम बन्दरों के विकसित रूप हैं। इसका आशय यह हुआ कि कभी हमारी भाषा बन्दरों के समीप रही और कभी उससे भी पिछड़ी। बन्दरों में उच्चरित या वाचिक भाषा के साथ–साथ आगिंक संकेतों की भी भाषा मिलती है और दूसरी ओर असभ्य आदिम जातियों की तुलना में शिक्षित लोगों में भाषा का लिखित रूप मिलता है। इनके आधार पर कहा जा सकता है कि मनुष्य में भाषा का प्रारम्भिक रूप विभिन्न प्रकार के पशुओं की तरह आंगिक रहा होगा। वनबिलाव गुस्सा प्रकट करने के लिए अपने बालों को खड़ा कर लेता है और कुत्ता प्यार–प्रदर्शन के लिए मालिक के शरीर को कभी चाटता है तो कभी पूँछ हिलाता है। ये आंगिक भाषा के ही रूप हैं। भाषा का दूसरा रूप वाचिक हुआ। इसमें उच्चरित ध्वनियों के प्रयोग हुए। आरम्भ में मानव भाषा में आगिंक संकेत अधिक थे और वाचिक कम, किन्तु धीरे–धीरे पहले का प्रयोग सीमित होता गया और दूसरे का बढ़ता गया। क्योंकि आज का सभ्यमानव भी अपनी भाषा के उस आदिम आगिंक रूप को पूर्णतः भूल नहीं सका है। इसी कारण वाचिकभाषा के साथ–साथ विभिन्न अंगों को हिला–उठा–तान आदि कर वह अपनी अभिव्यक्ति को सशक्त बनाता है। भाषा का तीसरा रूप लिखित है। इसने भाषा की उपयोगिता बहुत बढ़ा दी है।

आगिंक भाषा बड़ी स्थूल और सीमित थी। प्रेम, क्रोध, भूख आदि के सामान्य भाव ही प्रकट कर सकती थी। साथ ही उसके लिए दूसरे की

आगिंक चेष्टाओं को देखना भी आवश्यक था। बिना दिखाये अभिव्यक्ति सम्भव न थी। इसका आशय यह हुआ कि इसके लिए प्रकाश अनिवार्यतः आवश्यक था। वाचिकभाषा के प्रयोग से तीनों कठिनाइयाँ दूर हो गयीं सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव एवं विचार व्यक्त होने लगे तथा प्रत्यक्षता या प्रकाश भी अनावश्यक हो गए। किन्तु वाचिकभाषा इन तीनों दृष्टियों से आगे बढ़कर भी देशकाल की सीमा से बँधी थी। इसका प्रयोग उतनी ही दूरी तक हो सकता था। जहाँ तक सुनाई पड़े और उसी (काल) समय इससे अभिव्यक्ति भी सम्भव थी, जब यह बोली जा रही हो। मनुष्य ने भाषा को लिखित रूप देकर ये दोनों बन्धन समाप्त कर दिए। अपने लिखित रूप में भाषा देश–काल से बंधी नहीं है। आज लिखकर दो–चार वर्ष बाद भी उसे पढ़ा जा सकता है, या इसी प्रकार यहाँ लिख कर उसे सात समन्दर पार भी पहुँचाया जा सकता है।

6.5 भाषा विज्ञान

भाषा वह माध्यम है जो एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित करती है। मानव के विचार ही उसका समाज से सम्पर्क स्थापित करते हैं। यह सम्पर्क भाषा के माध्यम से ही होता है, यह भाषा वस्तुतः मानव शरीर में दैवीय अंश है। जो इस सृष्टि में केवल मनुष्य मात्र को ही प्राप्त है।

वाग्रूपता चेदुत्क्रामेदवबोधस्य शाश्वती।

न प्रकाशः प्रकाशेत सा हि प्रत्यवमर्शिनी।।

(वाक्यपदीय 1.115)

भाषा–विज्ञान का सम्बन्ध विश्व की समस्त भाषाओं से है। अतः वह एक भाषा से सम्बद्ध विषयों का ही नहीं, अपितु विश्व की समस्त भाषाओं का सामूहिक एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। प्रत्येक भाषा का व्याकरण उसकी रूप–सिद्धि, पद–निर्माण और वाक्य प्रयोग का शिक्षा देता है। परन्तु भाषा–विज्ञान व्याकरण का व्याकरण होने के कारण ध्वनि–परिवर्तन आदि सभी दिशाओं में उसके कारण की भी व्याख्या करता है। इस प्रकार भाषा–विज्ञान को व्याकरण दर्शन कहा जाएगा, क्योंकि यह भाषा के दार्शनिक रूप को भी स्पष्ट करता है।

भाषा–विज्ञान भाषा के उच्चारण, प्रयोग और उपयोग की शिक्षा देता है। भाषा के सर्वांगीण विवेचन के साथ ही उसे जीवनोपयोगी भी बनाता है। यह विश्व की विभिन्न भाषाओं की समानता की स्थापना करके विश्व–एकता और विश्व–बन्धुत्व का भाव जागृत करता है।

6.6 भाषाविज्ञान की परिभाषा

अनेक विद्वानों ने भाषा–विज्ञान की अनेक परिभाषाएँ दी हैं, जिसमें उन्होंने भाषा के विभिन्न पक्षों का संकलन किया है।

भाषा–विज्ञान या भाषा–शास्त्र की भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने जो परिभाषाएँ दी हैं। उनमें से कतिपय निम्नलिखित हैं –

R.H. Robius के अनुसार :

"General linguistics is concerned with human languages as a unused and recognizable part of human behavior and of the human faculties, perhaps one of the most essential of human life as we know it and one of the most for reaching of human capabilities in relation to the whole span of man kinds achievements."

According to Block and Trager :

"When linguistic has describedthe facts speech such a way as to account for all the utterances used by the members of a social group his description is what we call the system or grammar of language"

According to Charles F. Hockett :

"For a small group of specialists knowing about language is an end in itself, these specialists call themselves linguistic and the organised body of information about language which their investigations produce is called linguistics."

डॉ. श्यामसुन्दरदास के अनुसार –

''भाषा–विज्ञान भाषा की उत्पत्ति, उसकी बनावट और उसके ह्रास की व्याख्या करता है।''

डॉ. बाबूराम सक्सेना के अनुसार :–

''भाषा–तत्वों का अध्ययन भाषा–विज्ञान का अध्ययन है।''

डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार –

''भाषा–विज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं, जिसमें हम भाषा मात्र के भिन्न–भिन्न अंगों का विवेचन, अध्ययन और अनुशीलन करना सीखते हैं।''

डॉ. मङ्गदेव शास्त्री के अनुसार –

''भाषा–विज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं, जिसमें सामान्य रूप से मानवीय भाषा का, किसी विशेष भाषा की रचना का, इतिहास का, अन्ततः भाषाओं और प्रादेशिक भाषाओं या बोलियों को वर्गों की पारस्परिक समानताओंऔर विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।''

डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा के अनुसार –

''भाषा–विज्ञान का सीधा अर्थ है – ''भाषा का विज्ञान और विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान । इस प्रकार भाषा का विशिष्ट ज्ञान भाषा–विज्ञान कहलाएगा।''

डॉ. देवीशंकर द्विवेदी का मत है कि –

''भाषा विज्ञान को अर्थात् भाषा के विज्ञान को भाषिकी कहते हैं। भाषिकी में भाषा का वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार –

''भाषा–विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा विशिष्ट कई और सामान्य का समकालिक ऐतिहासिक तुलनात्मक और प्रायोगिक दृष्टि से अध्ययन और ताद्विषयक सिद्धान्तों का निर्धारण किया जाता है।''

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भाषा–विज्ञान भाषा मात्र का व्यवस्थित अध्ययन है।

भाषा–विज्ञान वर्तमान और अतीत दोनों प्रकार की भाषाओं का अध्ययन करता है। वह त्रैकालिक तथ्यों का अनुसन्धान करता है और उनका प्रकाशन करता है। मानव की प्रवृत्ति का जितना सूक्ष्मतम अध्ययन भाषा–विज्ञान प्रस्तुत करता है उतना अन्य विज्ञान नहीं। इस प्रकार भाषा विज्ञान का क्षेत्र केवल व्याकरण और दर्शन तक ही सीमित न रहकर विज्ञान और शास्त्रों के अनेक अंगों तक व्याप्त है।

6.7 भाषा विज्ञान के विविध रूप

भाषा–विज्ञान के सामान्य रूप से पाँच प्रकारों का वर्णन किया जाता है। इन्हें भाषा–विज्ञान की 'अध्ययन पद्धतियाँ' भी नाम दिया जाता है।

6.7.1 सामान्य भाषाविज्ञान

इसमें भाषा विषयक सामान्य तथ्यों का ही अध्ययन किया जाता है। जैसे भाषाएँ सबसे पहले कैसे जन्मी होंगी, प्रारम्भिक भाषा का स्वरूप क्या रहा होगा, भाषा में विकास या परिवर्तन कैसे–कैसे होता है और क्यों होता

है। उन परिवर्तनों के पीछे कौंन –कौंन से कारक काम करते हैं। क्योंकि कुछ भाषाओं में विकास या परिवर्तन तेजी से होता है। किन्तु कुछ में यह धीरे–धीरे होता है भाषा की क्या–क्या विशेषताएँ होती हैं वे कौन –कौन से अभिलक्षण (विशेषताएँ) होते हैं। जो मानवभाषा को मानवेतर भाषाओं से अलग होते हैं, कैसे धीरे–धीरे एक भाषा से ही अनेक बोलियाँ और भाषाएँ बन जाती हैं, जैसे एक भी भाषा संस्कृत से हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, सिंधी, पंजाबी, असमी, उड़िया, नेपाली, सिंहली आदि भाषाएँ और सैकड़ों बालियाँ बन गई हैं। भाषाओं से संबंद्ध इस प्रकार की अनेकानेक बातें सामान्य भाषाविज्ञान में ली जाती हैं।

6.7.2 वर्णनात्मक भाषा विज्ञान

भाषा की सक्रियता ग्रहण न करने के कारणों से इसका सम्बन्ध है। इसका आधार वह भाषा है जो निश्चित समाज में एक समय प्रयोग की जाती है। यह देशकाल सापेक्ष है या कही जा सकती है। यहाँ वर्णन से आशय भाषा की ध्वनियों, रूप और वाक्यगठन आदि के वर्णन से है अर्थात् इसमें अध्येता का दृष्टिकोण वस्तुपरक होता है। वह पूर्व मान्यताओं से पूर्ण मान्यताओं से पूर्ण मुक्त होता है।

अमेरिका में अनेक भाषाएँ इस प्रकार की है, जिनका न तो कोई साहित्य है और न बोलने वाले सभ्य एवं सुशिक्षित ही हैं इसके अध्ययन के लिए ही इस पद्धति का वहाँ अधिक बोलबाला है। किन्तु 'पाणिनि' की अष्टाध्यायी को जो आज से शताब्दियों पूर्व (लगभग 2400 वर्ष) रची गई, उस काल की भाषा का वर्णनात्मक अध्ययन करने वाली ज्वलन्त पुस्तक कहा जा सकता है। ब्लूफील्ड जैसे भाषाविज्ञानवेत्ता भी इसे स्वीकार करते हैं किन्तु इसमें वर्तमान काल में प्रस्तुत बोली – भाषा का अध्ययन किया जाता है फिर भी प्राचीन भाषाओं के अध्ययन में (लिखित साहित्य) इससे सहायता मिलती है।

6.7.3 ऐतिहासिक भाषाविज्ञान

इसमें भाषा के क्रमिक विकास का इतिहास प्रस्तुत किया जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो यह भाषा का वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान के विपरीत एकाधिककालीन अध्ययन है। इसमें भाषा विशेष में परिवर्तन अर्थात् विकास के कारणों पर विचार किया जाता है। इसमें विश्लेषण एवं विवेचन द्वारा भाषा के वर्तमान रूप को प्राप्त करने के कारणों का पता लगाया जाता है। यह समकालिक के विपरीत गत्यात्मक या विकासात्मक होता है। इसमे कालक्रमानुसार अध्ययन होने के कारण प्रकृतिगत विशेषता के आधार पर

ही फ्रांसीसी भाषावैज्ञानिक 'सस्यूर' ने इसे गत्यात्मक प्रणाली कहा है जो समीचीन हैं। भाषा विज्ञान में समकालिक और कालक्रमिक इन दो पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग उपर्युक्त दोनों स्थितियों के लिए प्रचलित है। वर्णनात्मक भाषा–विज्ञान एक कालिक या समकालिक है। ऐतिहासिक भाषा–विज्ञान कालक्रमिक है। इसमें विभिन्न कालों के रूपों का अध्ययन किया जाता है। इसमें कम से कम दो कालों का क्रमिक विकास दिखाना आवश्यक है। उदाहरणर्थ वैदिकसंस्कृत से लेकर पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के रूप में परिवर्तित होते हुए वर्तमान हिन्दी आदि भाषाओं का क्रमिक विकास इस ऐतिहासिक भाषा–विज्ञान का विषय होगा।

6.7.4 तुलनात्मक भाषाविज्ञान

इसमें किसी काल विशेष की एकाधिक भाषाओं का भाषा के अंगों ध्वनि, रूप, शब्दसमूह आदि के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। इसमें वर्णनात्मक और ऐतिहासिक प्रणालियों का भी अन्तर्भाव होता है। वर्णनात्मक अंश के आधार पर ही दो या अनेक भाषाओं की तुलना की जाती है। इस अध्ययन में ऐतिहासिक प्रणाली भी विभिन्न कालों के रूपों का स्वरूप बताकर सहयोग प्रदान करती है। संस्कृत, लैटिन और ग्रीक की तुलना ने ही इस तुलनात्मक भाषाविज्ञान को जन्म दिया है। इसके ही आधार पर तुलनात्मक देवशास्त्र, तुलनात्मक विश्वसंस्कृति आदि अनेक शाखाएँ प्रचलित हुई है।

तुलनात्मक भाषाविज्ञान का प्रयोग मूलतः 18वीं 19वीं सदी में आरम्भ हुआ, जिसमें दो या अधिक भाषाओं की तुलना करके ध्वनि, शब्द तथा व्याकरण की समानताओं का पता लगाते थे तथा उनके आधार पर दो या अधिक भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण का आधार इस तुलनात्मक अध्ययन से प्राप्त समानताएँ ही थीं।

6.7.5 अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

इसमें भाषा विषयक विभिन्न सिद्धान्तों (भाषा की संरचना तथा भाषाप्रयोग आदि विषयक) का निर्धारण होता है। इस सैद्धान्तिक भाषाविज्ञान से प्राप्त संकल्पनाओं तथा तथ्यों का अन्य क्षेत्रों (जैसे भाषा सिखाने, कोश बनाने, अनुवाद करने, किसी रचना का शैलीय विश्लेषण करने तथा किसी व्यक्ति का उच्चारण दोष ठीक करने आदि) में व्यवहारिक प्रयोग अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान कहते हैं। इस तरह इसमें मुख्यतः भाषाशिक्षण, कोशकला, अनुवाद, शैलीय विश्लेषण तथा वाग्दोष सुधार आदि आते हैं।

वस्तुततः भाषाविज्ञान भाषाओं के अध्ययन विश्लेषण का विज्ञान है। यह भाषा की आन्तरिक प्रकृति पर प्रकाश डालता है तथा सम्बन्धी सिद्धान्तों का निर्धारण करता है। इस तरह यह सिद्धान्तपरक है। इसके विपरीत 'अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान' प्रयोगपरक है, इसमें जैसा कि ऊपर कहा गया, भाषाविज्ञान से प्राप्त सिद्धान्तों का अन्य विषयों जैसे भाषा सिखाने, अनुवाद कराने, कोश बनाने, व्यक्ति का उच्चारण ठीक करने, लिपि को सुधारने तथा शैली का विवेचन करने आदि में प्रयोग किया जाता है।

6.8 भाषाविज्ञान की शाखाएँ

भाषाविज्ञान में भाषा से सम्बद्ध सभी विषय आते हैं। अतः उसमें भाषा के सभी घटकों का अध्ययन होता है। भाषा की सबसे छोटी इकाई ध्वनि है। उसका ही सर्वप्रथम उच्चारण होता है। अनेक ध्वनियों से मिलकर पद या शब्द बनता है। अनेक पदों से वाक्य–रचना होती है और वाक्य से अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। यह क्रम निरन्तर चलता है। इनमें से प्रत्येक के विशेष अध्ययन के कारण भाषा–विज्ञान के कुछ प्रमुख अंग विकसित हुए हैं –

6.8.1 ध्वनिविज्ञान

ध्वनि–विज्ञान के अन्तर्गत ध्वनियों का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन करते हैं। इसके अन्तर्गत ध्वनि से सम्बन्धित अवयवों – मुख, विवर, नासिका–विवर और ध्वनि –यन्त्र आदि, ध्वनि का उत्पन्न होना और श्रवण आदि आते हैं। ध्वनि–परिवर्तन या ध्वनि–विकास के कारणों एवं दिशाओं का विवेचनात्मक अध्ययन होता है, जब कि प्रथम के अन्तर्गत किसी भाषा की ध्वनियों का अध्ययन किया जाता है। इसमें भाषा विशेष की ध्वनियों का वर्गीकरण उस भाषा में आदि का विवेचन आता है।

6.8.2 पदविज्ञान

इसके अन्तर्गत भाषा के वैयाकरणिक रूपों के विकास कारण तथा धातु–उपसर्ग, प्रत्यय, विभक्ति आदि का अध्ययन किया जाता है। लिंग, वचन, काल आदि से सम्बन्धित परिवर्तनों का अध्ययन भी इसी के अन्तर्गत होता है रूप–निर्माण प्रक्रिया भी इसी के अन्तर्गत आती है।

6.8.3 वाक्यविज्ञान

भाषा का कार्य विचार विनिमय है जिसका माध्यम वाक्य है। जिस प्रकार विभिन्न ध्वनियों के समन्वय से पद या रूप बनता है उसी प्रकार

विभिन्न पदों या रूपों के समन्वय से वाक्य बनता है। वाक्य–विज्ञान में वाक्य की रचना किस प्रकार होती है? इत्यादि प्रश्नों का विचार होता है। इसमें वाक्यरचना, पद–क्रम, निकटस्थ अवयव, अन्वय, परिवर्तन के कारण और दिशाएँ, केन्द्रिकता आदि की दृष्टि से वाक्य का अध्ययन कियाय जाता है।

6.8.4 अर्थविज्ञान

अर्थ भाषा का आन्तरिक पक्ष है, जिसे आत्मा की संज्ञा भी दी जाती है। भाषा सार्थक व्यवस्था होने के कारण उसकी प्रयोजनीयता अर्थ के द्वारा ही सम्भव है। कुछ विदेशी विद्वान् जिनमें अमेरिकी अग्रगण्य, हैं, अर्थ को भाषाविज्ञान का विषय न मानकर दर्शन अथवा मनोविज्ञान परिप्रेक्ष्य मानते हैं। किन्तु ऐसा मानने का तात्पर्य होगा, ध्वनियों को निरर्थक मान लेना, किन्तु यह उचित नहीं है। शब्दों के अर्थ और उसके परिवर्तन के कारण अर्थ और ध्वनि का सम्बन्ध, पर्याय और विलोम आदि का समकालिक, तुलनात्मक और ऐतिहासिक दृष्टि से भी अध्ययन किया जा सकता है।

6.8.5 शब्दविज्ञान

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार पश्चिम में इस तरह का कोई विभाग भाषा–विज्ञान के अन्तर्गत नहीं है। अतः यह विभाग परम्परा से हटकर डॉ. भोलानाथ तिवारी ने ही शब्द पर विचार किया है। किन्तु शब्दों का वर्गीकरण किसी भाषा के शब्द समूह में परिवर्तन के कारण एवं दिशाओं का अध्ययन शब्द समूह, कोशविज्ञान और व्युत्पत्तिशास्त्र इसी विभाग के अध्ययन के अंग हैं।व्युत्पत्तियों के अध्ययन के समग्र शब्दों का तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन भी किया जाता है।

6.9 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भाषा की उत्पत्ति विषयक मतों की समीक्षा कीजिए।
2. भाषा की उत्पत्ति प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
3. भाषाविज्ञान को परिभाषित कीजिए।
4. भाषाविज्ञान को परिभाषित कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'भाषोत्पत्ति विषयक' प्राचीनतम

विचार किसने व्यक्त किए –

(क) ईरानियों ने (ख) पारसियों ने

(ग) यूनानियों ने (घ) भारतीयों ने

2. भाषोत्पत्ति विषयक 'धातु सिद्धान्त' का प्रथम संकेत किसने दिया–

(क) अरस्तू (ख) प्लेटो

(ग) पाणिनि (घ) पतञ्जलि

3. श्कस पाश्चात्य विद्वान् ने सर्व प्रथ्र संस्कृत का व्यापक अध्ययन किया–

(क) प्लेटो (ख) सरविलियम जोन्स

(ग) सस्यूर (घ) चार्ल्स डिकिन्स

4. भाषाविज्ञान की किस शाखा के अन्तर्गत 'लिंग–विभक्ति' इत्यादि से सम्बन्धित परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है –

(क) ध्वनिविज्ञान (ख) शब्दविज्ञान

(ग) पदविज्ञान (घ) वाक्यविज्ञान

उत्तर – 1. ग 2. ख 3. ख 4. ग

इकाई–07 (क) ध्वनिविज्ञान (ख) पदविज्ञान

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 ध्वनिविज्ञान

7.2.1 ध्वनिविज्ञान की उपयोगिता

7.2.2 ध्वनियन्त्र

7.2.3 ध्वनिविज्ञान के भेद

7.2.4 ध्वनिपरिवर्तन

7.2.5 ध्वनिपरिवर्तन के कारण

(क) आन्तरिक कारण

(ख) बाह्य कारण

7.2.6 ध्वनिपरिवर्तन की दिशाएँ

7.2.7 ध्वनिनियम

(क) ध्वनिनियिम की परिभाषा

(ख) ग्रिम–नियम

(ग) ग्रासमैन–नियम

(घ) वर्नन–नियम

(ङ) तालव्य–नियम

(च) मूर्धन्य–नियम

7.3 पदविज्ञान

7.3.1 शब्द

7.3.2 पद

7.3.3 सम्बन्धतत्व

7.3.3 सम्बन्धतत्व

7.3.4 पदविभाग

7.3.5 व्याकरणिक कोटियाँ

(क) लिंग

(ख) पुरूष

(ग) वचन

(घ) कारक

(ङ) क्रिया

(च) काल

7.3.6 रूप (पद) परिवर्तन के कारण

7.4 सम्बन्धित प्रश्न

7.0 उद्देश्य

- ध्वनि के आधारभूत तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- ध्वनिविज्ञान की उपयोगिता क्या है यह जानेंगे।
- ध्वनिपरिवर्तन के स्वरूप, कारण और दिशाओं को जान सकेंगे।
- ध्वनिपरिवर्तन विषयक विभिन्न नियमों का ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- 'पद–विज्ञान क्या हैं' यह समझ सकेंगे।
- पद के आधारभूत तत्वों (शब्द, सम्बन्धतत्व) का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- शास्त्र सम्मत पद–विभागों को समझ सकेंगे।
- व्याकरणिक कोटियों (लिंग, पुरुष इत्यादि) को जानेंगे।
- रूप (पद) परिवर्तन के कारणों को समझ सकेंगे ।

7.1 प्रस्तावना

ध्वनिविज्ञान भाषा शास्त्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। इसके लिए अंग्रेजी में 'फोनोलॉजी तथा फोनेटिक्स' दो शब्द प्रचलित हैं। समानार्थक होने पर भी दोनों के अर्थ में अन्तर किया जाता है। फोनोलॉजी शब्द अधिक व्यापक अर्थ का बोधक है। फोनेटिक्स में मुख्यरूप से ध्वनि शिक्षा, ध्वनि की परिभाषा, भाषा की विविध ध्वनियाँ, वाग्यन्त्र, ध्वनियों का वर्गीकरण, ध्वनि–गुण, ध्वनि की उत्पत्ति, ध्वनि का श्रोता तक पहुँचना, श्रवण और

ग्रहण आदि का विचार किया जाता है। यहाँ हम केवल फोनेटिक्स के सम्बन्ध में विचार करेंगे। वाक्य में प्रयुक्त शब्द में कुछ ऐसा भी होता है, जिसके आधार पर वह अन्य शब्दों से अपना सम्बन्ध दिखला सके। यदि वाक्य के शब्द एक दूसरे से अपना सम्बन्ध दिखला सके तो वाक्य बन ही नहीं सकता। इसका तात्पर्य यह है कि शब्दों के दो रूप हैं। एक शुद्ध रूप या मूल रूप जो कोश में मिलता है और दूसरा वह रूप जो किसी प्रकार के सम्बन्ध तत्व से युक्त होता है। यह दूसरा वाक्य में प्रयोग के योग्य रूप ही 'पद' कहलाता है।

7.2 ध्वनिविज्ञान

7.2.1 ध्वनिविज्ञान की उपयोगिता

1. ध्वनिविज्ञान भाषा की विभिन्न ध्वनियों का ठीक–ठीक ज्ञान कराता है और इसके ठीक उच्चारण की शिक्षा देता है। इसके द्वारा मनुष्य का उच्चारण सम्बन्धी ज्ञान पूर्ण होता है। महाभाष्यकार का कथन है – 'शुद्ध रूप से ज्ञात एक ही शब्द का उचित प्रयोग मनुष्य के लिए स्वर्गप्राप्ति का साधन होता है'। 'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितःसुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति। (महाभाष्य, प्रदीप टीका, आ.1)

2. ध्वनिविज्ञान प्रत्येक ध्वनि के ठीक–ठीक उच्चारण स्थान और प्रयत्न को बताता है। इसी लिए प्राचीन वैयाकरणों ने ध्वनि–उच्चारण को महत्त्व प्रदान करते हुए कहा है कि थोड़ा व्याकरण और उच्चारण शिक्षा का बोध मनुष्य को अवश्य होना चाहिए –

यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम् ।

स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत ।।

3. ध्वनिविज्ञान विभिन्न भाषाओं के परस्पर सम्बन्ध को भी स्पष्ट करता है। जैसे – संस्कृत और अंग्रेजी के शब्द त्रि–Three, गो–Cow,पितृ–Father, मातृ –Mother, भ्रातृ –Brother आदि।

4. ध्वनिविज्ञान ध्वनियों के परिवर्तन के साथ मानव की प्रगति या अवनति का इतिहास बताता है। शब्दों के अशुद्ध एवं विकृत रूप भाषा के बोलने वालों की शैक्षिक एवं सांस्कृतिक अवनति के द्योतक हैं। जैसे – चतुर्वेदी–चौबे, त्रिपाठी–तिवारी, द्विवेदी–दूबे, मिश्र–मिशिर आदि। दूसरी भाषाओं की ध्वनियों और शब्दों को आत्मसात करने से विकास और प्रगति की सूचना मिलती है। संस्कृत और हिन्दी में 'टवर्ग' का आगमन विकास को सूचित करता है। इसी प्रकार अंग्रेजी, अरबी और फारसी ध्वनियों का हिन्दी में

आगमन भाषा विषयक विकास को सूचित करता है।

5. ध्वनिविज्ञान शुद्ध और स्पष्ट वैज्ञानिक संकेतों के निर्माण में सहायक होता है। तार, वायरलेस एवं भौतिकी आदि के वैज्ञानिक संकेतों के लिए इसका आश्रय लिया जाता है।

6. ध्वनिविज्ञान का मुख्य आधार तीन बातों पर निर्भर है –

   1. विश्लेषण (Analysis)
   2. वर्णन (Description)
   3. वर्गीकरण (Classification)

इनका परिणाम यह होता है कि किसी भी भाषा की बहुत अधिक संख्या में दिखने वाली ध्वनियाँ सिमटकर अत्यन्त कम हो जाती हैं।

7. ध्वनिविज्ञान विभिन्न भाषाओं के पारस्परिक सम्बन्ध के द्वारा विश्वबन्धुत्व और विश्व संस्कृति की स्थापना में सहयोग देता है।

7.2.2 ध्वनियन्त्र

ध्वनिविज्ञान में ध्वनि का सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाता है। ध्वनि का एकमात्र साधन वाग्यन्त्र है। वाग्यन्त्र का सूक्ष्मता से ज्ञान ध्वनिविज्ञान की शिक्षा के लिए अनिवार्य है।

जिन अवयवों या अंगों की सहायता से भाषा ध्वनियों का उच्चारण किया जाता है, उन्हे वाग्यन्त्र, ध्वनियन्त्र या उच्चारण अवयव कहा जाता है।

मानवीय वाग्यन्त्र की तुलना वीणा या बांसुरी आदि से की जा सकती है। वीणा आदि में एक ओर से वायु आती है, उसे कभी पूर्ण रूप से रोका जाता है। कभी अपूर्णरूप से रोका जाता है और कभी पृथक–पृथक् स्थानों से निर्गत करके सरगम की विभिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न की जाती हैं। इसी प्रकार फेफड़ों से आने वाली निःश्वास वायु को स्वरन्त्रियों, कोमल तालु, कठोर तालु, दन्त, ओष्ठ, आदि से नियन्त्रित करते हुए सभी प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न की जाती हैं।

7.2.3 ध्वनिविज्ञान के भेद

ध्वनिविज्ञान के सामान्य तौर पर दो भेद किए जाते हैं –

1. प्रायोगिक ध्वनिविज्ञान
2. ऐतिहासिक ध्वनिविज्ञान

1. **प्रायोगिक ध्वनिविज्ञान** – इस शाखा में किसी न किसी प्रकार के यन्त्र या उपकरण की सहायता अवश्य ली जाती है। ध्वनियों के अध्ययन में जब मात्र देखने सुनने से काम न चला तो ध्वनिशास्त्रियों ने अध्ययन और विश्लेषण के लिए विभिन्न प्रकार के उपकरणों का प्रयोग प्रारम्भ किया। इन उपकरणों में एक ओर तो कुछ बड़े सामान है।, जैसे – दर्पण आदि और दूसरी ओर मशीनें है। जिनके संचालन के लिए यन्त्रज्ञों की आवश्यकता पड़ती है। अपेक्षित न होने के कारण इस शाखा का यहाँ विस्तृत वर्णन नहीं किया जा रहा ।

2. **ऐतिहासिक ध्वनिविज्ञान** – इस शाखा में किसी भाषा की विभिन्न ध्वनियों में विकास का विभिन्न कालों में अध्ययन किया जाता है। इनमें उन प्रमुख ध्वनि नियमों का भी विवेचन किया गया है। जिनका निर्धारण विभिन्न भाषाओं की ध्वनियों के अध्ययन के सन्दर्भ में हुआ है।

7.2.4 ध्वनिपरिवर्तन

किसी भी जीवित सत्ता में प्रतिपल भी इसी प्रकार परिवर्तन आवश्यक होता है। अतः भाषा भी परिवर्तनशील है। भाषा में परिवर्तन रुक जाने से भाषा मृत अथवा अप्रासंगिक हो जाती है। यह परिवर्तन उसमें सभी स्तरों वाक्य, रूप, अर्थ, ध्वनि आदि पर होता है। उदाहरण के लिए संस्कृत का 'घोटक' शब्द ही परिवर्तित होकर घोड़ा बन गया। घोटक–घोडगे–घेड़अ –घोडा। अर्थात् 'ट' ध्वनि क्रमशः ड, ड़, अ हो गई। 'क' व्यञ्जन 'ग' होकर लुप्त हो गया और 'क' का 'अ' 'ड' के अ से मिलकर आ हो गया। यही ध्वनिपरिवर्तन है।

7.2.5 ध्वनिपरिवर्तन के कारण

भाषा का प्रमुख तत्व ध्वनि है। वक्ता सुनता है। वक्ता की ध्वनि पर दो प्रकार से प्रभाव पड़ता है। 1 आभ्यन्तर 2 बाह्य । वक्ता और श्रोता से सम्बद्ध कारणों को आभ्यन्तर कारण कहते हैं। जैसे – प्रयत्नलाघव, मुखसुख, अज्ञान,क्षिप्रभाषण आदि। इसके अतिरिक्त अन्य कारणों को बाह्य कारण कहते हैं। ये कारण बाहर से ध्वनि को प्रभावित करते हैं। जैसे सामाजिक, राजनीतिक, भौगोलिक आदि कारण।

इस प्रकार ध्वनि–परिवर्तन के कारणों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। आभ्यन्तर कारण और बाह्यकारण।

(क) आन्तरिक या आभ्यन्तर कारण

1. प्रयत्नलाघव या मुखसुख – यह ध्वनि परिवर्तन का सबसे प्रमुख

कारण है। मनुष्य स्वभाव से ही कम प्रयत्न करके अधिक लाभ उठाना चाहता है। कम प्रयत्न से ही अपने भावों को स्पष्ट करना चाहता है। मुख की सुविधा के कारणइसे मुख–सुख और उच्चारण की सुविधा आदि कहते हैं। मुख–सुख के लिए कठिन शब्दों को सरल बनाया जाता है और क्लिष्ट उच्चारणों के आदि स्वरागम, मध्य स्वरागम आदि के द्वारा सरल बनाया जाता है। जैसे – सत्य>सच, चक्र>चक्कर,प्रचार>परचार, स्टेशन>इस्टेशन, हास्पिटल>अस्पताल । अंग्रेजी में Talk, Walk, Know, Knife, Night, Psychology आदि में कुछ ध्वनियों का उच्चारण इसीलिए नहीं किया जाता।

कभी कभी ध्वनियों का स्थान भी परिवर्तित कर देते हैं। जैसे –चिह्न > चिन्ह, ब्राह्मण>ब्राम्हण आदि।

कभी–कभी प्रयत्न लाधव के प्रयास में शब्दों को काट–छांट कर इतना छोटा बना लिया जाता है कि पहचानना भी कठिन हो जाता है। जैसे – गोपेन्द्र>गोबिन, सपत्नी>सौत इत्यादि ।

2. **लघ्वीकरण** – जो शब्द अधिक लम्बे होते हैं उन्हें बोलने में अधिक असुविधा होती है और इसीलिए उनमें परिवर्तन भी अधिक होते हैं। लम्बे शब्दों को संक्षिप्त या लघु कर दिया जाता है। इसके मूल में भी प्रयत्न लाघव की प्रवृत्ति ही होती है। यह प्राचीन प्रवृत्ति है। वार्तिकार कात्यायन ने भी इसका निर्देश किया है कि नामों आदि में एक अंग में उच्चारण से काम चलाया जाता है जैसे – देवदत्तः को देवः या दत्तः, सत्यभामा को सत्या या भामा।

विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वाच्यः । वार्तिक 5.3.83 सूत्रपर

इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी हैं। जैसे – भारतीय जनता पार्टी भाजपा, बहुजन समाज पाटी बसपा, संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन, संप्रग इत्यादि।

इसी प्रकार अंग्रेजी में नेफा,पेप्सू,, मीसा, यूनेस्को, नाटो, इत्यादि भी हैं ।

3. **क्षिप्रभाषण** :– बोलने में शीघ्रता के कारण भी ध्वनि में परिवर्तन हो जाता है। इसमें मध्यगत ध्वनियों का प्रायःलोप हो जाता है। इसके साथ लघ्वीकरण की प्रवृत्ति भी देखी जाती है। जैसे –पण्डित जी>पंडी जी, मास्टर साहब>मास्साब इत्यादि मध्य प्रदेश के क्षेत्रों में उन्होंने>उन्ने, इन्होंने >इन्ने बोला जाता है। जैनेन्द्र जी ने अपने उपन्यासों में ऐसे शब्दों को स्थान दिया है। यथा – किसने>कभी, अब ह>अभी तथा तब ही>तब भी इत्यादि

भी इसी के उदाहरण हैं।

इंग्लैण्ड में व्यस्त जीवन की शीघ्रता में केवल क्यू रह गया है। अंग्रेजी के कुडनॉट–कोंट, डू नॉट–डोन्ट इत्यादि भी इसी ध्वनिपरिवर्तन के उदाहरण हैं।

4. **अनुकरण की अपूर्णता** :–भाषा अनुकरण के द्वारा ही सीखी जा रही है। किन्तु यह अनुकरण सदैव पूर्ण नहीं होता। अतः अपूर्ण अनुकरण ध्वनि–परिवर्तन को जन्म देता है, 'रुपया' किन्तु अनुकरण से कहता है, 'नुपया' अथवा 'लुपया' । नम्बरदार लम्बरदार सिग्नल सिंगल, ज्वाइन्ट जैन, इंस्पेक्टर इंस्पेट्टर आदि इसी के परिणाम हैं ।

5. **भावावेश** :– प्रेम, क्रोध आदि भावावेशों में भी शब्दों में ध्वनिपरिवर्तन हो जाता है। विशेषतः लोकप्रचलित व्यक्तिवाचक नाम तो अधिकांशत इसी ध्वनिपरिवर्तन के परिणाम हैं । जैसे – राम>रामू, कृष्ण>किशन, लाल चन्द> लालू बच्चा>बाचा, बाबू>बबुआ आदि । ऐसे शब्दों की संख्या न्यून है।

6. **अज्ञान** :– देशी या विदेशी किसी भी प्रकार के शब्द, जिनके विषय में हमें निश्चित ज्ञान नहीं है। अधिकतर अशुद्ध उच्चरित होने लगते हैं और ध्वनि परिवर्तन हो जाता है। अज्ञान के कारण लोग शब्दों का ठीक रूप समझ नहीं पाते और फल यह होता है कि उच्चारण का ठीक अनुकरण नहीं हो पाता और इस प्रकार ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है।

लोक भाषाओं में इसी कारण इंजीनियर>इंजियर, एक्सप्रेस>इसप्रेस, कम्पाउण्डर>कम्पोटर आदि हो गया है। अंग्रेजी और अरबी – फारसी आदि के शब्दों में ज को ज, क को क,ग को ग, त को ट आदि कर देते हैं। बन्द्योपाध्याय>बनर्जी, मुख्योपाध्याय>मुकर्जी गंगोपाध्याय >गांगुली आदि इसी प्रकार बने हैं।

7. **बलाघात** :– किसी ध्वनि पर बल देने में श्वास का अधिक भाग उसी के उच्चारण में व्यय करना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि आस पास की ध्वनियाँ कमजोर पड़ जाती हैं और धीरे–धीरे उनका लोप हो जाता है। 'आभ्यन्तर' के बीच में बल है, अतः आरम्भ का 'अ' समाप्त हो गया और 'भीतर' बन गया। लोगों में प्रचलित बारीक>बरीक, बाजार>बजार तथा डाइरेक्टर >डिरेक्टर, फाइनेन्स>फिनैन्स आदि इसके उदाहरण हैं।

8. **सादृश्य** :– कुछ शब्द किसी दूसरे के सादृश्य के कारण अपनी ध्वनियों का परिवर्तन कर लेते हैं । संस्कृत में द्वादश के सादृश्य पर एकादश हो गया। इसी प्रकार दुःख के सादृश्य पर सुक्ख हो गया है।

वस्तुतः सादृश्य स्वयं कारण न होकर कार्य है। इसका भी प्रधान

कारण सुगमता ही है, पर यहाँ पर सुगमता की प्राप्ति किसी विशेष शब्द के आधार पर होती है। अतः इसे अलग कारण माना गया है।

9. भ्रामक व्युत्पत्ति :– भ्रामक व्युत्पत्ति में जब लोग किसी अपरिचित शब्द के संसर्ग में आते हैं और यदि उससे मिलता जुलता कोई शब्द उनकी भाषा में पहले से रहता है तो उस अपरिचित शब्द के स्थान पर उस परिचित शब्द का ही उच्चारण करने लगते हैं और इस प्रकार ध्वनिपरिवर्तन हो जाता है। जैसे – लाइब्रेरी रायबरेली, आर्ट्स कॉलेज आठ कॉलेज, गो डाउन गोदाम, मेकेज्जी मक्खनजी आदि ।

माउण्ट आबू में एक स्थान का नाम अंग्रेजी में Sunset poincrt रखा, उसे अब लोग 'सैंसठ –पैंसठ'कहते हैं।

10. सहजीकरण या कृत्रिमता – आत्माभिव्यक्ति के लिए कुछ लोग शब्दों को तोड़ मरोड़कर बोलते हैं। इसे बनावटी पन कह सकते हैं। इसका स्थायी प्रभाव नहीं है। जैसे – भाई>भइया, भ्राता>प्रा (पंजाबी), उठो>उट्ठो, बहिन>भैंन, छात्र>क्षात्र, स्मरण >सुमिरन इत्यादि ।

एकेडमी को हिन्दी आदि में अकादमी या टेकनीक को तकनीक कर लिया गया है।

(ख) बाह्यकारण

1. **भौगोलिक प्रभाव** :– भौगोलिक कारणों से भी ध्वनियों में परिवर्तन हो जाता है। फारसी में 'स' को 'ह' हो जाता है। जैसे – सिन्धु > हिन्दु, सप्ताह>हफ्ता। पहाड़ी क्षेत्रों में 'स' को 'श' बोलते हैं। समाचार>शमाचार, सन्देश> शन्देश आदि। उच्चजर्मन और निम्न जर्मन में भौगोलिक कारणों से ही ध्वनि परिवर्तन हुआ है। जैसे – Drink > trinkar, day>tag, Two>zwei, earth>erde आदि।

2. **सामाजिक एवं राजनीतिक** :– सामाजिक एवं राजनीतिक उन्नति या अवनति के कारण शब्दों में ध्वनिपरिवर्तन हो जाता है। उन्नति की अवस्था में शब्दों के शुद्ध रूप बल दिया जाता है और अवनति के समय अपभ्रंश रूपों की अधिकता होती है। जैसे –पण्डित>पण्डा, यजमान>जजमान, दिल्ली >देहली, लुचिकेश>लुच्चा, आर्डली> अर्दली, वाराणसी>बनारस ।

3. **कालप्रभाव** – काल के प्रभाव से भी भाषा में परिवर्तन होता रहता है। फलस्वरूप वैदिक संस्कृत से संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं वर्तमान भारतीय भाषाओं का विकास हुआ। जैसे – दृश् से देखना, अस् से होना, खाद् से खाना, पा से पीना, निवर्तत निबटता है आदि।

4. लिपिदोष :– विभिन्न लिपियों की अपूर्णता का कारण भी ध्वनिपरिवर्तन देखा जाता है। अंग्रेजी और उर्दू आदि के प्रभाव के कारण ध्वनियों के उच्चारण में अन्तर हो गया। जैसे – राम> रामा, कृष्ण> कृष्णा, बुद्ध>बुद्धा, गुप्त> गुप्ता, मिश्र>मिश्रा आदि।

7.2.6 ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ

ध्वनिपरिवर्तन मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं। प्रथम के अन्तर्गत वे परिवर्तन आते है जिनके विषय में कुछ अधिक कह सकना असम्भव है। ये भाषा के प्रवाह में कहीं भी घटित हो सकते हैं। इन्हें 'स्वयम्भू' (Unconditional or spontaneous) कहा जाता है। दूसरे प्रकार के परिवर्तनों को 'परोद्भूत' कहा जाता है। इसी को Conditional या Contact कहा जाता है। इनका विस्तृत विवेचन अपेक्षित है–

(1) लोप

बोलने के क्रम में शब्द अथवा कथन में से किसी ध्वनि का लोप हो जाता है। लोप तीन प्रकार का होता है –

1. स्वरलोप – जब किसी शब्द के स्वर का लोप कर दिया जाता है तथा यह अन्त्य भेद से तीन प्रकार का हो सकता है। जैसे – अहाता> हाता, अरहट्ट >रहट, बलदेव > बल्देव, लगभग> लग्भग, असली >अस्ली, आम >आम्, कमल> कमल् आदि।

2. व्यञ्जनलोप – उच्चारण की कठिनाई के कारण अनेक व्यञ्जनों का भी लोप हो चुका है। ये भी तीन प्रकार के होते हैं। जैसे – स्थाली> थाली, शमशान> मशान, सप्त> सात, कार्तिक> कातिक आदि ।

अन्त्य व्यञ्जन लोप के उदाहरण कम भाषाओं में मिलते हैं। अंग्रेजी का Command हिन्दी में कमान तथा Bomb को बम हो गया है।

3. स्वर–वयञ्जन या अक्षरलोप – यह भी तीन प्रकार का होता है।

आदिअक्षरलोप	**मध्य अक्षरलोप**	**अन्त्याक्षरलोप**
आदित्यवार–इतवार	भाण्डागार–भण्डार	मातृश्वसा–मासी
उपाध्याय–झा	पर्यङ्कग्रन्थि–पलत्थी	पूलिका – पूरी

(2) आगम

उच्चारण की सुविधा के लिए शब्दों के आदि, मध्य या अन्त में कुछ ध्वनियाँ जोड़ दी जाती हैं, इसे ही आगम कहते हैं। इसके भी तीन भेद होते हैं –

1. आदिस्वरागम **आदिव्यञ्जनागम**

स्त्री – इस्त्री	ओष्ठ – होठ
स्कूल – इस्कूल	उल्लास – हुलास

2. **मध्यस्वरागम** — **मध्यव्यञ्जनागम**

स्टेशन – सटेशन	पण – प्रण
धर्म – धरम	समुद्र – समुन्दर
भक्त – भगत	शाप – श्राप

3. **अन्त्यस्वरागम** — **अन्त्यव्यञ्जनागम**

दवा – दवाई	चील – चील्ह
पत्र – पतई	वधू – वधूटी
पुरवा – पुरवाई	रंग – रंगत

(3) विपर्यय

इसे वर्ण–व्यत्यय, स्थान–परिवर्तन या वर्ण–विपर्यय भी कहते हैं। कभी कभी किसी शब्द में आने वाले स्वर या व्यञ्जन का स्थान असावधानी के कारण या जान–बूझ कर बदल देते हैं। वर्ण–परिवर्तन के उदाहरण निरुक्त आदि में भी मिलते है। जैसे –

कर्त – तर्क	लखनऊ – लखलऊ	लेकिन – नकिल
अम्लिका – इमली	मतलब –मतबल	ब्राह्मण–बाम्हन
पहुंचना–पहुँपना	वाराणसी–बनारस	चाकू – काचू

(4) समीकरण

जब दो विषम ध्वनियाँ एकत्र होती हैं तो एक ध्वनि दूसरी ध्वनि को प्रभावित करके अपने सदृश बना लेती है। जैसे – संस्कृत 'चक्र' से प्राकृत में 'चक्क' हो गया है। यहाँ क् न र् को प्रभावित करके 'क्' बना लिया है। यह समीकरण दो प्रकार का होता है –

1. **पुरोगामी समीकरण** – इसमें पूर्ववर्ती प्रमि ध्वनि दूसरी ध्वनि को अपने सदृश बना लेती है। जैसे – चक्र – चक्का, पक्व – पक्का, पत्र – पत्ता, व्याघ्र – बाघ ।

2. **पश्चगामी समीकरण** – इसमें परवर्ती ध्वनि पूर्ववर्ती ध्वनि को अपने सदृश बना लेती है। जैसे – धर्म – धम्म, सप्त –सत्त, शर्करा – शक्कर, गल्प – पप्प।

(5) विषमीकरण

इसमें एक शब्द में दो समान ध्वनियों में से एक किसी अन्य से

प्रभावित हो जाती है। उच्चारण की सुविधा और अर्थ की स्पष्टता के कारण ऐसा होता है।

स्वर	**व्यञ्जन**
पुरुष – पुलिस	काक – काग
मुकुट – मउर (मौर)	कङ्कण – कङ्गन
नुपूर –नेऊर	काकर – चाकर
	किकीर्षति – चिकीर्षति

(6) सन्धि कार्य

सन्धि एक साथ आने वाले शब्दों के बीच अथवा वाक्यांशों में पाई जाने वाली ध्वनि विकासमूलक एक औद्भूति है। इसमें दो स्वर या व्यञ्जन मिलकर एक हो जाते हैं या संयुक्त बन जाते हैं। कुछ व्यञ्जन उच्चारण मे स्वर के समीप होने के कारण स्वर में परिवर्तित हो जाते हैं और फिर अपने से पहले के व्यञ्जन में मिल जाते हैं। कभी–कभी इससे ध्वनियों में इतना परिवर्तन हो जाता है कि साधारण तथा समझ में नहीं आता । जैसे–

शत> सत >सब >सउ> सौ।	नयन >नैन
भ्रमर> भैंवर >भौंरा	अवतार >औतार
	उपल >ओला

(7) ऊष्मीकरण

कभी–कभी कुछ ध्वनियों का ऊष्मीकरण हो जाता है । जैसे – 'केन्तुम' वर्ग की भाषाओं की 'क्' ध्वनि 'शतम्' वर्ग की संस्कृत ओर अवेस्ता भाषा में 'स' या 'श' ऊष्म ध्वनि के रूप में प्राप्त होती है। जैसे –

Centum (केन्तुम) – शतम्,	Octo(ऑक्टो) – अष्ट।

(8) मात्रा भेद

प्रयत्न लाघव के लिए कभी दीर्धस्वर को ह्रस्व तो कभी ह्रस्वस्वर को दीर्ध कर देते हैं। जैसे –

कल – काल्ह,	आभीर – अहीर
आलाप – अलाप	पुत्र – पूत
प्रियतम – प्रीतम	वानर–बन्दर

(9) अनुमानसिकता

शब्दों के उच्चारण में कभी–कभी वायु नासिका एवं मुख–द्वार से बॅटकर निकलती है तो उच्चारण में अनुनासिकता आ जाती है। यह कहीं

सकारण तो कहीं अकारण होती है। जैसे –

1. सकारण – चन्द्र – चॉद, अन्धकार – अंधेरा

2. अकारण –

सर्प – सांप	अश्रु – आंसू	उच्च –ऊँचा
उष्ट्र – ऊँट	निद्रा – नींद	अक्षि– आंख।

इसके अतिरिक्त कतिपय अन्य सामान्य तथा कुछ विशेष प्रकार के ध्वनि परिवर्तन भी होते हैं।

7.2.7 ध्वनि नियम

ध्वनि परिवर्तन भाषा की परिवर्तनशीलता के कारण होते हैं। कुछ परिवर्तन ऐसे हैं, जिनका क्षेत्र बहुत सीमित है और कुछ का क्षेत्र व्यापक है। इन व्यापक परिवर्तनों को नियम की सीमा में बांधने का प्रयत्न किया गया है। ऐसे ही कतिपय नियमों को ध्वनि–नियम कहा गया है। ये सामान्य नियम नहीं हैं और न सभी भाषाओं पर प्रभावी हैं। किसी विशेष भाषा में किसी काल–विशेष में ये प्रवृत्त होते हैं, उस भाषा में भी सार्वत्रिक रूप से वे प्राप्त होते हैं; यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। अतएव प्रत्येक नियम के अनेक अपवाद है।

(क) ध्वनि–नियम की वैज्ञानिक परिभाषा

किसी भाषा विशेष में किसी काल–विशेष में कुछ विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत हुए विशेष प्रकार के ध्वनि–परिवर्तनों को ध्वनि–नियम कहते हैं। इस परिभाषा के चार अंग हैं –

1. ध्वनि–नियम किसी भाषा–विशेष का होता है। एक भाषा के ध्वनि–नियम को दूसरी भाषा पर लागू नहीं किया जा सकता।

2. एक भाषा की भी सभी ध्वनियों पर यह नियम न लागू होकर कुछ विशिष्ट ध्वनियों या ध्वनि वर्ग पर लागू होता है।

3. ध्वनि–परिवर्तन का भी एक विशिष्ट काल होता है।

4. किसी विशिष्ट भाषा के किसी विशिष्टकाल में कोई विशिष्टध्वनि भी यों ही परिवर्तित नहीं हो सकती। उसके लिए विशिष्ट दशा या परिस्थिति की आवश्यकता पड़ती है।

5. ध्वन्यात्मक नियम अधिकांशरूप में नियमित होते हैं, किन्तु ये नियम प्राकृत विज्ञानों की भॉति व्यापक, सुनिश्चित एवं दृढ़ नहीं होते ।

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार, ''किसी विशिष्ट भाषा की कुछ विशिष्ट ध्वनियों में किसी विशिष्ट काल और कुछ विशिष्ट दशाओं में हुए

नियमित परिवर्तन को उस भाषा का ध्वनिनियम कहते हैं।''

(ख) ग्रिम–नियम

यद्यपि ध्वनि–परिवर्तन सम्बन्धी नियमों का सम्बन्ध 'ग्रिम' से जोड़ा जाता है, परन्तु उसका सूत्र 'रास्क' और 'ईरे' ने पहले ही ढूँढ़ निकाला था। इसे व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय 'जैकब ग्रिम' नामक जर्मन विद्वान को है। सन् 1822 में ग्रिम ने अपने 'जर्मन–व्याकरण' के द्वितीय संस्करण में इस नियम को प्रकाशित किया। इस नियम को ग्रिम ने 'प्रथम ध्वनि–परिवर्तन' तथा 'द्वितीय ध्वनि–परिवर्तन' इन दो चरणों में स्पष्ट किया है –

प्रथम ध्वनि–परिवर्तन – इस ध्वनि–परिवर्तन में एक ओर संस्कृत, लैटिन, ग्रीक, स्लावोनिक भाषाएँ हैं, इनमें मूलध्वनि सुरक्षित है। दूसरी ओर गॉथिक, निम्न जर्मन, अंग्रेजी, डच आदि भाषाएँ हैं, इनमें यह परिवर्तन हुआ है। सर्वाधिक व्यञ्जन ध्वनियाँ, संस्कृत में सुरक्षित हैं, किन्तु जर्मनिक शाखा में कुछ ध्वनियाँ भिन्न रूप में प्रयुक्त हुई हैं। ग्रिम के अनुसार जर्मनिक शाखा में उक्त परिवर्तन निम्नलिखित रूप में हुआ –

मूल–भारोपीय शाखा	जर्मनिक शाखा
(संस्कृत,ग्रीक,लैटिन,आदि)	(गॉथिक, अंग्रेजी, डच,निम्न जर्मन भाषी)
(अघोष अल्पप्राण) क,त,प	(अघोष महाप्राण) ख, (ह) थ,फ या (घोषमहाप्राण) घ,ध,भ
(घोष महाप्राण) घ,ध,भ	(घोष अल्पप्राण) ग,द,ब
(घोष अल्पप्राण) ग,द,ब	(अघोष अल्पप्राण) क,त,प

इसे एक रेखाचित्र से स्पष्ट समझा जा सकता है –

ख, थ,फ

घ, ध, भ

क,त,प 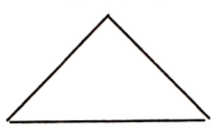 ग,द,ब

इनके कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं –

भारोपीय (संस्कृत)		**जर्मनिक (अंग्रेजी)**	
क से ह	कः	Who	(हू)
त से थ	त्रि	Three	(थ्री)
प से फ	पद	Foot	(फुट)

ह से ग	हंस	Goose	(गुस)
	दुहिता	Daughter	(डा(ग्)टर)
ध से द	विधवा	Widiw	(विदो)
भ से ब	भ्रातृ	Brother	(ब्रदर)
ग से क	गो	Cow	(काउ)
द से त	द्वौ	Two	(ट्वो)
ब व प*	तुर्बा (लैटिन)*	Thorp	(थार्प)

द्वितीय ध्वनि–परिवर्तन – प्रथम परिवर्तन में मूलभाषा से जर्मनभाषा भिन्न हुई थी, पर द्वितीय परिवर्तन में जर्मन–भाषा के दो ही रूपों उच्च जर्मन और निम्न जर्मन में यह अन्तर पड़ा। इसे भी एक रेखाचित्र से स्पष्ट किया जा सकता है –

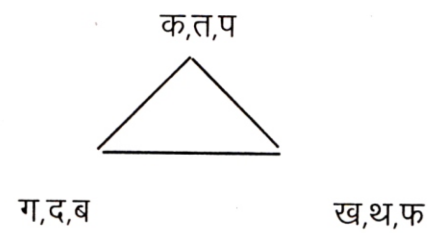

इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं –

	निम्न जर्मन	उच्च जर्मन
क से ख	बुक (Book)	बुख (Buck)
ट से थ (स)	वाटर (Water)	व्हासरं (Wasser) जर्मन में थ का उच्चारण 'स' होता है।
प से फ	डीप (Deep)	टीफ (Tief)
	शीप (Sheep)	शाफ (Schap)
थ से द	थ्री (Three)	द्रेइ (Drei)
	नार्थ (North)	नॉरदेन (Northern)
ड से ट	गुड (Good)	गूट (Guht)
	डे (Day)	टाक (Tag)

इस प्रकार यद्यपि ग्रिम नियम अत्यन्त सुलझा हुआ प्रतीत होता है,

* इसका उदाहरण संस्कृत में अबतक नहीं मिला है।

परन्तु स्वयं ग्रिम को इस नियम के अनेक अपवाद प्राप्त हुए जिनका वे समाधान प्रस्तुत न कर सके।

(ग) ग्रासमैन नियम – ग्रासमैन ने यह खोज निकाला कि मूल भारोपीय भाषा में यदि शब्द या धातु के आदि और अन्त दोनों स्थानों पर महाप्राण हो तो संस्कृत, ग्रीक आदि में एक अल्पप्राण हो जाता है।

7.3 पदविज्ञान

भाषा की सार्थक इकाई वाक्य है, अर्थात् भाषा को वाक्यों में तोड़ा जा सकता है। उसी प्रकार वाक्य के खण्ड शब्द होते हैं और शब्द की ध्वनियाँ।

7.3.1 शब्द

सार्थक ध्वनि समूह को 'शब्द' कहा जाता है। संस्कृत में 'प्रातिपदिक' प्रकृति कहा जाता है। **'अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्'**[1]

कोश ग्रन्थों में ये सार्थक शब्द या प्रातिपदिक मिलते हैं। इनके द्वारा वस्तु, व्यक्ति या क्रिया का बोध कराया जाता है।

'येनोच्चारितेन सास्नालाङ्गूलककुदखुरविषाणिनां सम्प्रत्ययो भवति स शब्दः'[2]

शब्द, प्रकृति और प्रत्यय के संयोग से बंना है या नहीं इस आधार पर संस्कृत और हिन्दी में शब्दों के तीन भेद किए गये हैं –

(i) **रूढ़शब्द** :– जिनमें प्रकृति और प्रत्यय को स्पष्ट रूप से अलग नही किया जा सकता। जैसे – मणि, रत्न, नूपुर, स्थूल आदि।

(ii) **यौगिक** :– जो प्रकृति और प्रत्यय के संयोग से बनते हैं, जैसे – कृ + तृच् कर्तृ, भूत + इक भौतिक, धन + वतुप् धनवत्, बलवान्, श्रीमान् आदि।

(iii) **यौगरूढ़** :– जो शब्द यौगिक होते हुए भी किसी विशेष अर्थ में रूढ़ हो जाते हैं उन्हें योगरूढ़ कहते हैं। जैसे – सरसिज, पङ्कज आदि।

रूढ़शब्दों को 'अव्युत्पन्न' प्रातिपदिक और यौगिकशब्दों को 'व्युत्पन्न प्रातिपदिक' कहते हैं पाणिनि ने रूढ़शब्दों के अतिरिक्त यौगिकशब्दों को भी प्रातिपदिक मानने के लिए नियम बनाया है **'कृत्तद्धितसमासाश्च'**[3]

1. अष्टाध्यायी 1.2.45
2. महाभाष्यम् कील्होर्न्न भाण्डारकर ओरिएन्टल शोध संस्थान पूना तृतीय संस्करणम् 1962 पृ. 01
3. अष्टाध्यायी 1.2.46

अर्थात् कृत् प्रत्ययान्त, तद्धित प्रत्ययान्त और समासयुक्त पद भी प्रातिपदिक होते हैं। अतः इनसे भी सुप् प्रत्यय होंगे। इस प्रकार सभी सार्थक शब्दों को प्रातिपदिक कहा जाएगा।

7.3.2 पद

'शब्द' को वाक्य में प्रयुक्त होने योग्य बना लेने पर, उसे 'पद' संज्ञा से अभिहित किया जाता है। पद बनाने के लिए शब्द में कुछ विशेष अर्थों के बोधक प्रत्यय लगाए जाते हैं। इनके लगाने पर वह शब्द प्रयोग के योग्य होता है। इसलिए संस्कृत में नियम है –

न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या, नापि केवलः प्रत्ययः।'

अपदं न प्रयुञ्जीत'। (महाभाष्य)

पद बनाने के लिए प्रकृति से दो प्रकार के प्रत्यय जुड़ते हैं –

(i) सुप प्रत्यय :– सभी संज्ञा और विशेषण शब्दों से सुप् प्रत्यय लगते हैं। सात विभक्तियों के आधार पर इनकी संख्या 21 है। उपसर्ग और अव्ययों के बाद भी सुप् प्रत्यय लगते हैं, परन्तु उनका लोप हो जाता है। प्रातिपदिक सुप् प्रत्यय। जैसे – राम+सु (स्) = रामः।

(ii) तिङ् प्रत्यय :– धातुओं से तिङ् प्रत्यय लगते हैं। तिङ् प्रत्यय लगने पर ही उनका प्रयोग हो सकता है। संस्कृत में राम गम् (राम जाना) का प्रयोग नहीं हो सकता । क्यों कि पद बनाने वाले प्रत्यय सुप् और तिङ् नहीं लगे हैं।

इनका विशेष विवरण अपेक्षित है –

(1) शब्दों के अन्त में लगने वाले कारक चिह्नों सु, औ, जस्, (:, औ, अः) आदि को 'सुप्' कहते हैं। ये कर्ता, कर्म, करण आदि कारकों तथा वचनों को बताते हैं।

(2) धातुओं के अन्त में लगने वाले काल (Tense) और वृत्ति के बोधक तिप् (ति), तस् (तः) झि (अन्ति) आदि को 'तिङ्' कहते हैं। इनसे काल वृत्ति, वाच्य (कर्तृ, कर्म, भाववाच्य) और वचन आदि का बोध कराया जाता है।

हिन्दी में सुप् के स्थान पर स्वतंत्र कारक चिह्न (ता, ते, है,हूँ, गा, गे, आदि) लगाए जाते हैं।

ध्यातव्य है कि विश्व की अनेक भाषाओं में शब्द और पद में अन्तर

4. निरुक्त अध्याय 1

नहीं है।

जैसे – चीनी भाषा एकाक्षरी, अयोगात्मक तथा स्वतन्त्र है।

7.3.3 सम्बन्धतत्त्व

प्रत्येक वाक्य में दो प्रकार के विशिष्टतत्त्व होते हैं।

(1) भावों के प्रतिरूप एवं विषयानुभूति के तत्व ।

(2) उक्त भावों को परस्पर विशेष सम्बन्ध में संकेतक तत्व।

दोनों में प्रधान 'अर्थतत्व' है। दूसरे को 'सम्बन्धतत्व' कहते हैं। सम्बन्धतत्व का काम है विभिन्न अर्थतत्वों का आपस में सम्बन्ध दिखलाना। उदाहरणार्थः– गुरु ने शिष्य से प्रश्न पूछा।

इसमें गुरु, शिष्य,प्रश्न और पूछना ये चार भाव विशेष के बोधक अर्थतत्व हैं। वाक्य बनाने के लिए चारों अर्थतत्वों में सम्बन्धतत्व की आवश्यकता पड़ेगी। अतः यहाँ सम्बन्धतत्व भी है। ये तत्व हैं ने, से तथा भूतकाल का चिह्न 'आ'। इन्हें ही सम्बन्ध तत्व कहते हैं।

अर्थतत्व उन तत्वों के कहते हैं, जो मानसिक प्रतिभाओं के द्वारा भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। जैसे – पूर्वोक्त उदाहरण में गुरु, शिष्य, प्रश्न, पूछना।

सम्बन्धतत्व उन तत्वों को कहते हैं जो उक्त प्रकार से व्यक्त भावों में परस्पर सम्बन्ध की अभिव्यक्ति करते हैं। जैसे – ने, से, आ, आदि।

केवल अर्थतत्व भावों की अभिव्यक्ति नहीं कर सकते। अतः सम्बन्धतत्वों की आवश्यकता होती है।

7.3.4 पद–विभाग

यास्क ने निरुक्त में पद को चार भागों में विभक्त किया है। **'चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्ग निपाताश्च। भावप्रधानमाख्यातम्। सत्वप्रध ाानानि नामानि।**[4]

ये चारों निम्नलिखित हैं –

(i) नाम – संज्ञा शब्द

(ii) आख्यात – क्रिया शब्द

(iii) उपसर्ग – सम्बद्ध अव्यय

(iv) निपात – अव्ययशब्द

सामान्यतया पद के ये चार भाग प्रातिशाख्य आदि ग्रन्थों में भी स्वीकार किए गये हैं। पाणिनि ने 'सुप्तिङ्न्तं पदम्' में पद को केवल दो भागों में विभक्त किया है। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में विशेष रूप से उल्लेख किया है कि प्राचीन दो आचार्य 'वार्ताक्ष' और 'औदुम्बरायण' पद के दो ही विभाग मानते थे। वास्तव में विचार करने पर स्पष्ट होता है कि नाम और आख्यात यही दो तत्व मुख्य हैं। उपसर्ग स्वतंत्र रूप से अर्थ के वाचक नहीं है, अपितु निर्वद्ध होकर ही अर्थ के द्योतक होते है।

भाषाशास्त्र की दृष्टि से पाणिनि का पद– विभाजन ही समीचीन है। संज्ञा और क्रिया ये दो ही मुख्य हैं। व्यावहारिक सुविधा के लिए ही नाम से उपसर्ग और निपात को पृथक किया गया है। हिन्दी में पद–विभाग अंग्रेजी व्याकरण के आधार पर किया गया है। कामता प्रसाद गुरु ने हिन्दी के आठा पद–विभाग किए हैं – संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया –विशेषण, सम्बन्ध सूचक, समुच्चय–बोधक, तथा विस्मयादि बोधक। वस्तुतः इन आठ विभागों को तीन विभागों में समाहित किया जाता है।

(i) नाम :– संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण । ये संज्ञा के ही विभिन्न रूप हैं। नाम में ही इनका अन्तर्भाव होता है। पाणिनि ने इनको सुबन्त में रखा है।

(ii) आख्यात :– क्रिया शब्द

(iii) अव्यय :– इसमें क्रिया –विशेषण, जब, तब, कहॉ आदिद्ध सम्बन्ध सूचक, को, ने, से आदिद्ध समुच्चय बोधक, और अथवा किन्तु आदिद्ध विस्मयादि–बोधक, ओह, आह, छिः आदिद्ध ये चारों भेद समाहित होते हैं।

7.3.5 व्याकरणिक कोटियाँ

भाषा में वाक्य ही वह लघुतम इकाई है जो भावों को व्यक्त करने में समर्थ होता है। प्रत्येक वाक्य में पद–विभाग की काटियाँ सम्मिलित रहती हैं। इनके परस्पर सम्बन्ध को बताने के लिए सम्बन्ध तत्वों की आवश्यकता पडती है। सम्बन्धतत्व जिन भावों की अभिव्यक्ति करते हैं वे हैं – लिङ्ग, वचन, पुरुष, काल, वृत्ति, कारक आदि। इन्हें ही व्याकरणिक कोटियाँ कहते हैं। भाषा में अभिव्यंजना – सम्बन्धी सूक्ष्मता और निश्चयात्मकता लाना ही इनके कार्य हैं। इनके लिए ही सम्बन्धतत्वों का प्रयोग किया जाता है।

(क) लिङ्ग

लिङ्ग का अर्थ है – चिह्न, जिससे किसी वस्तु को पहचाना जा

सके। लिङ्ग दो प्रकार के हैं – 1 प्राकृतिक 2 व्याकरणिक । प्राकृतिक लिङ्ग में पुरुष और स्त्री का कुछ अवयव – संस्थानों के द्वारा निर्णय किया जाता है। इनके अभाव में नपुंसक माना जाता है।

व्याकरणिक लिङ्ग प्राकृतिक लिङ्ग का अनुसरण अनिवार्य रूप से नहीं करते। प्रत्येक भाषा में उसके अपवाद मिलते हैं। सामान्यतया तीन लिंङ्ग संस्कृत, जर्मन आदि भाषाओं में प्रचलित है। कोई भी भाषाशास्त्री आज तक इस कार्य में सफल नहीं हो सका है कि वह शब्दों के लिंग निर्णय का कोई उचित आधार बता सके। यदि संस्कृत भाषा का उदाहरण लें तो इसमें पत्नी के लिए तीनों लिंगों के शब्द हैं। जैसे – दार शब्द पुल्लिंग बहुवचन में ही प्रयुक्त होता है। स्त्री, नारी, पत्नी, भार्या आदि स्त्रीलिंग तथा कलत्र नपुंसक लिंग होता है। इसी प्रकार रूसी, फ्रेंच सदृश अन्यान्य भाषाओं में इसके अपवाद उपलब्ध हैं। पाणिनि ने इस विषय में लोक व्यवहार को ही प्रामाणिक माना है –

'तद् शिष्यं सञ्ज्ञाप्रमाणत्वात्'[5]

पतञ्जलि तथा भर्तृहरि ने लिंग का आधार विवक्षा को माना है –

स्थितेषु त्रिषु लिंगेषु विवक्षा–नियमाश्रयः ।

कस्यचिच्छब्द–संस्कारे व्यापारः क्वचिदिष्यते।।[6]

भाषा में लिंग के आधार पर ही व्याकरणिक अन्विति होती है। लिंग का भाव दो प्रकार से व्यक्त किया जाता है।

1. प्रत्यय लगाकर । जैसे – बालकः बालिका।

2. स्वतन्त्रशब्दलगाकर । जैसे – He (ही), She (शी), Washermen (धोबी), Washerwomen (धोबिन)।

संस्कृत में लिंग का प्रभाव संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम और क्रिया पर भी पड़ता है। हिन्दी में विशेषण और सर्वनाम पर लिंग भेद का प्रभाव नहीं पड़ता।

(ख) पुरुष

पुरुष तीन होते हैं – उत्तम, मध्यम तथा अन्य। पुरुष के आधार पर क्रिया के रूपों में परिवर्तन होता है।परन्तु यह बात संसार की सभी भाषाओं में नहीं पाई जाती। एक ओर संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी आदि में यह है तो दूसरी ओर चीनी आदि में नहीं है। पुरुष के आधार पर क्रिया के रूपों में

---

5. अष्टाध्यायी .2.53
6. वाक्यपदीय काण्ड 3.29

परिवर्तन करने के लिए कभी तो कुछ स्वरों, व्यंजनों या अक्षरों के बदलने से काम चल जाता है। जैसे – संस्कृत में प्रथम पुरुष भू +ति, मध्यम पुरुष भू+सि, उत्तम पुरुष भू + मि । अंग्रेजी में कभी तो एक रूप ही कई में काम देता है। अरबी और फारसी भी प्रायः यही तरीके अपनाए जाते हैं।

(ग) वचन

वचन प्रमुख रूप से दो होते हैं – एकवचन और बहुवचन। संस्कृत लिथुआनीयन आदि कुछ भाषाओं में द्विवचन तथा कुछ अफ्रीकी भाषाओं त्रिवचन का प्रयोग भी मिलता है। वचन का ध्यान प्रायः संज्ञा, सर्वनाम, तथा क्रिया में रखा जाता है, परन्तु संस्कृत आदि कुछ प्राचीन भाषाओं में विशेषण में भी इसका ध्यान रखा जाता है।

वचन के भावों को व्यक्त करने के लिए प्रायः एकवचन के रूप में हिन्दी में 'ओ' या 'यों', अंग्रेजी में s/es तथा संस्कृत में औ, जस् आदि प्रत्यय लगाते हैं।

कभी–कभी अपवादस्वरूप समूहवाची स्वतंत्र शब्द भी जोड़े जाते हैं। क्रिया में और भी कई प्रकार की पद्धतियों से वचन के भाव व्यक्त किए जाते हैं।

(घ) कारक

कारक का अर्थ है – करोति इति कारकम् । अर्थात् जो क्रिया का निष्पादक होता है, उसे कारक कहते हैं। संस्कृत व्याकरण के अनुसार छः कारक माने गये हैं – कर्ता, कर्म,करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरणं। सम्बन्ध को कारक नहीं माना जाता, क्योंकि क्रिया की सिद्धि में उसका साक्षात् योग नहीं होता ।

कुछ प्राचीन आचार्यों ने सम्प्रदान और अपादान को भी क्रिया से साक्षात् सम्बद्ध न मानकर कारकों की संख्या केवल चार मानी हैं। कारकों की संख्या विभिन्न भाषाओं में भिन्न–भिन्न हैं। अंग्रेजी में दो तथा लैटिन और जर्मन में पाँच कारक हैं। प्राचीन स्लाविक भाषा में छः, संस्कृत में भी छः, ग्रीक और लिथुआनी में सात, हिन्दी में आठ और जार्जी भाषा में 23 कारक हैं।

(ङ) क्रिया

विभिन्न आधारों को लेकर क्रिया के अनेक भेद किये गये हैं जैसे – कर्म का होना या न होना, क्रिया के फल का भोक्ता कौन है, क्रिया की पूर्णता अपूर्णता, क्रिया की निरन्तरता या उसका अभाव आदि। भारोपीय परिवार की भाषाओं में क्रिया के निम्नलिखित भेद हैं –

(i) सकर्मक–अकर्मक :– जिस क्रिया का कर्म होता है उसे सकर्मक तथा जिस क्रिया का कर्म नहीं होता उसे अकर्मक क्रिया कहते हैं। अर्थात् कर्म का भाव या अभाव ही इसका आधार है। भारोपीय परिवार की विभिन्न भाषाओं में सकर्मक और अकर्मक के भेद का आधार सुनिश्चित नहीं है। विभिन्न भाषाओं में एक ही भाव को किसी भाषा में सकर्मक तो किसी भाषा में अकर्मक क्रियाओं द्वारा व्यक्त किया जाता है।

(ii) आत्मनेपद–परस्मैपद :– संस्कृत में कर्मफल के भोक्ता के आधार पर दो पद माने जाते हैं –

(क) आत्मनेपद अर्थात् जिसमें क्रिया का फल कर्ता को स्वयं मिलता है। जैसे – भोजनं कुरुते।

(ख) परस्मैपद अर्थात् जहाँ फल का भोक्ता कोई दूसरा व्यक्ति हो। जैसे – शिष्यात फलं ददाति ।

जिन धातुओं से दोनों पद होते हैं उन्हें उभयपदी कहते हैं। सस्कृत के परकालीन साहित्य में दोनों पदों का यह भेद लुप्त हो गया और दोनों पद समान रूप से प्रयुक्त होने लगे। जैसे –सः कार्य करोति कुरुते वा।

(iii) वाच्य :– भारोपीय भाषाओं में तीन वाच्य मिलते हैं – कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, भाववाच्य । क्रिया में कर्ता की प्रधानता होने पर कर्तृवाच्य, कर्म की प्रधानता होने पर कर्मवाच्य तथा केवल भाव या क्रिया व्यापार की प्रधानता होने पर भाववाच्य होता है।

भारोपीय परिवार की अधिकांष भाषाओं में कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य की क्रिया की भावना प्रयत्नमात्र है। कर्मवाच्य से प्रायः ऐसी क्रिया का बोध होता है जो समाप्त हो गयी हो। अतः फ्रांसीसी में ऐत्र (Etre, होना) धातु की सहायता के बिना कई क्रियाएँ भूतकाल के अर्थ का बोध नहीं करा सकती हैं। यही बात लैटिन में भी थी।

(च) काल

काल के सामान्यतया तीन भेद माने गये हैं – भूत, वर्तमान और भविष्य। इसका आधार है कार्य की निष्पत्ति के होने का समय क्रिया में विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध तत्त्व जोड़कर ही काल के इन भेदों और उपभेदों की सूक्ष्मताओं को प्रकट करते हैं। विद्वानों का विचार है कि कालों का रूप आज के क्रिया रूपों में जितना स्पष्ट है उतना कभी नहीं था।

7.3.6 पद–परिवर्तन के कारण

(1) अज्ञता :– कुछ अस्पष्टताएँ अज्ञान के कारण होती हैं। अज्ञान के

कारण भी रूप सम्बन्धी अनेक परिवर्तन दिखाई पड़ते है। जैसे – 'उपर्युक्त' के स्थान पर 'उपरोक्त' तदनन्तर या तत्पश्चात् के स्थान पर 'उपरान्त', श्रीयुत के स्थान पर श्रीयुत, महत्ता के स्थान पर परमहानता । ये प्रयोग अज्ञानता के प्रमाण हैं परन्तु फिर भी निरन्तर प्रयोग किये जा रहे हैं। शुद्ध स्रष्टा के स्थान पर 'सृष्टा', शुद्ध 'अनुगृहीत' के स्थान पर अनुग्रह के सादृश्य 'अनुग्रहीत' अशुद्ध प्रयोग अज्ञता के कारण हैं।

(2) **सादृश्य** :– विश्व की समस्त भाषाओं में रूप परिवर्तन में सादृश्य का बहुत महत्त्व रहा है। इस सादृश्य का कारण सरलता और समीकरण की प्रवृत्ति रही है। जैसे – द्वादस के अनुकरण पर एकादश हुआ। त्रीणि से तीन या तीनों शब्द बनेंगे परन्तु द्वौ से दो बन सकता है दोनों नहीं। दोनों शब्द तीनों के सादृश्य पर ही बना है।

(3) **नवीनता** :– साहित्यकार कभी कभी नवीनता के लिए भी नये रूप बना लेते हैं। नवीनता के लिए कुछ नये शब्दों की सृष्टि की जाती है या अप्रचलित शब्दों का नये अर्थ में प्रयोग देखा जाता है। हिन्दी में प्रेयसी का प्रयोग प्रियतमा के अर्थ में नवीनता का द्योतक है। इसी प्रकार मृदुता के लिए मार्दव, पटुता के लिए पाटव, सुन्दरता के लिए सौन्दर्य आदि शब्द प्रयोग में आने लगे हैं। भाषा में उक्त नवीनता कभी–कभी क्लिष्टता और अरुचि का कारण बन जाता है।

(4) **सरलीकरण** :– जिस प्रकार सरलता के लिए ध्वनिपरिवर्तन किया जाता है उसी प्रकार रूपों में भी सरलता के लिए परिवर्तन होते हैं। जैसे– वैदिक संस्कृत में तुमुन् (को, के लिए) के अर्थ में से, असे, अध्यै, ऐ, इष्ये, अम्, तोः, तवे, तवै आदि 18 प्रत्यय हैं किन्तु संस्कृत में केवल तुमुन (तुम्) प्रत्यय का ही प्रयोग शेष रहा । वैदिक व्याकरण में लेट् लकार था, जो संस्कृत में सर्वथा लुप्त हो गया।

(5) **बल** :– किसी शब्द पर बल देने के लिए भी भाषा में रूप–परिवर्तन किया जाता है। 'श्रेष्ठ' शब्द 'तम' अर्थवाला है, परन्तु लोग इसी इतने से संतुष्ट न रहकर बल देने के लिए 'सर्वश्रेष्ठ' और 'श्रेष्ठतम' का भी प्रयोग करते हैं। भोजपुरी में फजूल (व्यर्थ) के अर्थ में अशुद्ध शब्द 'बेफजूल' बेकार अर्थ में चलता है।

(6) **नियमन** :– भाषा में कुछ नियमन होते हैं। जो अधिकांश रूपों पर लागू होते हैं। इसमें विपरीत कुछ अपवाद होते हैं। जो इन बहु प्रचलित नियमों का उल्लंघन करते हैं। स्पष्ट ही नियमित रूपों को स्मरण रखना तथा भाषा बोलते समय उनका प्रयोग करना सरल होता है। इसके विपरीत

कठिनाई से बचने के लिए हर भाषा–भाषी का अन्तर्मन जाने–अनजाने अनियमित रूपों के स्थान पर नियमित रूपों का प्रयोग करना चाहता है।

(7) स्पष्टता :– भाषा का प्रयोग करने वाला व्यक्ति अपनी कोई बात कहने के लिए ही भाषा का प्रयोग करता है। इसीलिए वह चाहता है कि उसकी अभिव्यक्ति अधिक से अधिक स्पष्ट हो। इसीलिए जब भी किसी रूप में अस्पष्टता का अभाव होता है तो नये रूपों का प्रयोग शुरू हो जाता है।

7.4 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ध्वनिविज्ञान की उपयोगिता एवं उसके भेदों का वर्णन कीजिए।
2. ध्वनि परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट कीजिए।
3. ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी नियमों का विवेचन कीजिए।
4. पद–परिवर्तन के कारणों का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

5. संस्कृतवाङ्मय में 'ध्वनि–विज्ञान' का प्राचीन नाम है –

   (क) शिक्षा (ख) व्याकरण (ग) निरुक्त (घ) स्वन

6. ध्वनि–परिवर्तन का बाह्य कारण है –,

   (क) प्रयत्न लाधव (ख) क्षिप्रभाषण (ग) ध्वनियों का परिवेश (घ) बलाघात ।

7. ग्रिम–नियम के अनुसार निम्न जर्मन के 'Three' का उच्च जर्मन में परिवर्तित रूप है।

   (क) Dree (ख) Threi (ग) Thri (घ) Drei

8. निम्नलिखित में कौन प्रातिपदिक का लक्षण नहीं हैं –

   (क) अर्थवान् (ख) अधातु (ग) अनुपसर्ग (घ) अप्रत्यय

उत्तर– 1. (क) 2. (ग) 3. (घ) 4. (ग)

इकाई–08 (क) वाक्यविज्ञान (ख) अर्थविज्ञान

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 वाक्यविज्ञान

8.2.1 वाक्य की परिभाषा

8.2.2 वाक्य रचना

8.2.3 वाक्यों के प्रकार

8.2.4 वाक्य परिवर्तन की दिशाएँ

8.2.5 वाक्यपरिवर्तन के कारण

8.3 अर्थविज्ञान

8.8.1 अर्थप्रतीति

8.8.2 शब्दार्थसम्बन्ध

8.8.3 अर्थपरिवर्तन

8.8.4 अर्थपरिवर्तन के कारण

8.0 उद्देश्य

- वाक्यविज्ञान के विषयों को जान सकेंगे।
- वाक्य की परिभाषा एवं आधारभूत तत्वों को जानेंगे।
- वाक्य रचना एवं उसके प्रकारों को समझेंगे।
- वाक्य–परिवर्तन की दिशाओं एवं कारणों को समझ सकेंगे।
- अर्थप्रतीति और उसके साधनों को समझ सकेंगे।
- शब्दार्थ सम्बन्ध का विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- अर्थपरिवर्तन एवं कारणों का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

8.1 प्रस्तावना

वाक्य–विज्ञान में भाषा में प्रयुक्त विभिन्न पदों के परस्पर सम्बन्ध का विचार किया जाता है। अतएव वाक्य–विज्ञान में निम्नलिखित सभी विषयों का समावेश हो जाता है – वाक्य का स्वरूप, वाक्य की परिभाषा, वाक्य की रचना, वाक्य के अनिवार्य तत्व, वाक्य में पदों का विन्यास, वाक्यों के प्रकार, वाक्य का विभाजन, वाक्य में निकटस्थ अवयव, वाक्य में परिवर्तन, परिवर्तन की दिशाएँ, परिवर्तन के कारण आदि। इस प्रकार वाक्य–विज्ञान में वाक्य से सम्बद्ध सभी तत्त्वों का विवेचन किया जाता है। अर्थ–विज्ञान को लेकर प्रायः विद्वानों का मतभेद रहा है। कुछ विद्वान् इसे भाषा–विज्ञान की एक शाखा तो कुछ इसे दर्शनशास्त्र की एक शाखा मानते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अर्थविज्ञान वर्णन से बहुत अंशों से सम्बद्ध है और उसका अत्यधिक अंश मनोविज्ञान और तर्कशास्त्र की अपेक्षा रखता है, किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं है कि अर्थविज्ञान भाषा की आत्मा है। इस प्रकार अर्थविज्ञान निश्चित रूप स भाषा–विज्ञान का अविभाज्य अंग है।

3.2 वाक्य–विज्ञान

8.2.1 वाक्य की परिभाषा

वाक्य की परिभाषा अत्यन्त विवादास्पद है। भारत के प्राचीन वैयाकरणों, दार्शनिकों और साहित्यकारों ने वाक्य की परिभाषा अलग–अलग दी है –

पतञ्जलि ने महाभाष्य में वाक्य के पांच लक्षण दिये हैं –

(1) एक क्रियापद वाक्य है ।

(2) अव्यय, कारक और विशेषण से युक्त क्रिया–पद वाक्य है।

(3) क्रिया–विशेषणयुक्त क्रिय–पद वाक्य है।

(4) विशेषण–युक्त क्रिया–पद वाक्य है।

(5) क्रियापद–रहित संज्ञा–पद भी वाक्य होता है।

जैसे – तर्पणम् (तर्पण करो), पिण्डीम् (ग्रास खाओ)। मीमांसकों, नैयायिकों और साहित्यशास्त्रियों ने साकांक्ष पद–समूह को 'वाक्य' माना है। आचार्य विश्वनाथ ने आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति से युक्त पद–समूह को वाक्य माना है।

इस प्रकार पतञ्जलि और थ्राक्स के अनुसार 'पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराने वाले शब्द समूह को वाक्य कहते हैं।

इसमें दो वाक्यों पर विशेष बल दिया गया है –(क) 'वाक्य शब्दों का समूह है। (ख) वाक्य पूर्ण–अर्थ की प्रतीति कराता है।

किन्तु भाषाशास्त्री वाक्य की उपर्युक्त दोनों विशेषताओं को पूर्णतया स्वीकार करने को तैयार नहीं है।

वस्तुतः वाक्य की निर्विवाद शास्त्रीय परिभाषा देना सम्भव नहीं है। पतञ्जलि ने वाक्य की सत्ता के साथ ही 'महावाक्य' की सत्ता भी मानी है और वाक्य को अंग माना है–

सा चावश्यं वाक्यसञ्ज्ञावक्तव्या समानवाक्याधिकारश्च।

(महाभाष्य, 2/2/1)

अभिहितान्वयवादी आचार्य कुमारिलभट्ट आदि ने वाक्य के तीन आधारभूत तत्त्व बताए हैं – (1) आकांक्षा, (2) योग्यता, (3) सन्निधि ।

आचार्य विश्वनाथ ने इसी को साहित्यदर्पण में उल्लिखित किया है–

वाक्यं स्याद् येग्यताकांक्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः ।

(साहित्यदर्पण, 2/1)

इनका संक्षिप्त विवरण अपेक्षित है –

1. **आकांक्षा** – वाक्य में प्रयुक्त शब्दों को एक दूसरे की अपेक्षा रहती है। अपेक्षा को 'जिज्ञासा' भी कहते हैं। इस अपेक्षा या जिज्ञासा की पूर्ति होने पर ही वाक्य बनता है। इस प्रकार 'एक शब्द की दूसरे के बिना अन्वय-बोध कराने की असमर्थता शब्दों की पारस्परिक आकांक्षा कही जाती है–

'पदस्य पदान्तरव्यतिरेकप्रयुक्तान्वयाननुभावकत्वमाकांक्षा।

(तर्कसंग्रह)

आकांक्षा के कारण ही वाक्य में पद परस्पर सम्बद्ध होते हैं।

2. योग्यता – शब्दों में प्रसंगानुकूल भाव का बोध कराने की क्षमता को योग्यता कहते है। दूसरे शब्दों में 'पदार्थों के पारस्परिक सम्बन्ध में किसी प्रकार की बाधा का न होना 'योग्यता' कहलाता है।

'अर्थबोधो योग्यता।'

(3) सन्निधि (आसत्ति) –

'पदानामविलम्बेनोच्चारणं सन्निधिः ।'

अर्थात् साकांक्ष पदों का योग्यतानुसार अविलम्ब उच्चारण ही सन्निधि कहलाता है। इसका तात्पर्य है कि वाक्य में प्रयुक्त पदों का क्रमबद्ध उच्चारण होना चाहिए। उनमें समय की समीपता या सान्निध्य अनिवार्य है।

8.2.2 वाक्य–रचना

वाक्य की रचना पदों से होती है। इसमें मुख्यतः चार बातें महत्त्वपूर्ण होती हैं –

(1) पदक्रम या शब्दक्रम – विश्व की अधिकांश भाषाओं में वाक्य में पद–क्रम निश्चित है। इसी क्रम में उस भाषा में वाक्यों का प्रयोग होता है। चीनी आदि स्थानप्रधान भाषाओं में तो यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है, किन्तु अंग्रेजी, हिन्दी आदि वियोगात्मक भाषाओं में भी इसके महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

वाक्य में पद–क्रम की दृष्टि से भाषाएँ दो प्रकार की हैं –

(1) परिवर्तनीय पदक्रम – ये वे भाषाएँ हैं, जिनमें वक्ता की इच्छा के अनुसार पद–क्रम में परिवर्तन किया जा सकता है। ऐसी भाषाएँ हैं – संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, अरबी, फारसी आदि। इनके शब्द में विभक्तियाँ लगी होती हैं अतः स्थान बदलने पर भी अर्थ में अन्तर नहीं पड़ता ।

(2) अपरिवर्तनीय पद–क्रम – ये वे भाषाएँ हैं जिनमें पद–क्रम में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। इनमें पद–क्रम में परिवर्तन से अर्थ में अन्तर हो जाता है,जैसे – चीनी भाषा। चीनी भाषा में पद–क्रम है – कर्ता, क्रिया, कर्म। जैसे – ताङ् = मारना । वाङ् ताङ् चाङ् = वाङ् चाङ् को मारता है।

हिन्दी, अंग्रेजी में भी सामान्यतया पदक्रम अपरिवर्तनीय रहता है।

2. **अन्वय** – अन्वय का अर्थ है व्याकरणिक अनुरूपता। विभिन्न भाषाओं में विशेषण–विशेष्य,कर्ता–क्रिया, कर्म–क्रिया तथा कर्ता–क्रिया–विशेषण आदि विभिन्न व्याकरणिक कोटियों में लिंग, वचन, पुरुष तथा मूल और विकृतरूप आदि की अनुरूपता होती है। यहाँ दो बातें ध्यातव्य हैं –

(क) हर भाषा के अन्वय के नियम अलग–अलग होते हैं।

(ख) अलग–अलग भाषाओं में अलग–अलग चीजों का अन्वय होता है। जैसे – संस्कृत में कर्ता–क्रिया में लिंग का अन्वय नहीं है, किन्तु हिन्दी

में है –

रामः गच्छति – राम जाता है।

सीता गच्छति – सीता जाती है।

3. **लोप** – प्रयोग और व्यवहार के आधार पर वाक्य में संक्षेप के लिए पदों का लोप हो जाता है। ऐसे स्थानों पर क्रिया का लोप रहता है और उसका अध्याहार करके पूर्ण अर्थ का ज्ञान होता है। जैसे – कुतः ? (कहाँ से, कहाँ से आ रहे हो?)।

प्रयागात्

इस प्रकार कर्ता, क्रिया आदि से हीन वाक्यों में यथायोग्य कर्ता, क्रिया आदि का अध्याहार कर लिया जाता है।

4. **आगम** – कभी–कभी आवश्यक न होने पर भी कुछ अतिरिक्त 'शब्दों' का आगम कर लिया जाता है। जैसे – कृपया यहाँ बैठिए,वह वापस लौट आया, कृपया मेरे घर आने की कृपा करें। इस प्रकार के आगम एक प्रकार की पुनरुक्ति होते हैं।

8.2.3 वाक्यों के प्रकार

संसार की सभी भाषाओं पर विचार करने पर वाक्य अनेक प्रकार के दिखाई पड़ते हैं। इनको संक्षेप में निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है।

1. आकृतिमूलक भेद – प्रकृति और प्रत्यय या अर्थतत्त्व और सम्बन्ध तत्त्वों के संयोग के आधार पर वाक्य भी चार प्रकार के मिलते हैं–

(क) अयोगात्मक – इन वाक्यों में प्रकृति–प्रत्यय अलग–अलग रहते हैं। इनमें कारक चिन्ह आदि स्वतंत्र शब्द होते हैं। चीनी भाषा अयोगात्मक भाषा है। इसमें पद–क्रम निश्चित है – कर्ता, क्रिया, कर्म। विशेषण कर्ता के पूर्व आता है। जैसे –

वो ता नी (मैं तुझे मारता हूँ।) (वो–मैं,ता–मारना, नी–तुम)

नी ता वो (तू मुझे मारता है) (नी–तू)

(ख) श्लिष्ट योगात्मक – ऐसे वाक्यों में प्रकृति और प्रत्यय जुड़े हुए होते हैं। भारोपीय परिवार की प्राचीन भाषाएँ संस्कृत, लैटिन, ग्रीक, अवेस्ता आदि इसी प्रकार ही हैं। जैसे – वृक्षात् पत्रम् अपतत् ।

यहाँ वृक्ष + पञ्चमी ए.व., पत्र + प्रथमा एकव., पत् + लङ् प्र.पु.ए.व. है। इसमें प्रकृति और प्रत्यय को सरलता से अलग नहीं किया जा

सकता।

(ग) प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य – ऐसे वाक्य प्रकृति प्रत्यय नीर–क्षीर–न्याय से मिले होते हैं। इनमें पदों को पृथक् करना कठिन होता है। पूरा वाक्य एक शब्द सा हो जाता है। ऐसे उदाहरण दक्षिण अमेरिका की चेरोकी भाषा पेरीनीज पर्वत के पश्चिमी भाग में बोली जाने वाली बास्क भाषा आदि में मिलते हैं।

1. **चेरोकी में** – नाघोलिनिन (हमारे पास नाव लाओ)

2. **वास्क में** – हकारत (मैं तुझे ले जाता हूँ।)

(घ) अश्लिष्ट योगात्मक – ऐसे वाक्यों में प्रकृति–प्रत्यय 'तिल–तुण्डुल' अलग–अलग देखा जा सकता है। तुर्की भाषा में इसके उदाहरण मिलते हैं। जैसे – एल् – इम् – डे – कि (मेरे हाथ में हैं)

(2) रचनामूलक भेद – वाक्य की रचना या गठन के आधार पर वाक्य के तीन भेद होते हैं –

क. सामान्य वाक्य – इसमें एक उद्देश्य होता है और एक विधेय अर्थात् एक संज्ञा और एक क्रिया। जैसे – वह पुस्तक पढ़ता है।

ख. मिश्रित वाक्य – इसमें एक प्रधान उपवाक्य तथा एक या अधिक आश्रित उपवाक्य होते हैं। जैसे – मैं चाहता हूँ कि तुम उनसे कहो कि वे दिल्ली न जायें।

ग. संयुक्त वाक्य – इसमें एक से अधिक प्रधान उपवाक्य होते हैं। इनके आश्रित उपवाक्य एक या अनेक होते हैं अथवा नहीं भी होते हैं । जैसे – जब मैं गुरु के आश्रम पर पहुँचा तो वे स्नान करने नदी पर गये थे।

(3) अर्थमूलक भेद – अर्थ या भाव की दृष्टि से वाक्य के प्रमुख आठ भेद किये जाते हैं–

1. विधानसूचक – राम जाता है।
2. निषेधसूचक – रमेश भोजन नहीं करता है।
3. प्रश्नसूचक – तुम कहाँ गये थे?
4. आज्ञासूचक – घर जाओ।
5. सन्देहसूचक – सोहन सोया होगा।
6. विस्मयसूचक – अरे! तुम आ गये।
7. इच्छासूचक – भगवान् तुम्हें प्रसन्न रखे।
8. संकेतार्थक – यदि तुम यहाँ आते तो महेश से अवश्य मिलते।

सुर आदि के आधार पर अन्य अनेक भेद भी हो सकते हैं।

(4) क्रियामूलक भेद – वाक्य में क्रिया के आधार पर दो भेद होते हैं–

(क) क्रियायुक्त वाक्य – सामान्यतयाय सभी भाषाओं में एक वाक्य में एक क्रिया होती है। वह विधेय रूप में होती है। अधिकांश वाक्य इसी कोटि में आते हैं । जैसे – माया मनुष्यं मुह्यतिं । (माया मनुष्य को मोहित करती है।)

वाच्य के आधार पर क्रियायुक्त वाक्य तीन प्रकार के होते हैं – 1. कर्तृवाच्य, 2. कर्मवाच्य, 3. भाववाच्य।

(ख) क्रियाविहीन वाक्य –प्रचलन के आधार पर कई भाषाओं में क्रियाहीन बाक्यों का भी प्रयोग होता है। वहॉ क्रियापद गुप्त रहता है। समाचारपत्रों के शीर्षकों, लोकोक्तियों, विज्ञापनों तथा काव्य भाषा में क्रियाहीन वाक्य प्रायः दिखाई देते हैं।

8.2.4 वाक्य परिवर्तन की दिशाएँ

भाषा में परिवर्तन के कारण वाक्यों के गठन और प्रयोग में भी परिवर्तन होता है। यदि संस्कृत और हिन्दी की तुलना करें तो ज्ञात होगा कि संस्कृत में पद–क्रम में परिवर्तन किया जा सकता है – पुस्तकं पठ–पठ पुस्तकम् । परन्तु हिन्दी में काव्य–प्रयोगों आदि को छोड़कर सामान्यतया पद–क्रम में परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

वाक्य में परिवर्तन की मुख्य दिशाएँ निम्नलिखित हैं –

1. पदक्रम में परिवर्तन – हिन्दी में नवीनता के लिए पदक्रम में कुछ नये परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। विशेषण का प्रयोग विशेष्य से पूर्व होता है, परन्तु नवीनता के लिए विशेष्य के बाद भी विशेषण का प्रयोग होता है। जैसे – एक रात की दुल्हन / दुल्हन एक रात की। इसी प्रकार – आज घर जाऊँगा। घर जाऊँगा आज। जाऊँगा घर आज।

2. वचन–सम्बन्धी परिवर्तन – भाषाओं के विकास में वाक्य रचना में वचन–सम्बन्धी परिवर्तन प्रायः हो जाते हैं। संस्कृत में द्विवचन भी था, अतः दो के लिए अलग कारकीय रूप होते थे और उसके साथ क्रिया के द्विवचन के रूप प्रयुक्त होते थे, हिन्दी में आते–आते द्विवचन का लोप हो गया तो 'दो' की संख्या 'बहुवचन' कारकीय रूप में लगाकर द्विवचन का भाव व्यक्त किया जाने लगा। किन्तु क्रिया रूप द्विवचन के स्थान पर बहुवचन के रूप प्रयुक्त होने लगे –

द्वौ बालकौ आगतौ स्तः । दो बालक आए हैं।

अब हिन्दी में भी आदर के लिए बहुवचन की क्रिया तथा विशेषण प्रयोग होने लगा है। जैसे – मोहन जी अच्छे विद्वान् हैं।

(3) लिंग सम्बन्धी परिवर्तन – संस्कृत में कर्ता या कर्म के लिंग के अनुसार क्रिया परिवर्तित नहीं होती थी, किन्तु हिन्दी में होती है। पहले हिन्दी में स्त्रीलिंग प्रयोग होता था। जैसे – अब हम जा रही हैं। किन्तु अब प्रायः महिलाएँ भी प्रयोग करने लगी है – हम जा रहे हैं।

(4) पुरूष–सम्बन्धी परिवर्तन – पहले प्रयोग चलता था – ''राम ने कहा कि मैं जाऊँगा।'' अब अंग्रेजी के प्रभाव के कारण सुनने में आने लगा है – 'राम ने कहा कि वह जाएगा।'

(5) लोप – संक्षेप या प्रयत्नलाघव के लिए कहीं–कहीं पर पद या प्रत्यय का लोप कर दिया जाता है। जैसे – 'अहं गच्छामि' के स्थान पर 'गच्छामि' इत्यादि। हिन्दी में – 'वह बीमार न तो उठ सकता है न बैठ सकता है'' को 'वह बीमार उठ–बैठ नहीं सकता' आदि प्रयोग ।

8.2.5 वाक्य–परिवर्तन के कारण

(1) अन्य भाषाओं का प्रभाव – भारत में यवनों के आगमन के साथ अरबी, फारसी आयी और अंग्रेजों के साथ अंग्रेजी। दोनों का प्रभाव हिन्दी–भाषा पर पड़ा है। वाक्यों में 'कि' और 'चूँकि ' का प्रयोग फारसी का प्रभाव है। अंग्रेजी के प्रभाव के कारण हिन्दी में भी बड़े–बड़े वाक्यों की रचना होने लगी है। संस्कृत में किसी अन्य के कथन को 'इति' बाद में लगाकर कहा जाता है। इसके लिए अब हिन्दी में ' ' (इन्वर्टेड कॉमा) का प्रयोग अंग्रेजी की देन है।

स तथास्तु इत्युक्त्वा अन्तर्हितः (वह 'तथास्तु'कहकर अन्तर्धान हो गये) ।

(2) विभक्तियों तथा प्रत्ययों का घिस जाना – विभक्तियों के घिस जाने से अर्थ को समझने में कठिनाई होने लगती है। अतः वाक्य में सहायक शब्द (परसर्ग, सहायक क्रिया) जोड़े जाने लगते हैं, साथ ही वाक्य में पदक्रम निश्चित हो जाता है। यही कारण है कि संस्कृत तथा पुरानी जर्मन की तुलना में हिन्दी तथा अंग्रेजी में शब्द–क्रम निश्चित है।

राम मोहन कहता है।

मोहन राम करता है।

इन वाक्यों में स्थान के कारण 'राम' एक स्थान पर कर्ता है तो दूसरे

स्थान पर कर्म। संस्कृत में कर्त्ता 'रामः' होता है तथा कर्म 'रामं' अत शब्द–क्रम के निश्चित होने की आवश्यकता नहीं थी। 'रामः' वाक्य में कहीं भी आता कर्त्ता होता तथा 'रामं' कहीं भी आता कर्म होता।

(3) बलाघात – बलाघात के कारण वाक्य–गठन में परिवर्तन हो जाता है। 'मैं पराजय जैसी चीज नहीं जानता', के स्थान पर 'पराजय, मैं नहीं जानता'।

(4) स्पष्टता – स्पष्टता के लिए वाक्य–गठन में परिवर्तन होता है इसके लिए कोष्ठ या डैश का प्रयोग होता है। 'अमरत्व (मोक्ष की कामना) मानव जीवन का लक्ष्य होता है।

(5) मनःस्थिति – वक्ता की मानसिक स्थिति के कारण वाक्य–गठन पर प्रभाव पड़ता है। शोक, दुःख, युद्धकाल, विपत्ति, संघर्ष आदि के समय मनःस्थिति क्षुब्ध होती है, अतः ऐसे समय में सरल, स्पष्ट, तीखी और गम्भीर भाषा का प्रयोग होता है। ऐसे समय में अलंकृत पदावली नहीं चलती। अन्य अवसरों पर अलंकृत भाषा का ही महत्त्व है।

(6) नवीनता की प्रवृत्ति – नवीनता की प्रवृत्ति के कारण वाक्य–गठन में परिवर्तन होता है। जैसे – 'मात्र' का प्रयोग। 'पुस्तक का मूल्य दो रुपये मात्र' के स्थान पर 'पुस्तक का मूल्य मात्र दो रुपये'। विशेष्य के बाद विशेषण का प्रयोग – 'दुकान गरीब की' आदि।

(7) अज्ञानता – अज्ञानता के कारण अशुद्ध वाक्य–प्रयोग श्रेष्ठ के स्थान पर 'श्रेष्ठतम', 'महत्ता' को 'महानता', 'विद्वत्ता' को विद्वानता', 'दरअसल' के स्थान पर 'दरअसल में' ।

(8) अनुकरण – अन्य भाषाओं के अनुकरण के कारण वाक्य–रचना में परिवर्तन होता है। अंग्रेजी वाक्य–रचना के अनुकरण पर हिन्दी में भी तदनुरूप रचना इसका ही परिणाम है। 'रमा ने कहा कि मैं कल पढ़ने नहीं जाऊँगी' के स्थान पर 'रमा ने कहा कि वह कल पढ़ने नहीं जाएगी।'

(9) परम्परावाद – संस्कृत में प्राचीन–परम्परा के प्रति अनुराग है और हिन्दी में परम्परावादिता के विरूद्ध संघर्ष हैं। इसके फलस्वरूप वाक्य–रचना में भी अन्तर होता है। संस्कृत में विशेष्य के अनुसार विशेषण में भी लिंग–वचन होते हैं। हिन्दी में विशेषण में अन्तर नहीं किया जाता है। हिन्दी में वर–वधू आदि दोनों को आयुष्मान् हो, सम्बोधन में भी प्रिया, प्रेयसी, प्रियतमा आदि, विद्वान् शिष्य एवं शिष्याएँ आदि। संस्कृत के विद्वान् वर को आयुष्मान् हो, वधू को आयुष्मती हो, कहेंगे। वे पूज्य पिताजी, पूजनीय माताजी लिखेंगे।

इसी प्रकार आदरार्थ में बहुवचन का प्रयोग वाक्यों में मिलता है। 'राम वन गये'। 'उनका राज्याभिषेक हुआ', 'गुरुजी आ गये।'

8.3 अर्थ–विज्ञान

अर्थ–विज्ञान का एक मूलभूत प्रश्न है कि अर्थ क्या है? वाक्य–पदीयकार भर्तृहरि के अनुसार –

यस्मात्तूच्चरिते शब्दे यदा योऽर्थः प्रतीयते ।

तमाहुरर्थं तस्यैव नान्यदर्थस्य लक्षणम् ।। (वाक्य., 2/328)

इससे स्पष्ट है कि अर्थ का सामान्य लक्षण 'प्रतीति' है। प्रत्येक व्यक्ति शब्द को सुनकर कुछ अर्थ समझता है। उसकी यह व्यक्तिगत अनुभूति 'प्रतीति' ही उसका अर्थ होता है।

अतः कहा जा सकता है कि "किसी भी भाषिक इकाई (वाक्य, वाक्यांश, रूप, शब्द, मुहावरा) आदि को किसी भी इन्द्रिय से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती है, वही 'अर्थ' है।

8.3.1 अर्थप्रतीति

भाषा का उद्गम और अर्थज्ञानरूपी परिणति दोनों भाषा के मानसिक पक्ष हैं। भाषा वक्ता से लेकर श्रोता तक, आदि से अन्त तक, मानसिक पक्ष में अनुस्यूत है। अर्थ का ज्ञान प्रत्यय या प्रतीति के रूप में होता है। इस प्रतीति या ज्ञान के दो साधन हैं – (1) आत्म प्रत्यक्ष, (2) पर–प्रत्यक्ष।

(1) आत्म–प्रत्यक्ष – इसका अर्थ है – स्वयं किसी वस्तु आदि को अपनी आँखों आदि से देखना या अनुभव करना। पानी, गर्मी, धूप, चीनी भी मिठास आदि अर्थों की प्रतीति इसी प्रकार होती है।

(2) पर–प्रत्यक्ष – अनेक क्षेत्र ऐसे भी होते हैं जहॉ हमारी पहुँच नहीं होती उसी क्षेत्र से सम्बद्ध शब्दादि के अर्थ की प्रतीति के लिए हमें दूसरों के अनुभव या ज्ञान पर निर्भर करना पड़ता है। उदाहरण के लिए 'विष' शब्द के अर्थ की प्रतीति का आधार आत्म–प्रत्यक्ष न होकर परानुभव ही है। पर–प्रत्यक्ष के आधार पर ही हम भूगोल में सभी देशों, नगरों, नदियों, समुद्रों दर्शनीय–स्थलों का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

8.3.2 शब्दार्थ–सम्बन्ध

भाषा यादृच्छिक ध्वनि–प्रतीकों की व्यवस्था है। इसका अर्थ यह है कि भाषा के शब्द प्रतीक हैं। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो शब्द और अर्थ

का कोई स्वाभाविक एवं सहज सम्बन्ध नहीं है। समाज ने यह सम्बन्ध मान लिया है या यों कहें कि समाज ने विभिन्न शब्दों को विभिन्न अर्थों में प्रतीक के रूप में स्वीकार कर लिया है। शब्द विशिष्ट अर्थों के प्रतीक या संकेत हैं, इसीलिए उन शब्दों के प्रयोग से श्रोता उन्हीं अर्थों को ग्रहण करता है। भारतीय परम्परा में इसी को दृष्टि में रखते हुए शब्द (ध्वनि) के साथ किसी वस्तु के सम्बन्ध–स्थापन को 'संकेत–ग्रह' कहा गया है।

भारतीय परम्परा में संकेत ग्रह के आठ साधन माने गये हैं –

"शक्तिग्रहं व्याकरणोपमान–कोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।

वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सानिध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः।।"

(1) व्याकरण – व्याकरण शब्दों के अर्थज्ञान में अत्यन्त सहायक है।उससे ही प्रकृति–प्रत्यय, शब्दरूप, समास, कृत्, तद्धित तथा स्त्रीप्रत्ययों आदि का बोध होता है।

(2) उपमान – किसी वस्तु के समान वस्तु का अर्थबोध उस वस्तु को उममान बनाकर कराया जा सकता है। जैसे – गौरिव गवयः (गाय के सदृश नीलगाय होती है) इस उपमान से गवय (नीलगाय) का अर्थ ज्ञात होता है।

(3) कोश – कोश ज्ञात शब्दों के आधार पर अज्ञात शब्द का अर्थबोध कराते हैं।

(4) आप्तवाक्य – यथार्थवक्ता को 'आप्त' कहते हैं। वेद, शास्त्र, गुरु, माता–पिता, आदि आप्त माने जाते हैं। जैसे – ईश्वर, जीव, पाप–पुण्य, मोक्ष आदि का ज्ञान वेद आदि से ही होता है।

(5) व्यवहार – व्यवहार अर्थबोध का सबसे प्रमुख साधन है। समाज में तरह–तरह के व्यवहार से भाषा के अनेक शब्दों के अर्थों का बोध होता है।

(6) वाक्यशेष (प्रकरण)– प्रकरण या प्रसंग नानार्थक शब्दों के अर्थनिर्णय में सर्वोत्तम सहायक है। 'रस' और 'ध्वनि' के अनेक अर्थ होते हैं। प्रसंग के अनुसार ही इनके अपेक्षित अर्थ का निर्णय होता है। जैसे – 'रसो वै सः' अर्थ 'आनन्दस्वरूप परमात्मा' लिया जाता है।

(7) विवृत्ति– इसे व्याख्या भी कहते हैं। विवरण या व्याख्या से अनेक शब्दों का अर्थ स्पष्ट होता है। विशेषरूप से पारिभाषिक, तकनीकी या दार्शनिक आदि शब्दों को बिना व्याख्या के नहीं समझा जा सकता है। जैसे – तन्त्र, विधान, विधि, शासन–पद्धति, अर्थशास्त्र आदि।

(8) प्रसिद्ध (ज्ञात) पद का सान्निध्य –ज्ञात शब्दों के सान्निध्य से भी कभी कभी अज्ञात शब्द का अर्थबोध हो जाता है। जैसे – 'सुधा' के दो अर्थ हैं – अमृत और चूना। 'सुधा–सिक्त भवन' में भवन के सान्निध्य से 'चूना' अर्थ लिया जाएगा।

8.3.3 अर्थ–परिवर्तन

भाषा परिवर्तनशील है। जिस प्रकार ध्वनियों में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार प्रत्येक भाषा के शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन होता है। इस 'अर्थ–परिवर्तन' को विकास सिद्धान्त की दृष्टि से 'अर्थ–विकास' भी कहा जाता है। 'अर्थ–परिवर्तन' किन–किन दिशाओं में होता है' अथवा 'उसके कितने प्रकार होते हैं' इस विषय पर सबसे पहले फ्रांसीसी भाषाविज्ञानवेत्ता ब्रील ने विचार किया था। उन्होंने अर्थ परिवर्तन की तीन दिशाएँ निश्चित की–

(1) अर्थ–विस्तार – अर्थ–विस्तार का अर्थ है अर्थ का सीमित क्षेत्र से निकलकर विस्तार पा जाना। कुछ शब्द मूल रूप में किसी विशेष या संकुचित अर्थ में प्रयुक्त होते थे। बाद में इनके अर्थ में विस्तार हो गया।

अर्थ–विस्तार को समझने के लिए कुछ उदाहरण लिए जा सकते हैं। जैसे – 'कुशल' का अर्थ है 'कुश' लाने में दक्ष। किन्तु अब यह शब्द 'दक्ष' का पर्याय हो गया है।

'प्रवीण' का अर्थ वीणावादन में श्रेष्ठ के लिए होता था, किन्तु अब इसका प्रयोग किसी भी कार्य में निपुणता के लिए होता है।

'तैल' का तात्पर्य तिल के तेल से था, किन्तु यह विस्तृत होकर सरसों का तेल, मूँगफली, बादाम आदि के तेल के लिए भी प्रयुक्त होता है। मिट्टी का तेल भी होता है और तो और 'आदमी' का 'तेल' भी निकाला जाता है।

इसी प्रकार,गोष्ठ, महाराज, गवेषणा, अधर आदि शब्दों का अर्थ–विस्तार हो गया है।

(2) अर्थ–संकोच – अर्थ–विस्तार के विपरीत कुछ शब्दों के अर्थों में संकोच हुआ है। इसमें अर्थ की परिधि पहले विस्तृत रहती है, फिर संकुचित हो जाती है। जैसे –

'वारिज, तोयज, सरसिज, सरोज, पंकज इत्यादि' केवल 'कमल' के अर्थ में संकुचित हो गये हैं।

इसी प्रकार बादल तथा समुद्र के पर्यायवाची जो सभी जलधारकों के वाचक थे अब केवल 'बादल' या समुद्र अर्थ में संकुलित हो गये हैं।

'सर्प' का अर्थ रेंगने वाला है, किन्तु यह केवल 'सांप' के अर्थ में रूढ़ हो गया है।

'मृग' का अर्थ पशुमात्र था, परन्तु अब इसका अर्थ केवल 'हिरन' है।

इसी प्रकार सभ्य, तर्पण, पर्वत, उदासीन, घृणा आदि भी अर्थ–संकुचित हो गये हैं।

(3) अर्थादेश – भाव साहचर्य के कारण कभी–कभी प्रधान अर्थ के साथ एक गौण अर्थ भी चलने लगता है। कालान्तर में ऐसा होता है कि प्रधान अर्थ का धीरे धीरे लोप हो जाता है और गौण अर्थ में ही शब्द प्रयुक्त होने लगता है। इस प्रकार एक अर्थ के लोप होने तथा नवीन अर्थ के आ जाने को 'अर्थादेश' कहते हैं । जैसे –

'गँवार' शब्द इसका सटीक उदाहरण है। पालि भाषा में प्राप्त शब्द 'ग्रामदोरको' से अनुमान लगता है कि संस्कृत में यह शब्द ग्रामदारकः रहा होगा, जिसका अर्थ था गाँव का रहने वाला, परन्तु अब यह 'असभ्य' और 'मूर्ख' अर्थ में प्रयुक्त होता है।

'वर' का मूल अर्थ श्रेष्ठ पर अब केवल 'दूल्हा' ।

'मौन' का अर्थ मुनि कर्म किन्तु अब केवल 'चुप रहना'।

'देवानां प्रिय' – देवताओं का प्रिय, सम्प्रति 'मूर्ख'।

'पाखण्ड' – अशोक के समय का एक सम्प्रदाय, इस समय इसका अर्थ है 'ढोंग'। 'आकाशवाणी' अर्थात् देवताओं की वाणी, परन्तु अब 'आल इण्डिया रेडियो'। इसी प्रकार अन्यान्य उदाहरण भी देखे जा सकते हैं।

अर्थादेश के मूलतः दो भेद किये जाते हैं –

(1) अर्थोत्कर्ष – अर्थादेश द्वारा अर्थ–परिवर्तन में कुछ अर्थों में उत्कर्ष आया कुछ में अपकर्ष। अर्थ का बदलते–बदलते सामाजिक दृष्टि से पहले से उन्नत हो जाना ही अर्थोत्कर्ष कहलाता है। जैसे –

शब्द		**मूल अर्थ**	**परिवर्तित अर्थ**
मुग्ध	–	मूर्ख	मोहित होना
साहस	–	चोरी / डाका डालना	उत्साह
कर्पट (कपड़ा)	–	फटा / चीथड़ा कपड़ा	अच्छा वस्त्र
फिरंगी	–	पुर्तगाली डाकू	अंग्रेज
सभ्य	–	सभा में बैठने योग्य	सुसंस्कृत

(2) अर्थापकर्ष – अर्थ का उन्नत से अवनत हो जाना। जैसे–

शब्द	मूलार्थ	परिवर्तित अर्थ
असुर	देवता (वेद में)	राक्षस
जुगुप्सा	छिपाने की इच्छा	घृणा
शौच	पवित्रता	मल–त्याग
देवानां प्रिय	देवों का प्रिय	मूर्ख
महाराज	राजा	रसोइया
लिंग	चिन्ह	इन्द्रिय विशेष
हरिजन	भगवद्भक्त	अछूत

इसी प्रकार अन्यान्य उदाहरण भी प्राप्त किये जा सकते हैं।

8.3.4 अर्थ–परिवर्तन के कारण

(1) **बलापसरण** – किसी शब्द के उच्चारण में यदि केवल एक ध्वनि पर बल देने लगें तो धीरे–धीरे शेष ध्वनियाँ कमजोर पड़कर लुप्त हो जाती हैं। इसके मुख्य अर्थ में अन्तर हो जाता है। उपाध्याय–ओझा–झा में बल अपसारण से उपाध्याय का झा रह गया और गुरु अर्थ के स्थान पर कान–झाड़ने वाला या कान–फूकने वाला अर्थ रह गया। गोस्वामी से गोसाई में केवल साधु या मान्य अर्थ रह गया । पुंगव (बैल, फिर श्रेष्ठ अर्थ) – पोंगा (गँवार पण्डित)। इसी प्रकार युयुत्सु (लड़ने का इच्छुक) से जुजुत्सु (जापानी कुश्ती, वज्रवट (घोर ब्रह्मचारी)–बजरबट्ट (महामूर्ख) आदि।

(2) अज्ञान – गलत अर्थ में प्रयोग करने से भी शब्द का अर्थ बदल जाता है। संस्कृत के अनेक शब्दों का प्रयोग आधुनिक भाषाओं में इसी कारण बदल गया है। संस्कृत का अच्छा ज्ञान न रखने वाले साहित्यकारों ने इस क्षेत्र में बहुत योग दिया है। संस्कृत का धन्यवाद (प्रशंसा) हिन्दी में शुक्रिया हो गया है। लोकभाषाओं में गलती के कारण अर्थ–परिवर्तन के अच्छे उदाहरण है। जैसे अवधी में 'बूढ़ा' के लिए 'बुढ़ापा', भोजपुरी में 'कलंक' के लिए 'अकलंकः' 'फजूल' के लिए 'बेफजूल' कई बोलियों में 'खालिस' के लिए 'निखालिस' गुजराती में 'जरुरत' के लिए जरूर। अंग्रेजी में इससे मिलती–जुलती प्रवृत्ति है (देखिए परिशिष्ट)। मुहावरे एवं लोकोक्तियों के अर्थों के परिवर्तन में भी अज्ञान या गलती का महत्वपूर्ण स्थान है। सादृश्य के अन्तर्गत भी कुछ इस प्रकार की गलतियाँ ली गयी हैं।

(3) सादृश्य – सादृश्य के कारण शब्दों के अर्थों में अन्तर हो जाता

है। 'प्रश्रय' (प्रेम, 'प्रणयप्रश्रयौ समौ अमर0) का 'आश्रय' अर्थ में प्रयोग, अनुक्रोश (दया) का 'आक्रोश' (क्रोध, क्षोभ) अर्थ में प्रयोग, उत्क्रान्ति (मृत्यु उछाल) का 'क्रान्ति' अर्थ में प्रयोग मिलता है। इसका कारण सादृश्य है।

(4) भावावेश – भावावेश में बहुत से शब्दों के विषय में हम असावधान हो जाते हैं। और बहुधा बढ़ा–चढ़ाकर या विचित्र अर्थ में प्रयोग करते हैं। कभी–कभी तो इसके उदाहरण भी व्यंग्य से मिलते–जुलते और यथार्थतः एक प्रकार के व्यंग्य ही दिखाई पड़ते हैं। जब पिता प्रेम के आवेश में अपने लड़के को 'अरे तू तो बड़ा पाजी है।' कहता है तो पाजी का अर्थ वहॉ बुरा न होकर केवल प्यार होता है। इसी प्रकार लोग प्रेम में शैतान, नालायक, बेहूदा, तथा गदहा आदि का प्रयोग करते हैं। कभी–कभी तो यह कहना (जैसे कहो बेटा!) इतनी बड़ी गाली होती है कि कथन की पृष्ठभूमि में नैकट्य न हो तो खून की नदी बह जाय।

(5) कालभेद – कालभेद से शब्दों के अर्थों में अन्तर हो जाता है। विकासक्रम के अनुसार सभी भाषाओं में शब्दों के अर्थ में अन्तर होता है। वैदिक संस्कृत–संस्कृत–प्राकृत– हिन्दी के प्राचीन और नवीन रूपों की तुलना से यह स्पष्ट होता है। वेद में 'सह' धातु 'जीतना' अर्थ में भी, अब सहन करना अर्थ में रह गया है। 'मृग' सिंह वाचक था, अब हिरण–वाचक है। गवेषणा (गाय की खोज) का शोधकार्य का खोज अर्थ रह गया है। श्रेष्ठ – सेठ, साधु–साहु, महाराज – महाराज (रसोइया), महत्तर – मेहतर (भंगी), महाजन (बनिया) आदि कालभेद से अर्थभेद के उदाहरण हैं।

(6) पुनरावृत्ति – कभी कभी शब्दों का दुहरा प्रयोग चल पड़ता है और इसके कारण भी उनके आधे भाग के अर्थ में परिवर्तन हो जाते हैं। अब 'विन्ध्याचल पर्वत' का प्रयोग चल पड़ा है। ऐसे प्रयोग करने वाले विन्ध्याचल का अर्थ विन्ध्य पर्वत न लेकर उसे पर्वत का नाममात्र समझते हैं। मलयगिरि के विषय में भी यही बात है । द्रविड़ भाषा में मलय शब्द ही पहाड़ का अर्थ रखता है, पर हम लोगों ने 'मलय' को नाम समझ उसमें 'गिरि' जोड़ लिया है। कुछ लोग तो मलयगिरि पर्वत भी कहते हैं। इसी प्रकार कुछ लोग हिमालय पर्वत या फूलों का गुलदस्ता भी कहते हैं।

(7) साहचर्य –साहचर्य के कारण शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। सिन्धु नदी के साहचर्य से 'सिन्धु' (प्रान्त का नाम) स् को फारसी में ह् होने से सिन्धु का ही 'हिन्दु' बना है। यह जातिवाचक हो गया है। साहचर्य के कारण ही अंग, बंग, कलिंग, महाराष्ट्र, कम्बोज, पञ्चाल, द्रविड़, आदि शब्द देश के साथ ही देशज व्यक्ति के भी बोधक हैं। कहाँ है, मेरा गरीबखाना यही है', श्रीमान् किन–किन अक्षरों को सुशोभित करते हैं (क्या नाम है?)',

'आप किस देश की श्री क्षीण करके आ रहे हैं' (कहाँ से आ रहे हैं?) आदि अनेकानेक अन्य प्रयोगों में भी काले अक्षरों में अंकित अंशों के अर्थ परिवर्तित हुए हैं।

(11) अन्य भाषा का प्रभाव – सांस्कृतिक आदान–प्रदान के कारण अन्य भाषाओं का प्रभाव दूसरी भाषाओं पर पड़ता है। बंगला, पंजाबी, मराठी आदि का प्रभाव संस्कृत एवं हिन्दी की शब्दावली पर पड़ा है। अब कतिपय शब्द प्राचीन अर्थों में प्रयुक्त न होकर नये अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। बंगला के प्रभाव से हिन्दी में उपन्यास शब्द चला 'प्रबन्ध','निबन्ध' शब्द लेख अर्थ में थे । अब थीसिस के अर्थ में भी चल पड़े हैं। समारोह (चढ़ना) कर 'शुभ आयोजन' अर्थ हो गया। समाचार (शुभ आचरण) का वार्ता अर्थ हो गया। पंजाबी और हरियाणी के प्रभाव से हिन्दी में 'काटना' के अर्थ में 'लड़ना' का भी प्रयोग हुआ है । 'मच्छर काट रहे हैं' को मच्छर लड़ रहे है।' भोजपुरी में 'मच्छर लग रहे हैं', कहते हैं।

(12) व्यक्तिगत योग्यता – व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार भी शब्दों के अर्थ में परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक व्यक्ति शब्दों को एक ही सन्दर्भ में नहीं समझता। चोर ने 'अच्छा' शब्द चोरी के प्रसंग में यदि सीखा हो तो उसके मस्तिष्क में अच्छा का अर्थ वंही नहीं होगा जो एक साधु के मस्तिष्क में। सच तो यह है कि प्रतिदिन के काम में आने वाली स्थूल वस्तुओं के नामो को छोड़कर किसी भी शब्द का अर्थ दो मस्तिष्क में बिल्कुल एक–सा नहीं रहता। एक सुयोग्य दार्शनिक के लिए 'ब्रह्म' शब्द कुछ और है, एक साधारण पढ़े लिखे के लिए और है और एक देहाती के लिए तो रुष्ठ होकर आत्महत्या करने वाले ब्रह्मण की समाधि या चउरमात्र ही ब्रह्म है।

(13) समाज, उपसर्ग, लिंगभेद – समास–युक्त और असमस्त शब्दों के अर्थों में अन्तर होता है– कृष्णसर्पः (सर्प–विशेष)– काला साँप (कोई भी साँप), राजपुरुषः (राजा का कोई भी आदमी)। इसी प्रकार महात्मा–महान् आत्मा, महापुरुष– महान् पुरुष,नीलकमल (कमल का भेद) –नीला कमल में अन्तर है। समास में शब्दों को आगे–पीछे करने से अर्थ बदल जाता है। जैसे –

पति–गृह (ससुराल) – गृहपति (गृहस्वामी), पण्डितराज (पण्डितों में श्रेष्ठ), राजपण्डित (राजा का पण्डित), कविराज (वैद्य), राजकवि (राजा का कवि) इसी प्रकार राजवैद्य –वैद्यराज, धनपति – पतिधन, ग्रामपति–पतिग्राम आदि।

संस्कृत में उपसर्ग लगाने से शब्दों के अर्थों में महान् अन्तर हो जाता है। हार, आहार, विहार, प्रहार, उपहार, संहार, योग, वियोग, संयोग, प्रयोग–

अनुयोग, कार–आकार–विकार–प्रकार–संस्कार, धान–परिधान– विधान–निधान–अनुसन्धान, ज्ञान–विज्ञान–प्रज्ञान, दान–आदान–प्रदान–अनुदान आदि।

लिंग भेद से अर्थभेद हो जाता है। जैसे – काला–काली (दुर्गा), शिव–शिवा (गीदड़ी), कृष्ण–कृष्णा (द्रोपदी),शैल–शैला (पार्वती), चण्ड–चण्डी (देवी), दक्षिण–दक्षिणा (दान) आदि।

इकाई–09 प्रमुख भाषाशास्त्रियों का परिचय :– यास्क, पाणिनि,पतञ्जलि एवं भर्तृहरि

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 प्रमुख भाषाशास्त्रियों का परिचय – यास्क

9.2.1 निरुक्त

9.2.2 निरुक्त का विषय

9.2.3 निरुक्त का भाषाशास्त्रीय महत्त्व

9.3 पाणिनि

9.3.1 जीवनवृत्त

9.3.2 पाणिनि का समय

9.3.3 रचनाएँ

9.3.4 अष्टाध्यायी

9.4 पतञ्जलि

9.9.1 जीवनवृत्त

9.9.2 महाभाष्य

9.5 भर्तृहरि

9.5.1 महाभाष्यदीपिका

9.5.2 वाक्यपदीय

9.5.3 भाषाशास्त्र को योगदान

9.6 सम्बन्धित प्रश्न

4.0 उद्देश्य

- यास्क का भाषाशास्त्रीय महत्त्व जान सकेंगे।
- यास्क की रचनाओं से परिचित हो सकेंगे।

- पाणिनि का भाषाविज्ञान में योगदान जानेंगे ।
- पाणिनि के जीवनवृत्त, समय तथा रचनाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- पतञ्जलि के भाषाशास्त्रीय योगदान को जानेंगे ।
- भर्तृहरि के भाषाविज्ञान में योगदान को समझ सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

अनेक शास्त्रों और विज्ञानों की भॉति भाषा–सम्बन्धी अध्ययन भी अपने देश में अत्यन्त प्राचीन काल से होता आया है। भारत की इस क्षेत्र में गति अप्रतिम रही है, इस बात को कई चोटी के भाषाशास्त्रियों ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। इतना ही नहीं आधुनिक भाषा विज्ञान पाणिनि के ही प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रभाव के प्रकाश में विकसित हुआ है। भारत का प्राचीनतम साहित्य वैदिक साहित्य है। भाषा के सम्बन्ध में चिन्तन और अध्ययन के प्रारम्भिक बीज इसी में मिलने लगते हैं। प्राचीन भारतीय वैयाकरणों ने भाषाशास्त्र के विषय में भी व्यापक चिन्तन किया है।

9.2 यास्क

वेद के प्रतिपादक सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ 'निघन्टु' और 'निरुक्त' हैं। निघण्टु सम्प्रति उपलब्ध न होने के कारण अपने विषय का 'निरुक्त' ही एक मात्र ग्रन्थ बचा है जिसे वेद के समय भाष्यग्रन्थों में आगे रखा जा सकता है।

'निरुक्त' के रचयिता का नाम यास्क था। यास्क के समय के विषय में विद्वानों में मतभेद है। यास्क की प्राचीनता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं होता। 'अपार्ण' आदि कुछ शब्दों के आधार पर कुछ विद्वान् इन्हें पाणिनि का परवर्ती मानते थे, परन्तु अब यह मत अशुद्ध सिद्ध हो चुका है। संस्कृत भाषा का जो विकास यास्क के निरुक्त में मिलता है। वह पाणिनीय अष्टाध्यायी में व्याख्यात रूप से प्राचीनतर है। अतः स्पष्ट है कि यास्क पाणिनि से प्राचीन है। इनका समय पाणिनि से कम से कम 100 वर्ष पूर्व होना चाहिए।

महाभारत के शान्ति पर्व में (अ. 342,62,63) यास्क के निरुक्तकार होने का स्पष्ट निर्देश है –

यास्को मामृषिरव्यग्रो नैकयज्ञेषु गीतवान्।
शिपिविष्ट इति ह्यस्माद् गुह्यनामधरो ह्ययम् ।।

स्तुत्वा मां शिपिविष्टेति यास्क ऋषिरुदारधीः ।

यत्प्रसादादधो नष्टं निरूक्तमभिजग्मिवान् ।।

इस उल्लेख के आधार पर भी हम यास्क को विक्रम से सात–आठ सौ वर्ष पूर्व मानने को बाध्य होते हैं।

8.2.1 निरुक्त

यास्क के इस ग्रन्थ की महत्ता बहुत ही अधिक है। ग्रन्थ के आरम्भ में यास्क ने निरुक्त के सिद्धान्त का वैज्ञानिक प्रदर्शन किया है। इनके समय में वेदार्थ के अनुशीलन के लिए अनेक पक्ष थे,जिनका नाम इस प्रकार दिया गया है –

1. अधिदैवत 2. अध्यात्म 3. आख्यान समय 4. ऐतिहासिका

5. नैदाना 6. नैरूक्ता 7. परिव्राजका 8. याज्ञिकाः।

इस मत निर्देश से वेदार्थानुशीलन के इतिहास पर विशेष प्रकाश पड़ता है। यास्क का प्रभाव अवान्तरकालीन वेदभाष्यकारों पर बहुत ही पड़ा है।

सायण ने इसी पद्धति का अनुसरण कर वेदभाष्यों की रचना में कृतकार्यता प्राप्त की। यास्क की प्रक्रिया आधुनिक भाषावेत्ताओं को भी प्रधानतः मान्य है। निरुक्त का एकमात्र प्रतिनिधि होने के कारण यास्क के ग्रन्थ का महत्त्व सर्वातिशायी है।

8.2.2 निरुक्त का विषय

निरुक्त मे तीन काण्ड हैं – नैधण्टुक, नैगम और दैवतं परिशिष्ट के दो अध्यायों को मिलाकर 'निरुक्त' की अध्याय संख्या 14 बैठती है। सायणाचार्य ने परिशिष्ट के दो अध्यायों को छोड़कर 12 अध्यायों के कर्ता यास्क को माना है। 'निरुक्त' में में जिन पाँच बातों का विचार किया गया है। उनका संकेत ऊपर के श्लोक में किया गया है। इस दृष्टि से निरुक्त एक ओर तो कठिन वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति–बोधक ग्रन्थ होने के कारण 'निघण्टु' के विषय को भी अपने में समान बना लेता है और दूसरी ओर 'तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कात्स्नर्यम्' पद–मीमांसक ग्रन्थ होने के कारण व्याकरणशास्त्र का सर्वस्व भी कहा गया है। यास्क ने शब्दों को धातुज मानकर उनकी निरूक्ति की है। यह 'निरुक्त' के प्रतिपाद्य विषय की असाधारण बात है।

'निरुक्त' यद्यपि वैदिक शब्दों का व्याख्या–ग्रन्थ है तथापि उसमें

व्याकरण, भाषा विज्ञान, साहित्य, समाजशास्त्र और इतिहास आदि विषयों की प्राचीनतम जानकारी प्राप्त करने के लिए पर्याप्त सामग्री विद्यमान है।

वेद को निरूक्तकार ने ब्रह्म की संज्ञा दी है और उसको इतिहास, ऋचाओं एवं गाथाओं का समुच्चय कहा है।

तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रऋङ् मिश्रं गाथामिश्रं च भवति।'

9.2.3 निरुक्त का भाषाशास्त्रीय महत्त्व :–

1. यह व्युत्पत्ति विज्ञान का आदि ग्रन्थ है। संसार में इससे प्राचीन व्युत्पत्ति–विज्ञान का कोई ग्रन्थ नहीं मिलता है। इसमें 1298 शब्दों की व्युत्पत्तियाँ दी गई हैं। डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा के अनुसार इनमें 849 प्राचीन ढंग की हैं 224 वैज्ञानिक और 225 अस्पष्ट ।

2. शब्दों के नामकरण पर बहुत सुन्दर प्रकाश डाला गया है। इसमें यौगिक और रूढ़ शब्दों का विवेचन शास्त्रीय ढंग से किया गया है।

3. सर्वप्रथम पद–विभाजन प्रस्तुत हैं। पद के 4 प्रकार बताए गये हैं– नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात।

   'चत्वारि पदजातानि नामनख्याते चोपसर्गनिपाताश्च।

   (निरुक्त 1.1)

4. यह अर्थ–विज्ञान का आदि स्रोत है। शब्दों के निर्वचन आदि में अर्थ के महत्त्व पर सर्वप्रथम यास्क ने बल दिया है।

   'अर्थनित्यः परीक्षेत' 2.3

5. ध्वनि–विज्ञान की विविध विशेषताओं –वर्ण–विकार, वर्ण–लोप, वर्ण–विपर्यय, वर्णागम, आदि लोप,अन्तलोप, उपधालोप, द्विवर्णलोप आदि का सर्वप्रथम निरुक्त में वर्णन हुआ है। (निरुक्त 2.1)

6. संज्ञा–शब्दों को धातुज माना है। इसका अर्थ है कि भाषा की उत्पत्ति भी धातुओं से मानी गई है। धातु या क्रियाओं में जब क्रिया या भाव की प्रधानता होती है, तब उसे क्रिया–वाचक शब्द कहते हैं। धातु में जब सत्त्व या द्रव्य की प्रधानता होती है तो उसे संज्ञा–शब्द गच्छति आदि। यास्क और प्राचीन निरुक्तकार सभी–शब्दों को धातुज मानते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि निरुक्त व्युत्पतिशास्त्र भाषा–विज्ञान और अर्थ–विज्ञान का प्रचीनतम प्रामाणिक ग्रन्थ है।

9.3 पाणिनि

पाणिनि को यदि विश्व का सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण माना जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। भाषा–शास्त्र के इतिहास में इनका नाम मूर्धन्य है। भारतीय एवं पाश्चात्य सभी भाषाशास्त्री इस विषय में एकमत हैं कि पाणिनि ने ही सर्वप्रथम भाषाशास्त्र की सर्वाङ्गीण व्याख्या की है। उन्होंने संस्कृत भाषा का जितना सूक्ष्म विवेचन किया है उतना विश्व की किसी भाषा का व्यापक अध्ययन नहीं हुआ है। पाणिनि का व्याकरण पाश्चात्त्य भाषाशास्त्रियों ने पाणिनि के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की है।

9.3.1 जीवनवृत्त

पाणिनि का जन्म गान्धार देश के शालातुर नामक स्थान पर हुआ था। इनकी माता का नाम दाक्षी था। कैयट के अनुसार पाणिनि के पिता का नाम 'पणिन्' था। पाणिनि के अन्य नाम 'आहिक' 'शालंकि' 'दाक्षी पुत्र' तथा शालातुरीय आदि मिलते हैं। पतञ्जलि ने एक कारिका में पाणिनि को दाक्षी पुत्र (दाक्षी पुत्रस्य पाणिनेः) कहा है। कुछ लोगों ने पाणिनि को पश्चिमोत्तर प्रदेश में रहने वाला दक्ष माना है। कथासरित्सागर और वृहत्कथामञ्जरी के अनुसार ये 'वर्ष'नामक आचार्य के शिष्य थे। इन्हें पढ़ना – लिखना बिल्कुल न आता था। एक दिन अपनी अकुशाग्रता से दुःखी हो ये तपस्या करने चले गये और वहीं से शिव के आशीर्वाद से उद्भट व्याकरणकार बनकर आए। इस विषय में एक उक्ति है –

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढाक्कां नवपञ्चवारम् ।

उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम् ।।

पाणिनिशिक्षा से भी 'शिव आख्यान' की पुष्टि होती है।

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात् ।

कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः ।।

9.3.2 पाणिनि का समय

पाणिनि का समय विवाद ग्रस्त है। इनका समय विभिन्न विद्वान् सातवीं शती ई. पू. से चतुर्थ शती ई. पू. के मध्य मानते हैं। डॉ. भगवत् शरण अग्रवाल ने 'पाणिनि कालीन भारतवर्ष' ग्रन्थ में सभी मतों की आलोचना करते हुए निष्कर्ष दिया है कि पाणिनि का समय 350 ई. पू. के मध्य है, पुष्ट प्रमाणों के कारण यह मत सर्वाधिक मान्य है।

9.3.3 रचनाएँ

अष्टाध्यायी पाणिनि की सर्वोत्कृष्ट रचना हैं इसमें लौकिक संस्कृत के साथ ही वैदिक व्याकरण भी दिया गया है। यह सूत्र–पद्धति से लिखा गया है। इसमें आठ अध्याय हैं। अतः ग्रन्थ का नाम 'अष्टाध्यायी' पड़ा । इसमें सूत्रों की संख्या 3996 है। इसके विभिन्न अध्यायों में इन विषयों का विवेचन है – सन्धि, कारक, कृत, और तद्धित प्रत्यय, समास, सुबन्त और तिङ्गन्त प्रकरण, प्रक्रियाएँ, परिभाषाएँ, द्विरुक्त आदि कार्य तथा स्वरप्रक्रिया।

इसके अतिरिक्त पाणिनि की अन्य रचनाएँ अधोलिखित मानी जाती हैं –

1. धातु–पाठ
2. गणपाठ
3. उणादिसूत्र
4. लिङ्गानुशासन। ये चारों अष्टाध्यायी के परिशिष्ट के रूप में हैं।
5. पाणिनीय शिक्षा। इनके अतिरिक्त दो अन्य ग्रन्थ पाणिनि के नाम से मिलते हैं। परन्तु इनकी प्रामाणिका संदिग्ध है। ये ग्रन्थ हैं – 1. जाम्बवती–विजय या पाताल–विजय (महाकाव्य) 2. द्विरूपकोश (कोशग्रन्थ) ।

9.3.4 अष्टाध्यायी

पाणिनि की ख्याति का आधार उनकी अष्टाध्यायी है इसमें कुल आठ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं और प्रत्येक पाद में अनेक सूत्र हैं। इसकी अनेक विशेषताएँ हैं –

1. अष्टाध्यायी में वाक्यों को भाषा में प्रधान माना गया है।
2. पाणिनि ने शब्द को सुबन्त एवं तिङन्त दो श्रेणियों में विभक्त किया है, जो विश्व का सर्वाधिक वैज्ञानिक वर्गीकरण है।
3. इसकी एक अन्य विशेषता वैदिक एवं लौकिक संस्कृत का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है, जिसे हम तुलनात्मक भाषाविज्ञान का सूत्रपात मान सकते हैं।
4. सन्धि–सूत्रों द्वारा पाणिनि ने ध्वनि–परिवर्तनों का व्यापक एवं निरपवाद निरूपण किया है।
5. वैदिक तथा लौकिक स्वरों का विस्तृत रूप से विवेचन कर नियमबद्ध किया है।

पाणिनि के प्रभाव के विषय में डॉ. भोलानाथ तिवारी का मत उल्लेखनीय है, ''आज जब हम राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए पारिभाषिक शब्द बनाने बैठते हैं तो 2500 वर्ष बाद भी हमारी दृष्टि परिपक्व शब्द पाने के लिए उसी ऋषि पर जाती है। प्रभाव की पराकाष्ठा इससे अधिक हो ही क्या सकती है।''

9.4 पतञ्जलि

पतञ्जलि ने पाणिनि की अष्टाध्यायी और कात्यायन के वार्तिकों का आश्रय लेते हुए अष्टाध्यायी पर महाभाष्य नाम की सर्वाङ्गीण व्याख्या की है। भाषा की सरलता, विशदता, स्वाभाविकता और विषय प्रतिपादनकी उत्कृष्ट शैली के कारण महाभाष्य सम्पूर्ण संस्कृत–वाङ्मय में आदर्श ग्रन्थ है। व्याकरण के दार्शनिक तत्त्वों को सरल और सुबोध भाषा में समझाया गया है। यह व्याकरण का ही ग्रन्थ न होकर एक विश्वकोश है। इसमें तत्कालीन ऐतिहासिक, सामाजिक, भौगोलिक, धार्मिक और सांस्कृतिक तथ्यों का भण्डार है। इसमें भाषाशास्त्र के सभी पक्षों पर विशद चिन्तन हुआ है। अर्वाचीन वैयाकरण जहाँ पर सूत्र, वार्तिक और महाभाष्य में परस्पर विरोध, 'यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्' इस वचन् के अनुसार महाभाष्य को ही प्रामाणिक मानते हैं। इनकी रचना शैली इतनी सरल और सुन्दर है कि जो भी विद्वान् इस ग्रन्थ को देखता है वह मुक्तकण्ठ से इनकी प्रशंसा करता है।

9.4.1 जीवनवृत्त

विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों में पतञ्जलि के अनेक नाम प्राप्त होते हैं। जैसे – गोनर्दीय, गाणिकापुत्र, नागनाथ, अहिपति, फणिभूत्, शेषराज, शेषाहि, चूर्णिकार और पदकार इत्यादि हैं। पतञ्जलि पुष्यमित्र शुंग (150 ई. पू.) के समय में हुए थे। ये पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ में ऋत्विज् थे। अतः इनका समय 150 ई. पू. के लगभग हैं

9.4.2 महाभाष्य

यह ग्रन्थ पाणिनि की अष्टाध्यायी की तरह आठ अध्यायों, प्रत्येक अध्याय में चार पाद तथा प्रत्येक पाद में कुछ आह्निक में विभक्त है। महाभाष्य मुख्यतः तीन उद्देश्यों को सामने रखकर लिखा गया था–

(i) पाणिनि के उन सूत्रों की व्याख्या के लिए जो समय बीत जाने के कारण तथा अन्य कारणों से अस्पष्ट अतः दुरूह हो गये थे।

(ii) कात्यायन के उन वार्तिकों का उत्तर देने के लिए जो अनुचित अथवा अनुप्रयुक्त थे।

(iii) भाषा के दार्शनिक पक्ष की यथाप्रसंग व्याख्या के लिए पतञ्जलि अपने तीनों ही उद्देश्यों में सफल हुए हैं।

9.5 भर्तृहरि

व्याकरण में पतञ्जलि के पश्चाद् भर्तृहरि ही ऐसे आचार्य हैं जिन्हें सब वैयाकरण प्रमाण मानते हैं। महाभाष्य के व्याख्याकारों में भर्तृहरि का नाम सर्वोत्कृष्ट है। इन्होंने महाभाष्य की 'महाभाष्यदीपिका' नाम से टीका लिखी है। इन्होंने अपने किसी ग्रन्थ में अपना कोई परिचय नहीं दिया। अतः इनका जीवनचरित अप्राप्त है। इनके गुरु का नाम वसुरात प्राप्त होता है। इनका समय 340 ई. के लगभग माना जाता है। वाक्यपदीप के टीकाकार हेलाराज ने इनको महाकवि, महायोगी, महाराज तथा अवन्ती का राजा माना है। सम्प्रति इनकी दो कृतियाँ उपलब्ध है। 1. महाभाष्य दीपिका (इसे त्रिपादी और महाभाष्य टीका भी कहते हैं) 2. वाक्यपदीय ।

9.5.1 महाभाष्य दीपिका

भर्तृहरि ने महाभाष्य की एक विस्तृत और गूढ़ रहस्यों को उद्धाटिक करने वाली व्याख्या लिखी है। इसका नाम 'महाभाष्यदीपिका' है। इस व्याख्या के उद्धरण व्याकरण के अनेक ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। ईत्सिग ने इसमें 25 हजार श्लोक माने हैं। उपर्युक्त प्रमाण से यह ज्ञात नहीं होता कि भर्तृहरि ने सम्पूर्ण महाभाष्य पर टीका लिखी थी, अथवा कुछ भाग पर। व्याकरण के ग्रन्थों में अनेक ऐसे उद्धरण उपलब्ध होते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि भर्तृहरि ने सम्पूर्ण महाभाष्य पर टीका लिखी थी। इसमें महाभाष्य के गूढ़ अंशों की विशद व्याख्या है।

9.5.2 वाक्यपदीय

यह व्याकरणदर्शन एवं भाषाशास्त्र का मूर्धन्य ग्रन्थ है। इसमें भाषा का दार्शनिक पक्ष का जितना सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक विवेचन हुआ है, उतना विश्व के अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं। इसमें तीन काण्ड हैं – **1. ब्रह्मकाण्ड**– इसमें शब्द – ब्रह्म की स्थापना है। स्फोट–सिद्धान्त और वाक्य को भाषा की सार्थक इकाई विषयक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। **2. वाक्यकाण्ड**– इसमें पद–पदार्थ, वाक्य और वाक्यार्थ का विवेचन है। **3. पदकाण्ड** – इसमें व्याकरण से संबद्ध विषयों का दार्शनिक विवेचन है।

जैसे – शब्दार्थ जाति या व्यक्ति, द्रव्य–विचार, शब्दार्थ–सम्बन्ध, गुण, दिशा, काल, कारक, संख्या, परस्मैपद, आत्मनेपद, लिंग और समास।

यह इतना उच्चकोटि का प्रौढ़ग्रन्थ है कि केवल विदेशों में ही नहीं अपितु भारतवर्ष में भी सम्पूर्ण ग्रन्थ को समझने वाले व्यक्तियों का अभाव सा है। इसमें सूत्र–रूप में भाषाविषयक सैकड़ों बातों का विवेचन है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ दी जा रही हैं –

9.5.3 भाषाशास्त्र को योगदान

1. शब्दब्रह्म या अखण्ड वाक्यस्फोट की स्थापना ।
2. भाषाशास्त्र के दार्शनिक पक्ष की स्थापना ।
3. भाषा की इकाई वाक्य है, इस सिद्धान्त की स्थापना।
4. वाणी का आधार वाक्य है और भाषा का आधार पद।
5. भाषाशास्त्र को नवीन, मौलिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण देना।
6. भाषा के भौतिक, रचनात्मक और दार्शनिक पक्ष का समन्वय।
7. लोक–भाषा और लोक–व्यवहार के महत्त्व का प्रबल समर्थन।
8. वक्ता और श्रोता के आदान–प्रदान का आद्यन्त विवेचन।
9. भाषा वक्ता और श्रोता के बीच माध्यम है, जिससे दोनों ओर भावों का आदान प्रदान होता है।
10. तुलनात्मक विवेचन के आधार पर सिद्धान्तों की स्थापना करना। पूर्वाग्रह का अभाव। सभी सिद्धान्तों को औचित्य के आधार पर अपनाना या छोड़ना।

इस प्रकार भर्तृहरि ने वाक्यपदीय की तीन खण्डों में से प्रथम ब्रह्मकाण्ड या आगमकाण्ड में शब्द ब्रह्म की स्थापना की है। द्वितीय काण्ड को वाक्यकाण्ड' भी कहते हैं। इसमें अखण्ड वाक्यस्फाट और वाक्यार्थ प्रतिभा की स्थापना की है। तृतीय काण्ड को 'पद–काण्ड' या 'प्रकीर्ण–काण्ड' भी कहते हैं। इसमें व्याकरण से संबद्ध लिंग, काल, वचन, समास, कारक आदि का स्पष्टीकरण किया गया है।

9.6 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. यास्क का परिचय देते हुए उनके निरुक्त का भाषाशास्त्रीय महत्त्व

प्रतिपादित कीजिए?

2. पाणिनि एवं भर्तृहरि का भाषाशास्त्रीय योगदान निरूपित कीजिए?

3. पतञ्जलि के भर्तृहरि के भाषाशास्त्रीय योगदान को स्पष्ट कीजिए?

4. प्रमुख भारतीय भाषाशास्त्रियों का परिचय दीजिए?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. किस ग्रन्थ में निरुक्तकार यास्क का उल्लेख मिलता है ?

(क) रामायण (ख) महाभारत (ग) नाट्यदर्पण (घ) भगवद्गीता

2. शब्दों को धातुज किसने माना है –

(क) यास्क (ख) विश्वामित्र (ग) चन्द्र (घ) आपशालि

3. पाणिनि ने शब्द को कितनी श्रेणियों में बांटा है ?

(क) 4 (ख) 3 (ग) 2 (घ) 1

4. वाक्यपदीय के किस काण्ड में मुख्यरूप से स्फोटसिद्धान्त की स्थापना की गई है?

(क) पद काण्ड (ख) वाक्यकाण्ड (ग) ब्रह्मकाण्ड (घ) ध्वनिकाण्ड

उत्तर– .1. ख 2. क 3. ग 4. ग

NOTE

NOTE

NOTE

NOTE